हिन्दी में दलित नाटक और रंगमंच : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

(सामाजिक संरचना के विशेष संदर्भ में)

DALIT DRAMA AND THEATRE IN HINDI : AN ANALYTICAL STUDY
(WITH SPECIAL REFERENCE TO SOCIAL STRUCTURE)

कालिकट विश्वविद्यालय की

डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध

Thesis
Submitted to the University of Calicut
for the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY IN HINDI

निर्देशक :
डॉ. ए. अच्युतन
प्रोफेसर

प्रस्तुतकर्ता :
शेरशाद खान. एम
शोध छात्र

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

2015

DECLARATION

I here by declare that the thesis entitled **"Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)"** is a record of bonafide research carried out by me and this has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship, Other Similar Title or Recognition. This research work was supervised by Dr. A. Achuthan, Professor (Retd.), Department of Hindi, University of Calicut.

C.U. Campus
Date:

SHARSHAD KHAN. M
Research Scholar
Department of Hindi
University of Calicut

विषयसूची

		पृ. सं.
	प्राक्कथन	i-v
	पहला अध्याय: भारतीय समाज और सामाजिक संरचना	**1- 38**
१.१	समाजः अर्थ एवं परिभाषा	
१.१.१	सामाजिक संरचना	
१.१.२	भारतीय सामाजिक संरचना	
१.१.२.१	भारतीय सामाजिक संरचना : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	
१.१.२.२	वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति	
१.१.२.३	वर्णोत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्त	
१.१.२.३.१	परंपरागत सिद्धान्त	
१.१.२.३.२	रंगों से वर्णोत्पत्ति का सिद्धान्त	
१.१.२.३.३	कर्म-धर्म का सिद्धान्त	
१.१.२.३.४	गुण सिद्धान्त	
१.१.२.३.५	जन्म सिद्धान्त	
१.१.२.४	वर्ण व्यवस्थाः डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर की दृष्टि में	
१.१.२.५	जाति व्यवस्था की उत्पत्ति	
१.१.२.५.१	अस्पृश्यता : एक विवेचन	
१.१.२.५.२	जाति व्यवस्था : गांधी और अम्बेडकर : तुलनात्मक दृष्टि	
१.१.२.६	भारतीय सामाजिक संरचना और दलित	
१.१.२.७	भारतीय सामाजिक संरचना और अम्बेडकरीय प्रारूप	
१.२	**निष्कर्ष**	

दूसरा अध्याय : दलित साहित्य का वैचारिक आधार **39- 80**

२.१ उत्तर आधुनिक संदर्भ और दलित विमर्श

२.२ दलित साहित्य की अवधारणा

२.२.१ दलित : अर्थ एवं परिभाषा

२.२.२ दलित चेतना

२.२.३ दलित साहित्य : स्वरूप एवं परिभाषा

२.२.४ सहानुभूति या स्वानुभूति

२.३ हिन्दी में दलित साहित्य

२.३.१ स्वामी अछूतानंद तथा हिन्दी साहित्य

२.४ दलित साहित्य का वैचारिक आधार

२.४.१ दलित साहित्य और गौतम बुद्ध

२.४.२ दलित साहित्य और मार्क्स

२.४.३ दलित साहित्य और ज्योतिबा फुले

२.४.४ दलित साहित्य और श्री नारायण गुरु

२.४.५ दलित साहित्य और डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर

२.५ **निष्कर्ष**

तीसरा अध्याय : दलित नाटक और रंगमंच : तथ्यात्मक विवेचन **81- 117**

३.१ भारतीय दलित आंदोलन : एक दृष्टि

३.१.१ केरल के दलित आंदोलन

३.१.२ सत्यशोधक समाज आंदोलन

३.१.३ आदि हिन्दु आंदोलन

३.१.४ आत्म सम्मान आंदोलन

३.१.५ सतनामी आंदोलन

३.१.६ आदि धर्म आंदोलन

३.१.७ डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर और दलित आंदोलन

३.१.८ दलित पैंथर आंदोलन

३.२ दलित नाटक और रंगमंच

३.२.१ नाटक : अर्थ एवं परिभाषा

३.२.२ रंगमंच की अवधारणा

३.२.३ दलित नाटक : अर्थ एवं संदर्भ

३.२.४ मराठी दलित नाटक एवं रंगमंच

३.३ **निष्कर्ष**

चौथा अध्याय : हिन्दी में दलित नाटक:एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **118- 236**

४.१ दलित नाटक और रंगमंच

४.२ हिन्दी में दलित नाटक और रंगमंच : एक पड़ताल

४.३ हिन्दी में दलित नाटक : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

४.३.१ कथ्यपरक अध्ययन

४.३.१.१ राम राज्य न्याय

४.३.१.२ धर्म परिवर्तन

४.३.१.३ तड़प मुक्ति की

४.३.१.४ हेलो कामरेड

४.३.१.५ दो चेहरे

४.३.१.६ कठौती में गंगा

४.३.१.७ एक दलित डिप्टी कलेक्टर

४.३.१.८ खल-छल-नीति

४.३.१.९ नंगा सत्य

४.३.१.१० रंग और व्यंग्य

४.३.१.११ एक बार फिर

४.३.१.१२ रास्ते चोर रास्ते

४.३.१.१३ कोर्ट मार्शल

४.३.१.१४ दलित

४.३.२ शिल्पपरक अध्ययन

४.३.२.१ राम राज्य न्याय

४.३.२.१.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.१.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.१.३ दृश्य योजना

४.३.२.१.४ उद्देश्य

४.३.२.२ धर्म परिवर्तन

४.३.२.२.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.२.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.२.३ दृश्य योजना

४.३.२.२.४ उद्देश्य

४.३.२.३ तड़प मुक्ति की

४.३.२.३.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.३.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.३.३ दृश्य योजना

४.३.२.३.४ उद्देश्य

४.३.२.४ हेलो कामरेड

४.३.२.४.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.४.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.४.३ दृश्य योजना

४.३.२.४.४ उद्देश्य

४.३.२.५ दो चेहरे

४.३.२.५.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.५.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.५.३ दृश्य योजना

४.३.२.५.४ उद्देश्य

४.३.२.६ कठौती में गंगा

४.३.२.६.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.६.२ संवाद एवं भाषा-शैली

४.३.२.६.३ दृश्य योजना

४.३.२.६.४ उद्देश्य

४.३.२.७ एक दलित डिप्टी कलेक्टर

४.३.२.७.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.७.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.७.३ दृश्य योजना

४.३.२.७.४ उद्देश्य

४.३.२.८ खल-छल-नीति

४.३.२.८.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.८.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.८.३ दृश्य योजना

४.३.२.८.४ उद्देश्य

४.३.२.९ नंगा सत्य
४.३.२.९.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण
४.३.२.९.२ संवाद एवं भाषा शैली
४.३.२.९.३ दृश्य योजना
४.३.२.९.४ उद्देश्य
४.३.२.१० रंग और व्यंग्य
४.३.२.१०.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण
४.३.२.१०.२ संवाद एवं भाषा शैली
४.३.२.१०.३ दृश्य योजना
४.३.२.१०.४ उद्देश्य
४.३.२.११ एक बार फिर
४.३.२.११.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण
४.३.२.११.२ संवाद एवं भाषा शैली
४.३.२.११.३ दृश्य योजना
४.३.२.११.४ उद्देश्य
४.३.२.१२ रास्ते चोर रास्ते
४.३.२.१२.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण
४.३.२.१२.२ संवाद एवं भाषा शैली
४.३.२.१२.३ दृश्य योजना
४.३.२.१२.४ उद्देश्य
४.३.२.१३ कोर्ट मार्शल
४.३.२.१३.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण
४.३.२.१३.२ संवाद एवं भाषा शैली
४.३.२.१३.३ दृश्य योजना
४.३.२.१३.४ उद्देश्य

४.३.२.१४ दलित

४.३.२.१४.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

४.३.२.१४.२ संवाद एवं भाषा शैली

४.३.२.१४.३ दृश्य योजना

४.३.२.१४.४ उद्देश्य

४.३.३ अभिनेयता

४.३.३.१ आंगिकाभिनय

४.३.३.२ वाचिकाभिनय

४.३.३.३ आहार्य अभिनय

४.३.३.४ सात्विकाभिनय

४.४ **निष्कर्ष**

उपसंहार **237- 243**

संदर्भ ग्रंथ सूची **244- 253**

परिशिष्ट **254**

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

प्राक्कथन

प्राक्कथन

वर्तमान भारतीय साहित्य जगत में जिन मुद्दों ने वैचारिक बहसों को जन्म दिया है, उनमें दलित साहित्य प्रमुख है। दलित साहित्य दमन, शोषण एवं अपमान के विरुद्ध एक वैचारिक क्रांति है। यह क्रांति जाति-भेद, ऊँच-नीच व छुआ-छूत को मिटाकर समाज में समता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व स्थापित करना चाहता है। दलित साहित्य में उस समाज-व्यवस्था के विरुद्ध विरोध और आक्रोश व्यक्त किया है जिस ने अतीत से आज तक दुःख, दमन और अपमान झेलने को मजबूर किया है। इसलिए दलित साहित्य में विरोध एवं आक्रोश का खर ज्यादा मुखर है।

आधुनिक काल में दलित लेखन साहित्य की सभी विधाओं में हो रहा है। इसमें दलित नाटक और रंगमंच का स्थान उल्लेखनीय है। क्योंकि कविता, कथा साहित्य आदि में चित्रित दलित संवेदनाएँ पाठक पर उतना तीव्र प्रभाव नहीं छोड़ती जितना नाटक छोड़ती है। इसका कारण यह है कि नाटक एक दृश्य-श्रव्य माध्यम है। साथ-साथ एक सामाजिक क्रिया भी है। नाटक का सीधा साक्षात्कार दर्शकों से होता है और उस पर तुरंत प्रतिक्रिया भी होती है। दलित नाटक का आधार समता स्थापित करने के साथ-साथ वेदना और विद्रोह प्रकट करना भी है। हम जानते हैं कि भारतीय सामाजिक संरचना में जाति एवं वर्ण की प्रबलता रही है। दलित नाटक के चिन्तन के मूल में इसी सामाजिक संरचना का महत्व है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भारतीय सामाजिक संरचना के विशेष संदर्भ में हिन्दी के दलित नाटकों का अध्ययन करने का विनम्र प्रयास किया है।

भारत में दलित नाटक और रंगमंच का विकास १९५० के बाद ही हुआ है। समाज के असमानता और अस्पृश्यता के विरोध में जो सामाजिक आंदोलन हुए उसी के परिणामस्वरूप दलित नाटक और रंगमंच का भी विकास हुआ है। जिसमें महात्मा गांधी, ज्योतिबा फुले, भीमराव अम्बेडकर, श्री नारायण गुरु, अछूतानंद आदि अनेक युगदृष्टा मनीषिओं का योगदान रहा है। चुँकि नाटक और रंगमंच का उपयोग सामाजिक परिवर्तन में एक हथियार के रूप में किया था। दलित अस्मिता को रूपायित करने में दलित रंगमंच का महत्व रहा है। महाराष्ट्र के जलसा इसका उदाहरण है। इसी पृष्ठभूमि में हिन्दी में दलित नाटक और रंगमंच के अध्ययन का विशेष महत्व है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का शीर्षक **'हिन्दी में दलित नाटक और रंगमंच : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (सामाजिक संरचना के विशेष संदर्भ में)'** रखा गया है। पहला अध्याय है 'भारतीय समाज और सामाजिक संरचना'। इस अध्याय में समाज और सामाजिक संरचना की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। साथ ही भारतीय सामाजिक संरचना के तहत वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति व उसके विभिन्न सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने का प्रयास भी किया है। अस्पृश्यता एवं जाति व्यवस्था पर मूल रूप से गाँधी और अम्बेडकर के विचारों की तुलना करते हुए भारतीय सामाजिक संरचना का अम्बेडकरीय प्रारूप प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया है।

दूसरा अध्याय **'दलित साहित्य का वैचारिक आधार'** है, इसमें प्रमुख रूप से दो बिन्दुओं को आधार बनाकर अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। पहला है दलित साहित्य संबंधी अवधारणा और दूसरा है दलित साहित्य का वैचारिक आधार। दलित साहित्य की अवधारणा को समझने और समझाने की प्रक्रिया अब

भी जारी है। अनेक दलित और गैर दलित विद्वानों ने इस प्रक्रिया में अपना-अपना योगदान दे रहे है, अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार। इन तमाम तथ्यों को एक नये सिरे से खोजने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

तीसरा अध्याय **'दलित नाटक और रंगमंच : एक तथ्यात्मक विवेचन'** है। इसमें दलित आंदोलनों एवं दलित नाटक और रंगमंच का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। दलित नाटक और रंगमंच दलित आंदोलन का ही परिणाम है। इतिहास साक्षी है कि ये आंदोलन पूरे भारत के विभिन्न प्रांतों में सक्रिय रहे थे। पूरे उत्तर एवं दक्षिण में ऐसे बहुत सारे क्रांतिकारी रहे हैं। जो दलित आंदोलन के साथ जुडे हुए हैं। स्वामी अछूतानंद, ज्योतिबा फुले, घासीदास, रामस्वामी नायकर, श्री नारायण गुरु आदि इनमें प्रमुख है। इसलिए भारत के विभिन्न प्रदेशों में हुए दलित आंदोलनों पर विस्तार से अध्ययन करने का प्रयास इस अध्याय में किया है। साथ ही नाटक एवं रंगमंच की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए दलित नाटक के अर्थ एवं संदर्भ पर प्रकाश डालने का प्रयास भी किया गया है।

चौथा अध्याय का शीर्षक **'हिन्दी में दलित नाटक और रंगमंच : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन'** रखा है। इस अध्याय में हिन्दी दलित नाटक और रंगमंच का उद्‌भव और विकास की चर्चा करते हुए चुने हुए दलित नाटककारों के प्रतिनिधि नाटकों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। इस अध्ययन के लिए विशेष रूप से चौदह नाटकों का चयन किया गया है-'राम राज्य न्याय' -स्वामी अछूतानन्द, 'धर्मपरिवर्तन' और 'तड़प मुक्ति की'- माताप्रसाद, 'हेलो कामरेड'- मोहनदास नैमिशराय, 'दो चेहरे'- ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'कठौती में गंगा'- डॉ. एन. सिंह,

'एक दलित डिप्टी कलेक्टर' और 'खल-छल-नीति' रूपनारायण सोनकर, 'नंगा सत्य' और 'रंग ओर व्यंग्य'- डॉ. सुशीला टाकभौरे, 'एक बार फिर'- सुनील कुमार सुमन, 'रास्ते चोर रास्ते'- दत्त भगत, 'कोर्ट मार्शल'- स्वदेश दीपक, 'दलित'-नाग बोडस। इन नाटकों के कथ्यपरक विश्लेषण में प्रमुख रूप से नाटक के वस्तु पक्ष को ध्यान में रखकर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। शिल्पपरक विश्लेषण में पात्र और चरित्र चित्रण, संवाद एवं भाषा शैली, अंक विभाजन एवं दृश्य योजना, उद्देश्य और अभिनेयता को ध्यान में रखकर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

अंत में उपसंहार दिया गया है, जिस में अध्ययन का संक्षिप्त सार दिया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध कालिकट विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के आचार्य डॉ. ए. अच्युतन जी के कुशल निर्देशन में संपन्न हुआ है। मुझे वे बराबर अपने विद्वत्तापूर्ण सुझाव एवं परामर्श देते रहे। उनके इस अमूल्य निर्देशन के लिए उनके प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

अध्ययन के दौरान श्री मोहनदास नैमिशराय, प्रो. दत्त भगत और सुशीला टाकभौरे, शरणकुमार लिंबाले, श्यौराज सिंह बेचैन, देवेन्द्र चौबे, कंवल भारती, नवनीत चौहान जैसे दलित और गैर दलित विद्वानों से मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। यह मुलाकात मेरे अध्ययन के लिए काफी महत्वपूर्ण एवं लाभदायक रही उनके प्रति में विशेष आभारी हूँ। प्रस्तुत अध्ययन के दौरान मुझे कई व्यक्तियों और संस्थाओं से मिलने और सलाह लेने का अवसर प्राप्त हुआ। अध्ययन के दौरान राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, जवहरलाल नहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, केन्द्र

साहित्य अकादमी आदि संस्थाओं से सामग्री इकट्टा करने का मौका मिला। इन संस्थाओं के अधिकारियों के प्रति इस अवसर पर आभार प्रकट करता हूँ।

इस अवसर पर कालिकट विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष को मैं धन्यवाद अदा करता हूँ। साथ ही विभाग के असोसिएट प्रोफेसर डॉ. आर. सेतुनाथ के प्रति भी मैं तहे दिल से धन्यवाद प्रकट कर रहा हूँ, उनके निर्देशन तथा सहायता से ही यह शोध प्रबन्ध पूर्ण कर पाया हूँ। इस अध्ययन के लिए आवश्यक सहायता एवं प्रोत्साहन देने के लिए विभाग के अन्य अध्यापकों एवं कर्मचारियों के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

साथ ही डॉ. टी. ए. आनन्द (सहायक आचार्य, सरकारी महाविद्यालय, कोषि़कोड) डॉ. संतोष. एस (सहायक आचार्य, एम. सी. महाविद्यालय, कोषि़कोड), मणिकंठन सी.सी, श्रीकला टि. के, सजिला. के, दिव्या एम. टि तथा अन्य सहपाठियों एवं मित्रों को भी मैं दिल से शुक्रिया अदा करता हूँ। अन्त में मुझे उच्चशिक्षा प्रदान करने तथा प्रोत्साहन देने के लिए में अपने पूज्य पिताजी (स्व.), माताजी, भाई-बहन, एवं प्रिय पत्नी के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करता हूँ। उनके सहयोग और प्रोत्साहन से ही प्रस्तुत शोध कार्य को पूरा करने में सफलता मिली है।

मैं ने यथा संभव इस विषय के प्रति पूरी ईमान्दारी के साथ अध्ययन करने का प्रयास किया है। प्रस्तुत प्रयास का परिणाम है मेरा यह शोध प्रबन्ध। विद्वानों के समक्ष पूरी विनम्रता के साथ मैं यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करता हूँ।

विनीत

हिन्दी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

शेरशाद ख़ान. एम
शोध छात्र

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

पहला अध्याय

भारतीय समाज और सामाजिक संरचना

१. भारतीय समाज और सामाजिक संरचना

भारतीय समाज और सामाजिक संरचना की जड़ें कई हज़ार वर्ष पुरानी सभ्यता से जुड़ी हुई है। इस लम्बी अवधि में देश के इतिहास, सामाजिक संरचना एवं समाज में कई उलट-फेर हुए हैं। भारत की सामाजिक संरचना पर चर्चा करने से पहले समाज क्या है? यह स्पष्ट करना संगत ही नहीं, अनिवार्य भी है।

१.१ समाज : अर्थ एवं परिभाषा

सामान्य रूप से समाज शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह के लिए किया जाता है। समाजशास्त्रियों के अनुसार समाज, सामाजिक संबन्धों की एक जटिल व्यवस्था है। संस्कृत में कहा गया है- "सम्यक् अजन्ति गच्छन्ति जना अस्मिन् इति समाज।"[1] अर्थात् जिसमें सभी लोग अच्छी तरह से रहें, वही समाज है।

समाज शब्द के तीन अर्थ प्रचलित हैं। पहला अर्थ समस्त मानवता का है। इस अर्थ में समाज देश-काल से परे है। दूसरे अर्थ में समाज उन मनुष्यों का विशिष्ट समूह है जो किसी विशेष देश, काल, भाषा जैसी बातों से बाँधे हुए हैं। तीसरे में समाज मनुष्यों के उस समूह को कहते हैं जिसे उसके सदस्यों ने किसी निश्चित उद्देश्य से गठित किया है। पहले अर्थ में समाज का रूप अमूर्त हो जाता है और तीसरे में विस्तृत और संकीर्ण होता है। इसलिए दूसरे अर्थ को अपनाना उचित है।

भारतीय धर्मग्रन्थों व शास्त्रों में समाज की संरचना, उसकी प्रकृति तथा उसके महत्व का विस्तार से विवेचन मिलता है। श्रीमद् भगवद् गीता में कहा गया है-

---

1 भारतीय समाज का स्वरूप- सीताराम झ श्याम, पृ.76

"समाज प्राणियों के बाहर और भीतर है। वह अचर और चर है। वह निकट है और दूर भी। सूक्ष्म होने के कारण वह अविज्ञेय है।"[2]

समाज की व्युत्पत्तिपरक परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध मनीषी डॉ. संपूर्णानन्द कहते हैं- "समं अजन्ति जनाः अस्मिन् इति- जिसमें लोग मिलकर एक साथ एक गति से चलें वही समाज है।"[3] समाज स्थिर और जड़ व्यवस्था नहीं अपितु निरन्तर प्रगतिशील और विकासशील प्रक्रिया है। यह मानव की सामूहिक प्रज्ञा का विकसित भौतिक स्वरूप है।

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार-"समाज का अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने अनजाने कर लेता है।"[4]

स्पष्ट है कि व्यक्तियों के बीच होनेवाले आपसी संबन्ध, पारिवारिक संबन्ध एवं सामुदायिक संबन्धों के समूह को हम समाज कह सकते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी अपनी समाज सम्बन्धी अवधारणा को अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार परिभाषित करने का प्रयास किया है।

"समाज का अर्थ केवल व्यक्तियों का समूह ही नहीं है अपितु समूह के अंतर्गत व्यक्तियों के संबन्धों की व्यवस्था का नाम समाज है।"[5] (It is not a group of people,

---

2 बहिरन्तश्च भूतानाम् चरं चरमेव च।
सूक्ष्मन्ववाद विज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके चनत्।।

3 समाजवाद-संपूर्णानन्द, पृ.19

4 साहित्य का समाजशास्त्र- डॉ. नगेन्द्र, पृ.206

5 Outline of Partial Sociology- Coroll D. Wright, p.5

it is the system of relationship that exists between the individuals of the group)

समाज के प्रत्येक सदस्य के स्वार्थ जहाँ एक के होते हैं वहाँ उसकी ऐसी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो उसे अन्य समाजों से अलग करती हैं। ये विशेषताएँ उसकी अपनी निजी और व्यक्तिगत न होकर उसके समाज की देन होती हैं। इसी तत्व को ध्यान में रखकर पाश्चात्य समाजशास्त्री जिन्सबर्ग कहते हैं- "समाज व्यक्तियों का वह समूह है जो किन्हीं संबन्धों या तरीकों द्वारा संगठित है और जो उन्हें उन दूसरों से अलग करता है जो इन संबन्धों में शामिल नहीं होते अथवा जो उनसे व्यवहार में भिन्न है।"[6] (A society is a collection of individuals united by certain relations or modes of behaviour which mark them off from others, who do not enter into these relations or who differ from them in behaviour)

लिन्टन ने समाज की परिभाषा इस प्रकार दी है- "एक समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहकर कार्य कर चुके हैं या स्वयं को सुपरिभाषित सीमाओं में आबद्ध करके एक सामाजिक इकाई के रूप में विचार करते हैं।"[7] (Any group of people who lived and worked together long enough to get themselves organised or to think of themselves as a social unit with well defined limits)

समाज के बारे में स्पेनसर का मत है- "समाज कुछ व्यक्तियों का संघटित नाम नहीं है मगर एक विशिष्ट 'सत्ता' है जो उससे संबन्धित व्यक्तियों की व्यवस्था

---

6 Sociology- Morris Ginsberg, p.4

7 The Study of Man- R. Linden, p.91

करती है।"[8] (The society if not merely a collective name for a number of individuals but is distinctive entity transcending the individuals belong to)

आर.ई. पार्क एवं इ. डब्ल्यू. बर्गस ने समाज को यों परिभाषित किया है- "समाज मानव के सामूहिक व्यवहार के लिए आवश्यक घटनाओं, रुढ़ियों, परंपराओं और मनोभावों, आदतों एवं संस्कृति की सामाजिक विरासत है।"[9] (The sociological heritage of habit and sentiment, folkways and morals which are incident or necessary to collective human behaviour)

डब्ल्यू. जी. सम्मर और ए.जी. किल्लर के अनुसार- "एक समाज ऐसे मानव प्राणियों का समूह है जो अपनी जाति की निरंतरता को बनाये रखने के लिए सहायतापूर्ण प्रयासों में जीवित हैं।"[10] (A group of human being living in co-operative effort to win substance and prepetuate the species)

मैक आइवर और पेज ने समाज की परिभाषा इस प्रकार की हैं- "मनुष्यों में जो चलन है, जो कार्यविधियाँ है, पारस्परिक सहायता की जो प्रवृत्ति है, शासन की जो भावना है, जो अनेक समूह व विभाग विद्यमान है, मानव व्यवहार के संबन्ध में जो स्वतंत्रता व मर्यादाएँ होती हैं, उनकी व्यवस्था को ही समाज कहते हैं। इस निरंतर परिवर्तित होती हुई जटिल व्यवस्था ही समाज कहलाता है। यह सामाजिक संबन्धों का ताना-बाना है, जो सदा बदलता रहता है।"[11] (Society is a system of usages and procedures of authority and mutual aid, of many groupings and divisions of controls of human behaviours and liberties)

---

8 The Principles of Sociology- H. Spenser, p.435

9 Introduction to the Science of Sociology- R.E. Park and E.W. Burgess, p.161

10 The Science of Sociology-W.S.Summer and A.G.Killer, p.7

11 An Introductory Analysis- R.M. Madver and C.M. Page, p.5

प्रसिद्ध समाजशास्त्री गिडिंग्स के अनुसार- "समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक संबन्धों का योग है, जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर आबद्ध है।"[12] (Society is the association of itself, the organisation, the sum of formal relations, in which associating individuals are bound by them)

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से हम आसानी से इस निष्कर्ष पर पहूँच सकते हैं कि समाज केवल व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं है, अपितु उनके बीच होनेवाले आपसी संबन्ध, पारिवारिक संबन्ध एवं सामुदायिक संबन्धों के समूह है। समाज में होनेवाले ये सामाजिक संबन्ध दिखायी नहीं देगा, अदृश्य है, सिर्फ अनुभव करने की वस्तु है। इसी समाज की रूपायन कैसे हुआ? संरचना की विशेषताऐं क्या है? आदी बातों को स्पष्ट करना यहां उचित लगता है।

१.१.१ सामाजिक संरचना

किसी भी समाज की संरचना किसी विशेष दिन में नहीं बनती है। मनुष्य ने जब एक साथ जीवन बीतने का आरंभ किया है तब से समाज की मूल अवधारणा का भी जन्म हुआ होगा। क्योंकि मनुष्य अकेला नहीं है। वह प्रकृति के साथ है, सह-जीवियों के साथ है। इसलिए मनुष्य को सामाजिक प्राणी कहते है। मनुष्य ने समय के साथ-साथ विभिन्न जन समुदायों में, विभिन्न भौगोलिक स्थितियों में, विभिन्न रीति-रिवाज़ों से अपना जीवन बिताया है। उसके साथ समाज के अर्थ और संदर्भ बदलता है और उसकी संरचना भी बदलती है। कहने का मतलब है कि सामाजिक संरचना अपने आप में एक प्रक्रिया है। समाजशास्त्र में दो आधारभूत धारणाएँ हैं- सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था। सामाजिक संरचना से हमें समाज के

---

[12] Principles of Sociology- Giddings, p.3

बाहरी रूपरेखा के बारे में पता चलता है जबकि सामाजिक व्यवस्था से समाज के आंतरिक प्रक्रियाओं का बोध होता है। समाज अनेक इकाइयों का एक बृहत् समूह है। ये विभिन्न इकाइयाँ व्यवस्थित तरीके से संयुक्त होकर एक रूपरेखा का निर्माण करते हैं। इसी को सामाजिक संरचना कहते हैं। सामाजिक संरचना एक गतिशील प्रक्रिया है। संरचना वह है जिसमें विभिन्न भागों में व्यवस्थित अतंर्सम्बन्ध होते हैं। मैक लिवर तथा पेज के शब्दों में "समूह निर्माण के विभिन्न तरीक संयुक्त रूप में सामाजिक संरचना के जटिल प्रतिमानों का निर्माण करते हैं। सामाजिक संरचना के विश्लेषण में सामाजिक प्राणियों की विविध प्रकार की मनोवृत्तियों तथा रुचियों को परखते हैं।"[13]

पारसन्स के अनुसार- "सामाजिक संरचना आदर्शात्मक संस्कृति का एक संगठित तथा स्थायी प्रतिमान है। दूसरे शब्दों में उन अन्तः संबन्धित भूमिकाओं, समूहों, आदर्शों तथा मूल्यों का समूह है जो व्यवहार को निर्देशित करता है।"[14] संरचनात्मक अध्ययन में समाज के विभिन्न अंगों के परस्पर संबन्धों को समझने का प्रयास किया जाता है। संरचनात्मक तरीका यह बनाता है कि समाज के परिवर्तन का प्रभाव अन्य अंगों पर पड़ता है। अनेक दृष्टियों से सामाजिक संरचना के अध्ययन के संदर्भ में प्रसिद्ध समाजशास्त्री जिन्सबर्ग का मत उल्लेखनीय है- "सामाजिक संरचना का अध्ययन सामाजिक संगठन के प्रमुख स्वरूपों अर्थात् समूहों, समितियों तथा संस्थाओं के प्रकार एवं इन सबके संकुल-जिनसे कि समाज का निर्माण होता है उससे संबन्धित है। सामाजिक संरचना के एक पूर्णांग विवरण के

---

[13] सोसाइटी- आर. एम. मेकलिवर, पृ.212

[14] थियरीस ऑफ सोसाइटी, पृ.36

अंतर्गत तुलनात्मक संस्थाओं के संपूर्ण क्षेत्र के विश्लेषण का समावेश होगा।"[15] संरचनात्मक अध्ययन में समाज के विभिन्न अंगों के परस्पर संबन्धों को समझने का प्रयास किया जाता है।

१.१.२ भारतीय सामाजिक संरचना

भारतीय सामाजिक संरचना विश्व के विभिन्न समाज की संरचनाओं से बिल्कुल भिन्न है। ऐसी अनोखी एवं विशिष्ट सामाजिक संरचना, विश्व इतिहास में किसी भी देश, किसी भी समाज और किसी भी काल में दृष्टिगोचर नहीं होती। भारतीय समाज की संरचना किसी निश्चित तिथि, दिन या वर्ष में निर्धारित नहीं हुई वरन् यह सदियों के सहज मानव जीवन के विकास का परिणाम है।

१.१.२.१ भारतीय सामाजिक संरचना : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सृष्टि के आरंभ में केवल एक जाति थी- मानव जाति। इसमें रंग के आधार पर गौर और श्याम- दो वर्ण थे। इन वर्णों में सामाजिक भेद स्पष्ट नहीं थे। कुछ समय बाद इनमें रंग के साथ सामाजिक भेद स्पष्ट हुए। परिणामस्वरूप समाज गौर और श्याम की जगह द्विज और शुद्र वर्णों में बाँट गया। धीरे-धीरे सामाजिक भेदों में वृद्धि होती गई और समाज दो से तीन, चार तथा पाँच (अंत्यज अथवा अवर्ण के रूप में पाँचवाँ वर्ण) वर्णों में विभक्त हो गया। यद्यपि भारत के ज्ञात एवं लिखित इतिहास में ऐसा कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है जो यह सुनिश्चित कर सके कि भारतीय समाज संरचना कब, कहाँ और कैसे उद्विकसित हुई? भारतीय समाज

---

[15] Morris Ginsberg- Reason and Unreason Society, p.18

संरचना के निर्माण के निश्चित प्रमाण उपलब्ध न होने की स्थिति में, सर्वप्रथम आदिग्रन्थ ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में वर्णित सृष्टि संबन्धी सूक्तों की तरफ देखते हैं।

"ब्राह्मणेस्य मुखमासीद् राजन्यः कृत।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पदाभ्याम् शुदो जायत।।"

- ऋग्वेद, १०-९०-१२

अर्थात् ब्राह्मण की उत्पत्ति प्रजापति ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय की बहु से, वैश्य की जंघा से और शूद्रों की उत्पत्ति पैरों से हुई।

ऋग्वेद के जिस पुरुष सूक्त में वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति हमें दृष्टिगोचर होती है, इस पर कई विद्वानों ने ये आरोप लगाया है कि इसे बाद में जोड़ा गया प्रतीत होता है। ऋग्वेद में जिस 'वर्ण' शब्द का प्रयोग किया गया है, उसका अर्थ है रंग या प्रकाश। वर्ण का संबन्ध ऐसे जन-गण से जिनका चर्म काला है या गोरा।[16]

"शूद्र शब्द का उल्लेख केवल ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलते हैं। किन्तु 'पुरुष सूक्त' ऋग्वेद में बाद को जोड़ा गया प्रतीत होता है। क्रालब्रुक और मैक्समुलर दोनों ही विद्वान यह मानते हैं कि 'पुरुष सूक्त' शैली और भाषा दोनों ही दृष्टियों से ऋग्वेद की अपेक्षा बहुत नवीन है।"[17]

पी.वी. काणे का मत है कि "ऋग्वेदीय काल में दो परस्पर विरोधी दल थे- आर्य तथा दस्यु (दास), जो एक-दूसरे से चर्म, रंग, पूजा-पाठ, बोली एवं स्वरूप में

---

16 धर्मशास्त्र का इतिहास- काणे पी. वी, पृ.112

17 संस्कृति के चार अध्याय- रामधारी सिंह दिनकर, पृ.74

पृथक् थे। अतः अतिप्राचीन काल में वर्ण शब्द केवल आर्य और दास से ही संबन्धित था। यद्यपि ब्राह्मण और क्षत्रिय शब्द ऋग्वेद में अनेक बार प्रयुक्त हुए हैं, लेकिन वर्ण शब्द का उनसे कोई संबन्ध नहीं था। पुरुष सूक्त में भी जहाँ ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य एवं शूद्र का उल्लेख हुआ है, वहाँ वर्ण का प्रयोग नहीं हुआ है। ऋग्वेद में पुरुष सूक्त को छोड़कर कहीं भी वैश्य एवं शूद्र शब्दों का उल्लेख नहीं है यद्यपि अथर्ववेद एवं तैत्तिरीय संहिता में कई बार इन शब्दों का प्रयोग हुआ है।"[18]

भगवत शरण उपाध्याय का मत है कि "जो विद्वान ऋग्वेद के पुरुष सूक्त से भारतीय आर्यों के चतुर्वर्ण का प्रारंभ मानते हैं, वे साधारण भ्रान्ति में नहीं है क्योंकि वे इस सत्य को भूलते हैं कि पुरुष सूक्त चतुर्वर्णों की व्यवस्था नहीं करता, उस संस्था की अवस्था विशेष का उल्लेख और परिगणन मात्र करता है। जिन चार वर्णों के संबन्ध में उक्त सूक्त कहता है कि वे ब्रह्मा के मुखादि से निकले, उनका प्रादुर्भाव वह समकालीन न मानकर केवल अतीतपरक मानता है। चारों की सृष्टि इस सूक्त की रचना के पूर्व हो चुकी थी-कितना पूर्व? नहीं कहा जा सकता।"[19]

विद्वानों के उपर्युक्त स्थापनाओं के प्रकाश में यह प्रतीत होता है कि ऋग्वेद का दशम मंडल वह सूक्त बाद में जोड़ा गया है। आगे वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के बारे में चर्चा करेंगे।

१.१.२.२ वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति

विश्व की सभी संस्कृतियों में समाज का वर्गों में विभाजन किया जाना अवश्य प्राप्त होता है। लेकिन भारतीय संस्कृति में वर्ण व्यवस्था का जो स्वरूप देखने को

---

[18] धर्मशास्त्र का इतिहास- काणे पी. वी, पृ.110

[19] भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण- उपाध्याय भगवत शरण, पृ.112-113

मिलता है, उसके समानान्तर व्यवस्था विश्व के किसी भी देशों में उपलब्ध नहीं होती। वर्ण व्यवस्था के प्रारंभिक संगठित रूप में समाज में प्रत्येक व्यक्ति की इकाई को महत्वपूर्ण मानते हुए कार्य, श्रम, योग्यता तथा प्रवृत्ति को मुख्य आधार बनाकर व्यक्तियों को विभिन्न वर्ण में रखकर व्यष्टि और समष्टि का जो सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया था। सब से पहले मनुष्य प्रकृति के साथ मिल जुलकर उसकी ताल-लयात्मक स्थिति में रहता था अतः गुण या योग्यता को मानकर चलते थे। उल्लेखनीय बात यह है कि पुरातन काल में वर्ण व्यवस्था का प्रचार नहीं था एवं जाति प्रथा भी नहीं थी। एक तरह से समानता का संस्कार प्रचलित था। "अकनानूरू, पुरनानूरू, तिरुक्कुरल, मणिमेख्ले, चिलप्पतिकारम आदि संघकालीन कृतियों में बताया गया है कि भौगोलिक दृष्टि से देश का विभाजन हुआ करता था और वहाँ रहने वालों के नाम भी उसी प्रकार दिये गये थे। जैसे-कुरिजी-पहाड़ी प्रदेश है; वहाँ रहने वाले कुऱ्वर हैं, मल्लै-वन तथा समीप प्रान्तर है; वहाँ रहने वाले इडयर है, पालै ऊसर भूमि है; वहाँ रहने वाले मरवर हैं, मरूतम-ख्रेती-बड़ी की भूमि है जहाँ, वेल्लालर रहते हैं, नैतल-प्रदेश सागर तट पर हैं, वहाँ रहने वालों को परतवर कहते हैं।"[20] ये भी उल्लेख्नीय है कि हर प्रदेश विशेष की मौख्रिक परंपरा के गीतों के अध्ययन-विश्लेषण से इस तरह के अनेक बातें हमारे सामने आ जाएगा।

ऋग्वेद से लेकर समस्त भारतीय वेदों, पुराणों तथा साहित्य में वर्ण शब्द का विविध प्रयोग प्राप्त होता है। वर्ण शब्द वृ धातु अथवा वर्ण् धातु से उत्पन्न होता है। जब संज्ञा रूप में यह शब्द प्रयुक्त किया जाता है तो रंग, सौन्दर्य, अक्षर, स्वर, यश, प्रशंसा आदि अर्थों को प्रकट करता है। वर्ण शब्द से आर्य तथा जातिविशेष, ब्राह्मण

---

[20] मलयालम में दलित साहित्यः दृष्टि और सृष्टि- प्रो. ए. अच्युतन, पृ.57

आदि चार वर्णों का भी बोध होता रहा है। वर्णव्यवस्था का अभिप्राय इन्हीं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र - चारों से संबन्धित व्यवस्था से है।

भारत में वर्णव्यवस्था कब अथवा कैसे प्रारंभ हुई इसके संबन्ध में कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों में इस विषय पर एकमत हैं कि वैदिक युग से भी पूर्व इस व्यवस्था का कोई न कोई रूप विद्यमान अवश्य था, किन्तु यह वर्णव्यवस्था उत्पन्न कैसे हुई- यह सुनिश्चित नहीं है। प्रसिद्ध समाजशास्त्रियों ने वर्णोत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं।

१.१.२.३ वर्णोत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्त

१.१.२.३.१ परंपरागत सिद्धान्त

परम्परागत सिद्धान्त ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में व्यक्त अवधारणा में विश्वास करता है तथा परमपुरुष ब्रह्मा के मुख, बाहू, जंघा और पैर से चार वर्णों की उत्पत्ति को वर्णगत उच्चता दर्शाने के लिए प्रतीकात्मक स्वीकार करता है। उक्त सिद्धान्त शारीरिक अंगों की उच्चता के क्रमानुसार वर्णगत उच्चता और निम्नता को प्रदर्शित करता है। चूँकि ब्राह्मणों की उत्पत्ति मुख से मानी गई है इसलिए ब्राह्मणों का कार्य मुख (मंत्रोच्चरणज्ञानोच्चरण) से संबन्धित है। ब्राह्मणों का परम कर्तव्य है ज्ञान का अर्जन और उसे लोगों को पढ़ाना। क्षत्रियों की उत्पत्ति बाहु से मानी जाती है और बाहु शक्ति का प्रतीक है। अतः क्षत्रियों का प्रमुख कार्य है शक्ति के बल पर मानव जाति की रक्षा करना। वैश्य वर्ण की उत्पत्ति जंघ से मानी गई है इसलिए वैश्यों का कार्य चल-फिर कर व्यापार और वाणिज्य करना है क्योंकि सामाजिक जीवन के अस्तित्व के लिए व्यापार और वाणिज्य वैसे ही महत्वपूर्ण है जैसे कि शरीर के

अस्तित्व के लिए जंघ। शूद्रों की उत्पत्ति परम पुरुष के पैरों से मानी जाती है इसलिए शूद्र सेवावर्ग का प्रतिनिधित्व करते है। इस प्रकार यह सिद्धान्त सामाजिक उद्देश्यों की अनुपूर्ति हेतु श्रम विभाजन एवं वर्णों के आपसी संव्यवहारों में परस्पर हस्तक्षेप को वर्ण-व्यवस्था की धुरी मानता है।

१.१.२.३.२ रंगों से वर्णोत्पत्ति का सिद्धान्त

रंग का सिद्धान्त मनुष्य की त्वचा के विभिन्न रंगों के आधार पर वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति को बताता है। "ऋग्वेद में कई स्थानों पर (१/७३/७, २/३/५, ९/९७/१५, ९/१०४/४, १०/१२/७) वर्ण का अर्थ है रंग या प्रकाश। कहीं-कहीं यथा २/१२/४ एवं १/१७९/६ में, वर्ण का संबन्ध ऐसे लोगों से है जिनका रंग काला है या गोरा।"[21] तैत्तरीय ब्राह्माण (१/२/६) में आया है कि "ब्राह्मण देवी वर्ण है और शूद्र असूर्य वर्ण है।"[22]

महाभारत में भृगु ऋषि भरद्वाज को संबोधन में बताते हैं कि प्रारंभ में ब्रह्मा ने केवल ब्राह्मण की सृष्टि की, तदुपरान्त त्वचा के विभिन्न रंगों के आधार पर तीन वर्ण-क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र उत्पन्न हुए। ब्राह्मण सफेद रंग, क्षत्रिय लाल रंग, वैश्य पीले रंग और शूद्र काले रंग का प्रतिनिधित्व करते हैं। भृगु ऋषि ने भरद्वाज की शताधिक-सहस्राधिक रंग-भेद पर शंका करते हुए कहा है कि "ऐसी स्थिति में केवल चतुर्वर्ण्य विभाजन ही क्यों किया गया? इसके प्रत्युत्तर में उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा है कि रंग का सिद्धान्त त्वचा के रंग की उपेक्षा कर्म एवं गुण से अधिक संबन्धित है।

---

[21] धर्मशास्त्र का इतिहास- काणे पी. वी, पृ.110

[22] वहीं

विभिन्न वर्णों के रंग उनकी त्वचा की बजाय उनके गुण और कर्म को प्रकट करते हैं।"[23]

कठोर, क्रोधी, भोगसंलिप्त और वीरता के गुण से संपन्न, जो अपने धर्म के प्रति उदासीन थे, इस प्रकार के लाल अथवा लोहित गुण अर्थात् रज-प्रधान व्यक्ति क्षत्रिय वर्ण के कहे गए। जो व्यक्ति अपने द्विज धर्म के प्रति उदासीनता बरतकर कृषि एवं पशुपालन करने लगे, वे वैश्य कहलाए क्योंकि ऐसे लोगों में पीत गुण अर्थात् तमोमिश्रित रजःगुण विशेष रूप में पाए जाते हैं। जो लोग अपना धर्म त्याग कर असत्य बोलने लगे, अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचाने लगे और जिनमें प्रतिलोभ की प्रबल लालसा थी, इस प्रकार के श्याम गुण अर्थात् तमः प्रधान लोग शुद्र कहलाए।

भृगु ऋषि की मान्यता है कि परमपुरुष ने ब्राह्मणों की सृष्टि सबसे पहले की, जिन्हें द्विज कहा गया। तदुपरान्त द्विजों में पृथक्-पृथक् रंग, गुण और कर्म विकसित हुए और इन्हीं रंगों, कर्मो और गुणों के आधार पर उनका पृथक्-पृथक् वर्णों में विभाजन किया गया।

डी.आर. जाटव की स्थापना है कि "वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति के संदर्भ में रंग के आधार को आगे चलकर अस्वीकार कर दिया गया, क्योंकि अनार्यों के साथ मिलने के पश्चात् आर्य लोग यह दावा नहीं कर सकते थे कि उनकी संतान श्वेत-लाल रंग की होगी और न यह परिलक्षित कर सकते थे कि अनार्यों की संतान काले रंग की होगी। यह बात सही भी है कि रंग भेद मिथ्य सिद्धान्त था, क्योंकि किसका रंग

[23] भारतीय समाज व संस्कृति- मुखर्जी रवीन्द्रनाथ, पृ.41

क्या होगा, यह प्राकृतिक नियम है न कि सामाजिक। इसलिए वर्ण व्यवस्था का आधार रंग न मानकर कार्य मान लिया गया।"[24]

१.१.२.३.३ कर्म-धर्म का सिद्धान्त

कर्म-धर्म का सिद्धान्त पूर्वजन्म और मोक्ष आदि में आस्था रखते हुए कर्म के आधार वर्ण व्यवस्था की सृष्टि में विश्वास करता है। यह सिद्धान्त हिन्दुओं की इस विश्वास को अभिव्यक्त करता है कि मनुष्य इस जन्म में जो कुछ है, वह उसके पूर्व जन्म के कर्मों का प्रतिफल है। कर्म-धर्म का सिद्धान्त मूलभूत सामाजिक आवश्यकताओं को अनुपूर्ति और समाज व्यवस्था को बनाए रखने के लिए समाज के विभिन्न अंगों अर्थात् वर्णों के विभाजन और नियमन को आवश्यक मानता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, "वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति इसी आधार पर हुई थी।"[25] वैदिक काल के समाज की चार प्रमुख आवश्यकताएँ थीं- पहला पठन-पाठन, धार्मिक तथा बौद्धिक कार्यों की पूर्ति तथा दूसरा राज-व्यवस्था का संचालन और समाज-सरंक्षा तथा तीसरा आर्थिक क्रियाओं की पूर्ति और चौथा सेवा। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वर्ण-व्यवस्था की सृष्टि की गयी, जिससे प्रत्येक विभाग अपनी पूर्ण निष्ठा से अपने कर्मों का पालन करे और यह कर्म अथवा कर्तव्य-पालन ही प्रत्येक विभाग का धर्म है।

डी.आर. जाटव का मत है कि "ब्राह्मण ग्रन्थों में विस्तृत कर्म का सिद्धान्त तो नहीं मिलता, किन्तु भावी जीवन में दण्ड और पुरस्कार का वर्णन अवश्य किया गया है जो मनुष्य की अमरता में विश्वास करते हैं। लेकिन अमरता उनको प्राप्त होती है

---

[24] भारतीय समाज एवं विचार धाराएँ- जाटव डी.आर, पृ.30

[25] वहीं, पृ.18

जो यज्ञों की विधियों को अच्छी तरह समझकर उनका अनुपालन करते हैं। पापी लोग शून्य समान होते हैं, जबकि सद्गुणी को अमरता प्राप्त होती हैं। दोनों का अपने कर्मों का फल भोगने के लिए पुनर्जन्म होता है। इस प्रकार शुभ और अशुभ कर्म तदनुसार भावी जीवन में पुरस्कार और दण्ड के भागीदार होते हैं।"[26]

कर्म सिद्धान्त के बारे में रोमिला थापर का मत है कि "कर्म के सिद्धान्त ने वर्ण व्यवस्था के लिए एक दार्शनिक औचित्य प्रस्तुत किया। ऊँची या नीची जाति में जन्म भी पूर्व जन्म के कर्मों पर आधारित था, जिससे आदमी के मन में यह आशा उत्पन्न हुई कि अगले जन्म में उसकी सामाजिक स्थिति में सुधार होगा। कर्म के सिद्धान्त ने धर्म की व्यापक संकल्पना में एक व्यवस्थित रूप ग्रहण किया। प्रस्तुत संदर्भ में धर्म की व्याख्या संभवतः प्राकृतिक कानून के रूप में की जा सकती है। समाज का प्राकृतिक कानून यही था कि सामाजिक व्यवस्था की, और दरअसल वर्ण-व्यवस्था की रक्षा की जाए।"[27]

उपनिषदों में कर्म सिद्धान्त का समर्थन किया गया है। उपनिषदों में भावी जीवन के विचार को आवागम का स्थान दिया गया जिसके अनुसार व्यक्ति के जन्म को विगत जीवन के कर्मों पर आधारित बताया गया है, अर्थात् जिन लोगों का गत जीवन अच्छा और सदाचरण का रहा है वे लोग अच्छा जन्म प्राप्त करेंगे और जिन लोगों का गत जीवन बुरा और दुराचरण का रहा है उन्हें बुरा जन्म मिलेगा, इस

---

[26] भारतीय समाज एवं विचार धाराएँ- जाटव डी.आर, पृ.19

[27] भारत का इतिहास- रोमिला थापर, पृ.39

प्रकार उपनिषद् कर्म सिद्धान्त को वर्णाश्रम व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग मानते हैं।"[28]

रामायण और महाभारत में भी कर्म और आवागमन की सत्ता को स्वीकारा गया है तथा ईश्वर द्वारा मनुष्य के कर्मानुसार सुख-दुख प्रदान करने के विचार को प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः कर्म-धर्म का सिद्धान्त वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति का आधार भले ही न हो पर इस सिद्धान्त की मान्यताएँ भारतीय जनमानस पर आदिकाल से ही बलवती रही हैं।

१.१.२.३.४ गुण सिद्धान्त

गुण सिद्धान्त की मान्यता है कि व्यक्ति के स्वाभाविक गुणों के आधार पर वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति हुई है। भारतीय अथवा हिन्दु मान्यता में मनुष्य के स्वभाव में तीन प्रकार के गुणों- सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण का होना बताया गया है। किसी व्यक्ति के स्वभाव में जिस गुण की प्रधानता होती है, वह उसी के आधार पर वर्ण विशेष का वरण करता है। सतोगुण प्रधान व्यक्ति को ब्राह्मण, रजोगुण प्रधान व्यक्ति को क्षत्रिय, तमोमिश्रित रजोगुण प्रधान व्यक्ति को वैश्य तथा तमोगुण प्रधान व्यक्ति को शूद्र माना गया है। इस सिद्धान्त की मान्यतानुसार व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण उसके जन्म की बजाय, उसके गुणों पर आधारित होता है।

महाभारत के एक प्रसंग में जल-देवता धर्मराज युधिष्ठिर से पूछते हैं कि "ब्राह्मण कौन हैं? इस प्रश्न के उत्तर में धर्मराज युधिष्ठिर कहते हैं कि, जो सत्यवादी है, दानी है, दयालु है, क्षमाशील है, जो चरित्रवान है तथा जो दूसरों के प्रति

---

[28] हिन्दु सोशल आर्गनाईजेशन- प्रभु. पी.एच, पृ.20

सहानुभूति रखता है और जो तपस्वी है वही स्मृतियों द्वारा ब्राह्मण कहा गया है। जल-देवता युधिष्ठिर से पुनः प्रश्न करते हैं कि यदि उक्त गुण एवं लक्षण किसी शूद्र में हो? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि यदि ये गुण किसी शूद्र में पाए जाए तो वह शूद्र नहीं वरन् एक ब्राह्मण ही है और यदि किसी ब्राह्मण में इन गुणों का अभाव है तो वह ब्राह्मण नहीं शूद्र है।"[29]

इस प्रकार गुण सिद्धान्त व्यक्ति के स्वाभाविक गुणों को वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति का प्रमुख आधार मानता है। दयानन्द सरस्वती का मत है कि "छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंड ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गए थे।"[30] अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है ऐसा ही आगे भी होगा।

"वैदिक काल के प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था कठोर नहीं थी। व्यवसाय बहुत निश्चित नहीं थे। व्यक्ति गुण वे प्रतिभा के अनुसार अपना व्यवसाय चुन सकता था। तदनुसार वह अपना वर्ण भी बदल सकता था।"[31]

प्राचीन काल के साहित्य में अनेक ऋषियों का वर्णन मिलता है जो मूलतः ब्राह्मण नहीं थे परन्तु अपने गुण-कर्म के आधार पर उन्हें ब्राह्मण स्वीकार किया गया। ऐसे ऋषियों में मुख्यतः वाल्मीकि, श्रृंगी, अगस्त्य, विश्वामित्र, गौतम, व्यास और कौशिक का उल्लेख मिलता है।

---

29 उद्धृत- भारतीय समाज व संस्कृति- मुकर्जी रवीन्द्रनाथ, पृ.42-43

30 सत्यर्थ प्रकाश- दयानन्द सरस्वती, पृ.85

31 भारतीय दलित समस्याएँ एवं समाधान- डॉ, रामगोपाल सिंह, पृ.153

गुण सिद्धान्त के आधार पर वर्ण-विभाजन के बारे में डी.आर. जाटव का मत है कि "जब वर्ण-व्यवस्था का रंग और कार्यात्मक आधार मानव स्वरूप की अभिव्यक्ति करने में निरर्थक सिद्ध हुआ, तब वर्ण-विभाजन को सही सिद्ध करने के लिए गुणों के सिद्धान्त को प्रस्तुत किया गया। यह वास्तव में वर्ण-व्यवस्था के रंगाधार का नवीन औचित्य स्थापन था किन्तु वह आधार भी निरर्थक साबित हुआ क्योंकि मानवीय संबन्धों में इस प्रकार का विभाजन अव्यावहारिक था। वर्ण-व्यवस्था के सिद्धान्त और व्यवहार में भरी अन्तर रहा।"[32]

"यद्यपि वर्ण-विभाजन के गुणात्मक आधार को सिद्धान्तः स्वीकार कर लिया था, किन्तु एक वर्ण से, जिसमें व्यक्ति पैदा होता था, गुणों के आधार पर किसी उच्च वर्ण में जाने की गतिशीलता को व्यवहार में मुश्किल से ही लागू किया। आज ब्राह्मणोत्तर वर्ण वाले गुण और कर्म दोनों से ब्राह्माणवत है, किन्तु उन्हें जन्मना जाति के आधार वाले वर्ण से ही पहचाना जाता है।"[33] यद्यपि गुण सिद्धान्त वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के संबन्ध में व्यक्ति के गुणों की महत्ता प्रतिपादित करता है तथापि प्राचीन साहित्य के अवलोकन से ऐसे अन्य उदाहरण ही प्राप्त होते हैं जबकि किसी व्यक्ति को उसके गुणों के आधार पर समुचित वर्ण प्राप्त हुआ हो।

१.१.२.३.५ जन्म सिद्धान्त

जन्म सिद्धान्त की मान्यता है कि व्यक्ति के वर्ण का निर्धारण उस परिवार से होता है जिसमें वह जन्म लेता है। यद्यपि वर्ण व्यवस्था अपने प्रारंभिक काल में जन्म मूलक नहीं थी तथापि विभिन्न वर्गीय स्वार्थों के चलते यह स्मृतियों के काल तक

---

[32] भारतीय समाज एवं विचार धाराएँ- जाटव. डी. आर, पृ.30

[33] वहीं, पृ.30

आते-आते जन्म मूलक बना दिया गया। "स्वार्थपरायणता मानव प्रकृति का एक अंग-सी मालूम पड़ती है। शुद्ध से शुद्ध मानव प्रकृति में भी स्वार्थ का एक अंश अवश्य दृष्टिगोचर होता है। परिणाम यह होता है कि जिन विधाओं का रसास्वादन हम एक बार कर लेते हैं, उन्हें हम छोड़ना नहीं चाहते। हमारी यही इच्छा होती है कि उन पर हमारा तथा हमारी भावी सन्तान का एकाधिकार बना रहे। ब्राह्मण समुदाय ने समाज में जिस उच्च पद को कठोर परिश्रम के द्वारा हासिल किया था, उसे अपने ही कुल में सीमित रखने की उन्हें स्वभावतः एक प्रबल इच्छा हो गयी। उन्हें भय हुआ की कहीं ऐसा न हो कि अन्य वर्ण के लोग भी गुण-कर्मों के द्वारा उन्नति करते-करते हमारे पद को छीन लें तथा हमारी भावी सन्तानें अयोग्यता के कारण वर्णान्तर में ढकेल दी जाए। अतः वर्ण-निर्णयार्थ वे केवल जन्म को ही सब कुछ मानने तथा ऐसे-ऐसे श्लोकों की रचना करने लगे।"[34] यथा-

"ब्राह्मणो जायमानोहि पृथव्यामधिजायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्म-कोशस्य गुप्तये।। (मनु १/९९)
सर्वस्वयं ब्राह्माणस्येदं यात्किंचिज्जगती गतम्
श्रेष्ठ्येनाभिजनेनेद सर्व वै ब्राह्माणोडर्हति।। (मनु १/१००)
स्वमेय ब्राह्माणे भुक्ते स्वं वस्तुते स्वं ददाति च।
आनृशंस्याद ब्राह्माणास्य भुंजते हतिरे जनः। (मनु १/१०१)

अर्थात् ब्राह्मण जन्म लेते ही पृथ्वी के समस्त जीवों में श्रेष्ठ होता है। वह सभी प्राणियों का ईश्वर है और धर्म के खजाने का रक्षक है। इस जगत् में जो कुछ संपत्ति है, वह ब्राह्मण की ही निजी संपत्ति है। अपने उत्तम जन्म के कारण सकल संपत्तियों को पाने के योग्य है। ब्राह्मण यदि पराया अन्न भोजन करता है, पराया वस्त्र पहनता

[34] हिन्दु जाति का उत्थान और पतन- शास्त्री रजनीकान्त, पृ.258

है और पराए का धन लेकर दूसरों को देता है तो वह सब उसके ही अन्नादि हैं, क्योंकि अन्य सब लोग ब्राह्मण की दया से ही भोजनादि पाते हैं।"[35] बी.के. चटोपाध्याय का मत है कि "यदि किसी मनुष्य का वर्ण उसकी वृत्ति या कर्म पर निर्भर होता तो द्रोणाचार्य को युद्धकला में निपुणता के कारण क्षत्रिय कहा जाता, पर ब्राह्मण कुल में जन्म के कारण उन्हें ब्राह्मण कहा जाता है न कि क्षत्रिय।"[36] इस प्रकार जन्म का सिद्धान्त वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति को जन्म पर आधारित मानता है, जबकि वास्तविक तथ्य यह है कि जन्म जाति व्यवस्था का निर्धारक तत्व तो हो सकता है पर यह वर्ण व्यवस्था का निर्धारक तत्व प्रतीत नहीं होता।

वर्णोत्पत्ति के उपर्युक्त विभिन्न सिद्धान्तों के विश्लेषण करने पर यह प्रतीत होता है कि वर्ण व्यवस्था का कोई निश्चित और स्थायी प्रारूप प्राप्त करना मुश्किल है। चूँकि वर्ण व्यवस्था का किसी समय विशेष पर निर्माण नहीं हुआ और न ही समय विशेष पर लागू किया गया, वरन् वर्ण व्यवस्था क्रमिक विकास का प्रतिफल प्रतीत होता है। पुराने समय में मनुष्य समाज बहुत ही छोटा था और उनकी आवश्यकताएँ भी सीमित थी। मनुष्य प्रकृति के साथ रहकर देवता समान जीवन बिताते थे। शायद इसलिए पहला युग सत् युग हो गया होगा। धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ने पर मनुष्य के बुद्धि का विकास तथा अनेक आविष्कार हुआ तब समाज के कार्य भी बढ़े, विभिन्न कार्य का विभिन्न दृष्टियों से विभाजन की आवश्यकता हुई तदनुकूल विभिन्न कर्म निश्चित किए गये। परिणाम स्वरूप कुछ लोग ऊपर आ गये, कुछ नीचे आ गये। उल्लेखनीय बात यह कि कर्म निश्चित करते वक्त कुछ लोग अपने हित कार्य सोचा होगा, इसलिए उन्हें ब्राह्मणादि नाम से अभिहित किया गया। पहले सभी कर्म

---

35 हिन्दु जाति का उत्थान और पतन- शास्त्री रजनीकान्त, पृ.259

36 वहीं, पृ.43

समान स्तर पर स्वीकृत थे। किन्तु बाद में विभिन्न कर्मों को ऊँची-नीची दृष्टि से देखने लगे और तदनुकूल वर्ण भी उच्च या निम्न माने जाने लगे। यही से मनुष्य को कर्म के अनुसार मान्यता और गरिमा प्रदान करने की प्रथा को समाप्त कर जन्म के आधार पर गरिमा प्रदान करने की रीति आ गयी।

१.१.२.४ वर्ण व्यवस्था : अम्बेडकर की दृष्टि में

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार "प्रत्येक हिन्दु का यह दृढ़ विश्वास है कि हिन्दु समाज की रचना ईश्वर द्वारा की गई है। ईश्वरीय उत्पत्ति को दृष्टिगत रखते हुए समाज को स्थायी रूप से चार वर्णों में विभाजित किया गया है। सामाजिक व्यवस्था में अपने निर्धारित स्थानों के संदर्भ में ये चार वर्ण स्तरीकृत असमानता के एक क्रम में एक दूसरे से संबन्ध है। चारों वर्णों के व्यवसाय पूर्व निश्चित है। यह व्यवस्था वर्ण व्यवस्था के नाम से जानी जाती है, जो हिन्दु धर्म व समाज की आत्मा है। प्रत्येक हिन्दु इस पर गर्व करता है। वह समझता है कि यह विश्व की सबसे अच्छी व्यवस्था है।"[37]

डॉ. अम्बेडकर ने चतुर्वर्ण व्यवस्था को एक न्यायोचित व वैज्ञानिक समाज व्यवस्था नहीं माना। उन्होंने चतुर्वर्ण व्यवस्था की अनेक दृष्टियों से कटु आलोचना की। छः मई १९३५ को 'शिड्यूल कास्ट फेडरेशन' की एक सभा को संविधान निर्माण और सांप्रदायिक समस्या विषय पर संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि "वर्ण व्यवस्था के दूषित परिणामों को व्यक्त करने के लिए बहुत कुछ कहने की आवश्यकता है। मेरी राय में वर्ण व्यवस्था ईश्वरीय नहीं है, वर्णोत्पत्ति संबन्धी ऋग्वेदिक सिद्धान्त

---

[37] डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन- रामगोपाल सिंह, पृ.60

असत्य एवं प्रक्षिप्त है।"[38] प्राचीन हिन्दु साहित्य में उपलब्ध तथ्यों की व्यवस्थित जाँच के आधार पर डॉ. अम्बेडकर ने यह सिद्ध किया कि वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति संबन्धी ऋग्वैदिक सिद्धान्त असत्य है। ऋग्वेद में कहा गया है कि पुरुष के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जाँघ से वैश्य और पैर से शुद्र उत्पन्न हुए, किन्तु पुरुष सूक्त को ऋग्वेद में बाद में जोड़ गया है।

सामवेद में न तो वर्णों का और न ही पुरुष सूक्त का उल्लेख है। यजुर्वेद में वर्णों का उत्पत्ति का वर्णन है। इसके दो भाग है- शुक्ल यजुर्वेद एवं कृष्ण यजुर्वेद। शुक्ल यजुर्वेद में वर्णों की उत्पत्ति का उल्लेख है किन्तु उसमें और ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में एकरूपता नहीं है। शुक्ल यजुर्वेद की वाजस्त्रेयी संहिता जिसमें वर्ण एवं वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन तो है किन्तु वह पुरुष सूक्त से मेल नहीं खाता। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तरीय संहिता में वर्णों की उत्पत्ति के संबन्ध में एक स्थान पर जो वर्णन है वह ऋग्वेद से मिलता है किन्तु दूसरे स्थान पर इससे भिन्न वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद में पुरुष सूक्त सन्निहित तो है किन्तु उसके श्लोकों का क्रम ऋग्वेद से भिन्न है। सतपंथ ब्राह्मण और तैत्तरीय ब्राह्मण भी वर्णों की उत्पत्ति सम्बन्धी ऋग्वेद के सिद्धान्त का अनुमोदन नहीं करता। तैत्तरीय ब्राह्मण से ब्राह्मण की उत्पत्ति देवों से तथा शूद्रों की उत्पत्ति असुरों से बताई गई है।

मनु [39] के अनुसार विश्व की वृद्धि के लिए ईश्वर ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उरू से वैश्य तथा पैर से शूद्र को उत्पन्न किया। अम्बेडकर इसे ऋग्वैदिक मान्यता की पुनरावृत्ति मानते हैं। इसमें कुछ भी मौलिक नहीं। विष्णु

---

38 डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन- रामगोपाल सिंह, पृ.61

39 मनुस्मृति-१:३१ उद्धृत- डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन-रामगोपाल सिंह, पृ.61

पुराण, हरिवंश पुराण, भागवत पुराण, वायु पुराण आदि में वर्णों की उत्पत्ति संबन्धी कथाओं का उल्लेख करते हुए अम्बेडकर ने दर्शाया कि इसमें सैद्धान्तिक मतैक्य नहीं है क्योंकि इनमें से कुछ न तो ऋग्वैदिक मान्यता की पुष्टि की है जबकि अन्य में भिन्न विचार प्रस्तुत किए हैं।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वेदों एवं पुराणों में वर्णों की उत्पत्ति की समान या तर्कसंगत व्याख्या नहीं मिलती। वर्णों की रचना किसके द्वारा हुई इस पर भी अनेक मत मिलते हैं। ऋग्वेद में वर्णों की उत्पत्ति पुरुष से, सतपंथ ब्राह्मण में प्रजापति एवं ब्राह्मा से, रामायण में कश्यप से और कहीं वर्णों की उत्पत्ति मनु से बताई गई है।

इस प्रकार प्राचीन धर्म ग्रन्थों के तुलनात्मक विवेचन के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर ने यह साबित करने का सफल प्रयास किया कि वर्ण व्यवस्था ईश्वरीय नहीं है। ईश्वरीय उत्पत्ति बताकर अपने को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना तथा इस श्रेष्ठता को अकाट्य एवं अपरिवर्तनीय निरूपित करना ब्राह्मणों की चाल है। वर्णों की ईश्वरीय उत्पत्ति बताने वाला पुरुष सुक्त ऋग्वेद का मूल अंश नहीं है। यह ब्राह्मणों द्वारा गढ़ा गया है, इसे अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ब्राह्मणों ने आगे चलकर चुपचाप ऋग्वेद में जोड़ दिया गया है।

अम्बेडकर के अनुसार चतुर्वर्ण कोई विकसित या वैज्ञानिक समाज व्यवस्था नहीं। इसका विकास तब हुआ जबकि मानव मस्तिष्क आदिम स्तर पर था। इसमें विभिन्न वर्णों के बीच सेवाओं और अधिकारों के विभाजन का कोई तार्किक या वैज्ञानिक आधार नहीं है। हिन्दु समाज में वर्णभेद अम्बेडकर की दृष्टि में कोई अभूतपूर्व घटना नहीं है। प्रत्येक समाज में वर्ग भेद होता है, किन्तु हिन्दु समाज की

चतुर्वर्णीय समाज व्यवस्था विश्व में उद्‌भुत एवं अपूर्व अवश्य है। अम्बेडकर ने चतुर्वर्ण के उद्‌भुत एवं विशिष्ट होने के निम्न कारण बताये हैं-

(i) ऋग्वैदिक काल में चतुर्वर्ण समाज का वास्तविक स्वरूप था, किन्तु पुरुष सूक्त ने इसे ईश्वर रचित बताकर इसको यथार्थ के आदर्श स्वरूप प्रदान कर दिया।

(ii) कोई भी समाज अपने वास्तविक स्वरूप को कानूनी स्वरूप प्रदान नहीं करता किन्तु पुरुष सूक्त ने चतुर्वर्ण को कानूनी परिधान पहनाया।

(iii) अन्य समाजों में भी ऋणी विभाजन का उल्लेख मिलता है किन्तु वह सामान्य तथा लचीला होता है। पुरुष सुक्त में वर्णित विभाजन स्थायी है।

(iv) पुरुष सूक्त ने वर्णों की स्थिति को सदा सर्वदा के लिए निश्चित कर दिया। चतुर्वर्ण व्यवस्था में वर्णों के प्रति आदर एवं अनादर का विभाजन अटूट एवं अपरिवर्तनीय है। ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च है और शूद्र की सबसे निम्न है।[40]

चतुर्वर्ण अम्बेडकर के अनुसार श्रम विभाग नहीं है। यदि ऐसा होता तो इसमें श्रमिकों को स्वेच्छा से अपना पेशा चुनने का अधिकार होता। जो जैसा व्यवसाय चुनता उसे उसके अनुरूप समाज में मान्यता प्राप्त होती, किन्तु ऐसा नहीं है। विद्धान बनिया बनिया ही रहता है। वह ज्ञान प्रधान ब्राह्मण नहीं बन जाता है। ब्राह्मण यदि खेती करता है तो वह वैश्य नहीं ब्राह्मण ही कहलाता है। अतः चतुर्वर्ण श्रम विभाग नहीं वरन् श्रमिकों का विभाजन है। जो जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति की देह से चिपका ही नहीं वरन् देह में समाया रहता है।

---

[40] डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन- रामगोपाल सिंह, पृ.63

१.१.२.५ जाति व्यवस्था की उत्पत्ति

जाति शब्द 'जात' से बना है, जिसका अर्थ होता है- जन्म। और वर्ण का अर्थ रंग होता। इस प्रकार जाति का आधार जन्म और शरीर का रंग प्रतीत होता है। भारतीय साहित्य में 'वर्ण' और 'जाति' दोनों ही शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। किन्तु प्राचीन साहित्य में 'वर्ण' शब्द का उल्लेख पहले और 'जाति' शब्द का उल्लेख बाद में मिलते है। अतः वर्ण व्यवस्था से ही भारत में जाति व्यवस्था का जन्म हुआ। विवाह तथा अन्य सामाजिक कृत्यों को लेकर वर्ण, जाति के रूप में विखंडित होते गए।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के संबन्ध में विभिन्न विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। फ्रेंच विद्वान सीनार ने जाति-व्यवस्था को एक ऐसी संकुचित संस्था बताते हैं, जो प्रत्येक पक्ष में पैतृक है। इसका एक मुखिया होता है तथा कुछ ऐसी परम्पराएँ होती हैं, जिनके द्वारा वे लोग अपना जीवन-यापन करते हैं। समय-समय पर उनकी सभाएँ होती रहती है। उनके सामान्य त्योहार एवं सामान्य व्यवसाय होते हैं। इस संस्था का अधिकार क्षेत्र केवल अपने सदस्यों तक ही सीमित रहता है। कोई भी व्यक्ति इस समुदाय का विरोध नहीं कर सकता। विरोध करने वाले व्यक्ति का बहिष्कार होना आम बात है। ऐसे व्यक्ति की सदस्यता सदा के लिए समाप्त कर दी जाती है, ताकि वह समुदाय या जाति दूषित न कर सके।

नसफील्ड ने जाति को एक श्रेणी बताया है, जो किसी अन्य जाति से अपना संबन्ध अस्वीकार करती है, जो न अंतर्जातीय विवाह कर सकती है और न अपनी जाति छोड़कर अन्य किसी जाति के साथ खान-पान कर सकती है। संक्षेप में

नसफील्ड के अनुसार अंतर्जातीय विवाह, खान-पान का न होना जाति-व्यवस्था का कारण है।

सर एच. रिजले ने इसे परिवारों या परिवार-समुदायों का समूह कहा है, जिसका विशिष्ट व्यवसाय से संबन्ध होता है। ये अपना उद्‌गम पौराणिक मानवी अथवा दैवी-पूर्वजों से होने का दावा करते हैं।

डॉ. केतकर ने जाति को एक समूह कहा है, जिसकी दो मुख्र विशेषताएँ होती है-(१) जाति में सदस्यता केवल उन्हीं तक सीमित रहती है, जो उसमें पैदा होती हैं और (२) इसके सदस्य किसी अन्य समुदाय के व्यक्तियों के साथ शादी-विवाह नहीं कर सकते हैं।[41]

डॉ. अंबेडकर के अनुसार एक ही जाति में विवाह करने की व्यवस्था जाति की उत्पत्ति का मुख्य कारण है। इसको जातीय विवाह प्रथा कहते हैं। यही जाति-व्यवस्था का मूलाधार है। जाति उत्पत्ति के बारे में डॉ. अंबेडकर का आशय है कि प्रारंभ में ब्राह्मण वर्ग ने अपनी रक्त-शुद्धता या सामाजिक-नैतिक मर्यादा के लिए अपने बीच ही जाति-प्रथा चलायी। उनके यहाँ सजातीय और विगोत्रीय विवाह का प्रचलन हुआ और कालान्तर में ब्राह्मण श्रेष्ठता को स्वीकार करते हुए उसकी नकल और अनुकरण द्वारा अन्य वर्गों में भी जाति-प्रथा का प्रचलन हो गया। कुछ ने दूसरों के लिए अपना दरवाज़ा बन्द कर लिया और कुछ ने अपने लिए दूसरों के द्वार बन्द पाये। कोई उपाय न देख्रकर दूसरों ने भी अपने दरवाज़े बन्द कर लिये।

---

41 डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर लेख्र एवं भाषण, खंड-१, पृ.7-8

उनके शब्दों में- "अनुसरण सरल है, आविष्कार कठिन। ...भारत में जाति-प्रथा निम्न वर्ग द्वारा उच्च वर्ग की नकल का प्रतिफल है।"[42]

डॉ. अम्बेडकर जाति-प्रथा के लिए किसी एक मनु या केवल ब्राह्मण समुदाय को ही दोषी नहीं मानते। वे लिखते हैं कि, "...मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जाति-प्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था, इसलिए उसने उसे एक दर्शन का रूप दिया, ...प्रचलित जाति-प्रथा को ही उसने संहिता का रूप दिया और जाति-धर्म का प्रचार किया। जाति-प्रथा का विस्तार और उसकी दृढ़ता इतनी विराट है कि एक व्यक्ति या वर्ग की धूर्तता और बलबूते का काम नहीं हो सकता। ...ब्राह्मण और कई बातों के लिए दोषी हो सकते हैं, और मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि वे हैं भी, परन्तु गैर-ब्राह्मण या अन्य जन-समुदायों पर जाति-प्रथा थोपना उनके बूते के बाहर की बात थी।"[43]

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार "जाति माने समाज में जनसंख्या का निश्चित, स्थायी एवं अन्तर्विवाह के नियम पर आधारित अनुलंघनीय इकाइयों या समूहों में विभाजन है।"[44]

"वर्ण और जाति एक नहीं है। वर्ण शब्द समाज में उन चार भागों- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को घोषित करता है, किन्तु जाति शब्द दो वर्णों के संयोग से

---

42 भारत में जाति-प्रथा- बाबा साहेब डॉ.अम्बेडकरः सम्पूर्ण वाड्मय, खण्ड-१,पृ.30-31

43 वहीं, पृ.29

44 डॉ.अम्बेडकर का विचार दर्शन- रामगोपाल सिंह, पृ.76

उत्पन्न संतति के लिए प्रयुक्त होता है। चारों वर्णों के पुरुषों और स्त्रियों के पारस्परिक मिलन से उत्पन्न संतान जाति नाम से अभिहित है।"[45]

कालान्तर में जाति-व्यवस्था शोषण, अत्याचार एवं अन्याय का साधन बन गयी। लोगों में पृथकता की भावना बढ़ गयी। प्रेम एवं सद्भावनाएँ जाति तक सीमित हो गयी।

१.१.२.५.१ अस्पृश्यता : एक विवेचन

वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत शूद्रों को चौथी एवं अंतिम पायदान पर स्थापित किया गया था तथापि उक्त विभाजन के अंतर्गत ऊँच-नीच और अस्पृश्यता या छुआछूत जैसी भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। मनु ने चार वर्णों का उल्लेख किया है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि अस्पृश्यता को हिन्दु समाज का अंग माना जाता है तो वे इन चार वर्णों के सबसे निम्न वर्ण अर्थात् शूद्र वर्ण के अंग है। अम्बेडकर की राय में यह गलत है क्योंकि मनु चार वर्णों के अतिरिक्त मनुष्यों की एक श्रेणी जिसे बाह्या कहा है (मनु १०:२८)। बाह्या वर्ग के अंतर्गत मनु ने दो वर्गों का उल्लेख किया है। एक वर्ग को उन्होंने हीन (मनु १०:३१) तथा दूसरे वर्ग को अन्त्यवासिन (मनु, १०:३९) कहा है।[46] इसके आधार पर वे सब लोग जो बाह्या या पाँचवें वर्ण में आते हैं, अछूत हैं। क्योंकि ये चतुर्वर्ण के अंग नहीं हैं, उससे बाहर है। इसलिए इन्हें अंत्यज, चण्डाल या अन्त्यवासिन भी कहते हैं।

"मनु के मत से केवल चण्डाल ही अस्पृश्य है, किन्तु कालान्तर में अस्पृश्यता कुछ अन्य जातियों को भी स्पर्श कर लिया। कुछ कट्टर स्मृतिकारों ने तो यहाँ तक

---

45 भारतीय धर्मशास्त्रों में शूद्रों की स्थिति, पृ.37

46 डॉ.अम्बेडकर का विचार दर्शन- रामगोपाल सिंह, पृ.79

लिख दिया कि शूद्र के स्पर्श से द्विजों को स्नान कर लेना चाहिए।"[47] धर्मग्रन्थों के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि अस्पृश्यता की धारणा के पीछे धार्मिक द्वेष, घृणा, गन्दे व्यवसाय, पवित्रता और मोक्ष की कामना जैसी धारणाओं का संयुक्त योगदान रहा है।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, "गौ-माँस भक्षण अस्पृश्यता की जड़ हैं।"[48] गो-भक्षण पर लगे प्रतिबन्ध के समय को अस्पृश्यता की उत्पत्ति से जोड़ते हुए उनका मत है कि "अस्पृश्यता की उत्पत्ति ईसा की मृत्यु के ४०० वर्ष बाद हुई। इसकी उत्पत्ति ब्राह्मणवाद एवं बौद्ध धर्म में प्रभुता के लिए जो संघर्ष हुआ, उसके कारण हुई। जिसने भारत के इतिहास को पूर्ण रूप से बदल दिया तथा भारतीय इतिहास के छात्रों ने इसका अध्ययन करने की ज़रूरत नहीं समझी और इसे तिरस्कृत किया।"[49] अस्पृश्यता की अवधारणा के संबन्ध में प्रत्येक मत उसके आंशिक पक्ष को ही उद्घाटित करता है संपूर्ण पक्ष को नहीं। स्वयं धर्मग्रन्थों में वर्णित मान्यताएँ भी अन्तर्विरोधी हैं। जगजीवन राम का मत है कि "वर्ण-व्यवस्था और उसके परिणाम छुआछूत की प्रभा, भारत की एक अनूठी सामाजिक वास्तविकता है, जिसकी जटिलता आसानी से समझ में नहीं आती। सामाजिक विकास के प्रारंभिक चरण में समाज का वर्गों या व्यवसाय के आधार पर अलग-अलग समूहों में बाँट जाना अनिवार्य ही था और यह वर्ग अथवा समूह पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते रहे। इस प्रकार इतिहास के प्रारंभ से ही जाति-प्रथा की कुछ विशेषताएँ रही हैं। कबीलों की एक विशेषता यह है कि रोटी और बेटी के रिश्ते उनमें अपने तक ही सीमित रहते हैं। जब राष्ट्रों ने जन्म

---

47 धर्मशास्त्र का इतिहास- काणे. पी.वी, पृ.169

48 अस्पृश्य कौन और क्यों?- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, पृ.104

49 वहीं, पृ.114

लिया तो उनमें बहुत से कबीले या जातियाँ थीं, जिनमें एक-दूसरे के प्रति अत्यधिक घृणा और द्वेष की भावना विद्यमान थी। यद्यपि ये कबीले एक-जैसी भाषा बोलते थे और एक-दूसरे से मिलते हुए क्षेत्रों में रहते थे पर उनमें परस्पर शादी-ब्याह नहीं होते थे। अपनों के साथ रोटी का रिश्ता अर्थात् अपने लोगों को ही खान-पान में शामिल करना इसलिए नहीं था कि दूसरों के साथ बैठकर खाने-पीने से भ्रष्ट होने का डर था, बल्कि इसलिए कि वे कठोर परिश्रम से जुटाए गए अन्न का सदुपयोग करना चाहते थे।"[50]

इस प्रकार अस्पृश्यता के जन्म और विकास क्रम अत्यंत गूढ़ और जटिल प्रतीत होती है और इससे भी अधिक जटिल है सदियों की वह विकास यात्रा जिसमें दलितों ने अत्याचार, शोषण, उत्पीड़न, अपमान और संत्रास की वेदना को झेला है और इसकी छाया वर्तमान में भी यदा-कदा दृष्टिगोचार होती रहती है। सन् १९५० में लागु भारतीय संविधान ने मनुस्मृति पर आधारित श्रेणीबद्ध असमानता को नकार कर स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की भावना को आत्मसात किया था। सन् १९५५ में नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम एवं सन् १९८९ में अनुसूचित जाति-जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम लागु किया गया परन्तु जातीयता एवं अस्पृश्यता के अदृश्य प्रेत से संपूर्ण छुटकारा नहीं मिल सका है। यद्यपि कानून द्वारा अस्पृश्यता का उन्मूलन हो चुका है, लेकिन मौजूदा जातिगत ढाँचा के कारण समाज में आज भी इसकी छाया परिलक्षित होती है।

---

[50] भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या- जगजीवन राम, पृ.9

१.१.२.५.२ जाति व्यवस्था : गाँधी और अम्बेडकर : तुलनात्मक दृष्टि

गाँधीजी और अम्बेडकर दोनों अपने-अपने ढंग के सामाजिक विचारक थे, लेकिन इतिहास की यह एक अजीब विडम्बना है कि अम्बेडकर और गाँधी दोनों ही रूढ़िवाद, सामाजिक शोषण और जाति-प्रथा के कलंक को मिटाने की लड़ाई लड़ने पर भी अलग-अलग रहे, मिलकर लड़ाई कभी न लड़ सके, जबकि दोनों का सरोकार जाति-व्यवस्था से था। इस विषय में दोनों में समानता हैं, किन्तु दोनों की विचार प्रविधियों और दृष्टिकोणों में एक गहरी भिन्नता दिखाई देता है। यह भिन्नता वैचारिक स्तर पर ज़्यादा गहरी है। गाँधीजी का मानसिक गठन एक विचारशील सनातनी हिन्दु के साँचे में छोड़े से अन्तर के साथ समाहित है, पर अम्बेडकर के मन में अपने कटु अनुभवों के कारण हिन्दु समाज व्यवस्था और चिन्तन दृष्टि के प्रति घृणा का भाव है।

जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता को गाँधीजी और अम्बेडकर हिन्दु समाज का कलंक मानते हैं। लेकिन गाँधीजी जब वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हैं, तब अम्बेडकर से भिन्न दिखाई देती है। अम्बेडकर सामाजिक सुधार की आवश्यकता से ज़्यादा सामाजिक क्रान्ति के पक्षधर हैं। अतः अम्बेडकर समाज को नए सिरे से संगठित करना चाहते थे वही गाँधीजी समाज में ही परिवर्तन करना चाहते थे। जातिवाद का दानव जब तक नहीं मरता, तब तक आर्थिक व राजनीतिक परिवर्तन की बात सपना ही रहेगी। क्योंकि जातिवाद, वर्ण-व्यवस्था न तो श्रम-विभाजन पर आधारित है- न प्रकृति प्रदत्त है।

गाँधीजी में हिन्दुत्व का वैभव संस्कार, भक्ति भाव, अध्यात्म, नरसी मेहता का सन्त भाव प्रबल था और अम्बेडकर में दलित गुलामी के कटु अनुभव प्रबल थे।

गाँधीजी में हिन्दु संस्कृति, हिन्दु धर्म के प्रति जो गहरे आदर का भाव था- वह भावभूमि अम्बेडकर की नहीं थी। गाँधीजी को पुनर्जन्म सिद्धान्त, कर्म सिद्धान्त में आस्था थी और यही जाति-व्यवस्था का आधार था। यह आधार वर्णाश्रम-व्यवस्था को संजोता था।

अम्बेडकर की राय में अस्पृश्यता को खत्म करना ही काफी नहीं। जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था को ही मूल से खत्म करना होगा। गाँधीजी वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हैं और अम्बेडकर उसे पूरी तरह अस्वीकार। दोनों भिन्न संस्कारों, मानसिकताओं और विचारों के व्यक्ति थे, जिनमें कभी पटरी नहीं बैठी। गाँधीजी कहते थे- "मेरे मत से हमारी वर्तमान दुर्गति का कारण जाति-प्रथा नहीं है। हमारी गुलामी का कारण है, हमारा लोभ और अनिवार्य गुणों के प्रति हमारी उपेक्षा। मेरा विश्वास है कि जाति-प्रथा ने हिन्दु धर्म को विघटन से बचाया है।"[51] गाँधीजी के ठीक विपरीत अम्बेडकर भारत के पतन और गुलामी का कारण जाति-प्रथा को ही मानते थे।

अम्बेडकर ने जाति-व्यवस्था के मुद्दे को नये सिरे से देखा है। उनकी राय में भारत में धर्म के नाम पर जाति को इतना फैला दिया गया है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी ओर जाति ही प्रभावशाली है। उनका कहना था कि हिन्दुओं में जाति के प्रति इतना अन्धविश्वास है कि वे कभी भी जाति को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो सकते। अम्बेडकर का तर्क था हिन्दु धर्म की मुख्य धारा ऐसी है जिसमें सुधार की कोई गुन्जाइश नहीं है। ऐसी अवस्था में अम्बेडकर को एक विकल्प दिखायी देता था

---

[51] उद्धृत- डॉ. अम्बेडकर : समाज व्यवस्था और दलित साहित्य- कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.26

और यह विकल्प था हिन्दु धर्म को छोड़कर किसी और धर्म को अपनाना। हिन्दु रहकर जाति-व्यवस्था को छोड़ना संभव नहीं था।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हिन्दुओं की जाति-प्रथा के संबन्ध में गाँधीजी और अम्बेडकर के विचार परस्पर विरोधी थे। गाँधीजी जाति व्यवस्था को बनाये रखते हुए अस्पृश्यता दूर करना चाहते थे। गाँधीजी को एक महात्मा और एक राजनीतिज्ञ के रूप में उद्देश्य यही था कि अस्पृश्यता को दूर कर और समाज सुधार के द्वारा अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीयों की एकता को मज़बूत किया जाए। यद्यपि गाँधी ने अपनी समकालीन जाति व्यवस्था को धिक्कारा परंतु उनका यह विश्वास था कि प्राचीन काल से चली आ रही वर्ण-आश्रम व्यवस्था, सामाजिक समरूपता, आत्मा के विकास और परंपरागत कर्तव्यों के निर्वाह के लिए आवश्यक है। गाँधी के अनुसार सभी वर्णों को समान प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए, भले ही उन्हें अवसरों की समानता प्राप्त न हो। गाँधीजी ने कहा था कि "यदि कोई व्यक्ति भंगी परिवार में उत्पन्न होता है, तो इसे अपनी आजीविका भंगी बनकर ही कमानी चाहिए। इसके बाद वह चाहे जो भी करे।"[52] गाँधी जाति-प्रथा और अस्पृश्यता को अलग-अलग मानते थे जबकि अम्बेडकर का मानना था कि "जब तक जाति-प्रथा चलती रहेगी, तब तक अस्पृश्यता भी मौजूद रहेगी।"[53]

गाँधी तथा अम्बेडकर की जाति के विषय में तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है कि जाति के विषय में गाँधी और अम्बेडकर के भिन्न मतों के पीछे उनकी अलग-अलग सामाजिक पृष्ठभूमि, अलग-अलग मानसिक गठन, उद्देश्य तथा व्यक्तित्व का

---

[52] हरिजन ६ मार्च १९३७- उद्धृत-आधुनिक भारत का दलित आंदोलन, पृ.249

[53] बोसवीं सदी का दलित आंदोलन- चन्द्र, उद्धृत आधुनिक भारत का दलित आंदोलन, पृ.249

होना ही प्रमुख कारण था। जहाँ गाँधीजी का मुख्य उद्देश्य अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद से भारत को स्वतंत्रता दिलाना था तथा इस स्वतंत्रता आन्दोलन में सभी भारतीयों की भागीदारी सुनिश्चित करना था दूसरी ओर अम्बेडकर की मूल समस्या भारत की राजनीतिक आज़ादी के बजाय जाति-प्रथा व सामाजिक अत्याचारों से मुक्ति दिलाकर दलित लोगों को हिन्दु समाज में उनके मानवाधिकारों को दिलवाना था।

१.१.२.६ भारतीय सामाजिक संरचना और दलित

दलित शब्द के अर्थ एवं परिभाषा पर चर्चा अलग से आगामी अध्याय मैं है इसलिए यहाँ भारतीय सामाजिक संरचना में दलित के स्थान पर ही चर्चा करेंगे। ऋग्वेद से लेकर गीता समेत अनेक धर्मग्रन्थों में वर्णित चतुर्वर्णीय विभाजन ने सामाजिक जीवन में दलितों के स्थान ही नहीं अपितु उनकी नियति को भी निर्धारित कर दिया। वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित सामाजिक संरचना ने शूद्रों अर्थात् दलितों को चौथी और अंतिम पायदान पर स्थापित किया और कालान्तर में सर्वाधिकार संपन्न लोगों ने धर्मग्रन्थों और उनकी व्याख्याओं के माध्यम से आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक निर्योग्यताओं का आरोपण कर दलितों के लिए ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दीं, जिनके चलते वे केवल पतन की ओर ही जा सकते थे, क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में उत्थान का प्रयास उनके लिए दिवास्वप्न मात्र ही था।

दलितों को आजीवन दलित बनाए रखने और उन्हें शिक्षा, धन तथा आत्मविकास के अवसरों से वंचित बनाए रखने की नियति से विशेषाधिकार संपन्न लोगों ने राज-शक्ति के प्रयोग एवं धार्मिक आधारों का भी सहारा लिया।

मनुस्मृति (८/४१८)[54] में राजा को हिदायत दी गई है-

वैश्यशूद्रों प्रयत्एन स्वानि कर्माणि कारएत्।

तौहिच्युतो स्वकर्मेश्यः सोमएतामिंद जगत।।

अर्थात् राजा को चाहिए कि वैश्यों और शूद्रों को अपने-अपने कर्मों में यत्नपूर्वक लगाए रहे, अर्थात् उनसे अपना-अपना कर्म करवाता रहे, क्योंकि यदि ये अपने-अपने कर्मों से भ्रष्ट होंगे, अर्थात् उन्हें त्याग देंगे तो ये जगत् को व्याकुल कर देंगे।

इस प्रकार धर्मग्रन्थों के उद्देश्यों और व्याख्याओं ने दलितों के उत्थान और विकास के किसी भी प्रयास को प्रतिबन्धित कर दिया। किसी भी समाज के लोकाचार को सदैव उच्च वर्ग ही प्रभावित करता है। अतः उच्चवर्गीय और विशेषाधिकार संपन्न वर्ग ने अपने हितस्वार्थ साधना के अनुसरण में दलितों के पतन, पराभव और उन पर लादी गई निर्योग्यताओं को लोकाचार और सामाजिक जन-जीवन का एक अंग बना दिया। इसके कारण दलित वर्ग आज भी धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विधि-विधानों की चक्कर में पिस रहा है, उसका उत्पीड़न और शोषण जारी है। इससे मुक्ति के लिए अनिवार्य है कि भारतीय संस्कृति और धर्म-ग्रंथों में ही परिवर्तन लाया जाए।

१.१.२.७ भारतीय सामाजिक संरचना का अम्बेडकरीय प्रारूप

डॉ. अम्बेडकर ने एक पंच फलकीय सामाजिक संरचना की कल्पना की। इस पंच फलकीय सामाजिक संरचना के आधारभूत तत्व हैं- 'धर्म, व्यक्ति, सामाजिक

[54] उद्धृत- शास्त्री रजनीकान्त- हिन्दु जाति का उत्थान और पतन, पृ.268

प्रजातंत्र, राजनैतिक प्रजातंत्र और आर्थिक प्रजातंत्रोन्मुख राज्य समाजवाद।'[55] उक्त पाँच तत्वों में अम्बेडकर ने भी परंपरात्मक संरचनाकारों की भांति धर्म को ही प्राथमिकता दी। सामाजिक संरचना की व्याख्या में अम्बेडकर ने मनु एवं अन्य हिन्दु शास्त्रकारों की भांति धर्म को ही संरचना का आधारभूत अथवा धारक तत्व निरूपित किया, किन्तु धर्म से अम्बेडकर का आशय धर्म अथवा बौद्ध धर्म से है न कि मजहब से।

परंपरात्मक समाज संरचना तथा अम्बेडकरीय समाज संरचना में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि जहाँ परंपरात्मक समाज संरचना की इकाई जाति है वहाँ दूसरी का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति है। परंपरात्मक संरचना में व्यक्तियों एवं समूहों के बीच संबन्धों का निर्धारण जाति के आधार पर होता है जबकि अम्बेडकरवादी समाज संरचना में संबन्धों का तानाबाना प्रजातंत्र के सिद्धान्तों पर बुना गया है। दोनों में दूसरा अंतर इस बात को लेकर है कि पहली व्यवस्था में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण जाति के आधार पर संयुक्त या सामूहिक रूप से होता है जबकि दूसरी में व्यक्ति की योग्यता एवं गुणों के आधार पर होता है।

अम्बेडकर की मान्यता थी कि समाज, राज्य और धर्म का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति है। इसलिए समाज, राज्य और धर्म का प्राथमिक उद्देश्य व्यक्ति के विकास के लिए अनुकूल पृष्ठभूमि का निर्माण करना होना चाहिए। जो समाज संरचना इस तथ्य की पालन नहीं करती है वह उन्नत और टिकाऊ नहीं हो सकती है।

परंपरात्मक समाज-संरचना एवं अम्बेडकरीय समाज-संरचना में तीसरा उल्लेखनीय अतंर यह है कि पहली व्यवस्था में आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक

---

[55] डॉ.अम्बेडकर का विचार दर्शन- रामगोपाल सिंह, पृ.111-112

संस्थाओं का विकास जाति व्यवस्था की रक्षा के लिए हुआ है जबकि दूसरी व्यवस्था में तत्संबन्धी संस्थाओं की रचना व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं अधिकारों की रक्षा के लिए हुई है। वस्तुतः अम्बेडकर सामाजिक जीवन में व्यक्ति की स्वतंत्रता और सम्मान की रक्षा को सर्वोपरि महत्व प्रदान करते थे। इसलिए संविधान में उन्होंने मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया, साथ ही इन अधिकारों के उल्लंघन के विरुद्ध आवश्यक वैधानिक प्रावधान किये जाने का प्रस्ताव भी दिया।

१.२ निष्कर्ष

व्यक्ति समाज की आधारभूत इकाई है जो परस्पर सामाजिक संबन्धों में बँधे रहते हैं। मनुष्य संगठित समाज में ही जन्म लेता है और अपना जीवन-यापन करता है। जिस सांस्कृतिक, भौगोलिक, धार्मिक परिवेश में वह रहता है, वही उसके अनुभवों को, जिनसे उसकी ज़िन्दगी बनती है, गति और दिशा प्रदान करता है। मनुष्य अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार समाज में अपना जीवन-यापन करना चाहता है लेकिन उसकी चुनाव की यह इच्छा भी सांस्कृतिक परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं से संचलित होती है। ये धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ भिन्न-भिन्न समुदायों अथवा समूहों की भिन्न-भिन्न होती हैं। प्रत्येक समाज विभिन्न समुदायों, वर्गों और समूहों में विभक्त रहता है। भारतीय सामाजिक संरचना बहुत प्राचीन है। समाज के कार्य सुचारू रूप से चलने के लिए प्राचीन काल में ही आर्यों ने कुछ निश्चित नियम और कानून निर्धारित कर रखे थे। कहा जाता है समाज में उचित व्यवस्था बनी रहने के लिए आर्यों ने चातुर्वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात किया था जिसके अनुसार भारतीय समाज को चार वर्णों में बाँट दिया गया था। लेकिन

तमिल संघकालीन कृतियों में भौगोलिक परिवेश के आधार पर वर्ण या जाति का नाम देने की प्रथा का भी प्रमाण मिलता है।

प्रत्येक वर्ण का निश्चित व्यवसाय था। तत्काल यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी परंतु कालांतर में मनुष्य की स्वार्थ-लोलुपता के कारण उसमें विकृति आकर यह जन्म पर आधारित होकर जाति-व्यवस्था में परिणत हो गई जो बाद में शोषण का माध्यम बनी। वर्ण-व्यवस्था में अभिजात कुलीन ब्राह्मण और क्षत्रिय विशिष्ट माने जाते थे और उन्होंने समाज की समस्त सुविधाएँ स्वायत्त कर ली थीं। इनके बाद व्यावसायिक वाणिज्य में संलग्न वैश्यों का स्थान था। इस व्यवस्था में सबसे निम्न स्तर शूद्रों का था। मध्य युग के कुछ पूर्व ही ब्राह्मण वर्ग की स्वार्थ-लोलुपता से, वर्गों का विभाजन जन्म के आधार पर होने से जाति-प्रथा के बंधन और नियम अत्यंत कठोर हो गए थे। मध्यकाल में आकर शूद्र या दलितों का कठोर शोषण हुआ था। उन्हें सभी मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया जिससे शूद्र या दलित वर्ग नरकीय जीवन जीने के लिए बाध्य हो गया। उल्लेखनीय है कि वर्ण व्यवस्था के बाहर भी लोग रहते थे जिन्हें चण्डाल, अंत्यज, आदि नामों से पुकारे जाते थे।

आधुनिक काल में अनेक सुधारवादी संगठनों और समाज सुधारकों के अथक प्रयत्न से दलित वर्ग की स्थिति में परिवर्तन आया है। इस प्रक्रिया में अन्य विभूतियों के साथ विशेष रूप से डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर और गाँधीजी आदि का योगदान है। आज भारतीय समाज में दलित वर्ग की स्थिति को सुधारने केलिए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किए गए हैं लेकिन व्यावहारिक स्तर पर अभी भी दलित वर्ग की शोषण-प्रक्रिया ज़ारी है। अतः यह हर बुद्धि जीवी और हर मनुष्य के लिए विचारणीय विषय है।

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

दूसरा अध्याय

दलित साहित्य का वैचारिक आधार

२. दलित साहित्य का वैचारिक आधार

इस अध्याय में प्रमुख रूप से दो तथ्यों का विश्लेषण तथा अध्ययन अवश्यक लगता है। पहला है दलित साहित्य संबंधी अवधारणा और दूसरा है दलित साहित्य का वैचारिक आधार, बात स्पष्ट है वैचारिक आधार के बिना दलित साहित्य का निर्माण संभव नही है।

२.१. उत्तर आधुनिक संदर्भ और दलित विमर्श

उत्तर आधुनिकतावाद आभिजात्यवादी वर्चस्व के अधिनायकवादी तंत्र को चुनौती देती है और एकलवाद के विरुद्ध बहुलतावाद का समर्थन करती है। कृषि-क्रांति और औद्योगिक-क्रांति के उपरांत आए प्रौद्योगिकी क्रांति ने समाज में समग्र बदलाव लाया है। एक वैश्विक शक्ति संरचना हमारे जीवन शैलियों को पूरी तरह बदलने की तैयारी में है। प्रचार माध्यमों ने बाज़ारवाद के नाम पर मनुष्य को डगने का एक अराजक स्थिति पैदा कर ली है। यह स्थिति हमारे स्मृति को मिटाकर हमें ग्लोबल बनाने का जाल रच रहे है। साहित्यिक क्षेत्र में दरिदा के विखंडन का सिद्धान्त प्रचलित पुराने 'रूप' और 'प्रकृति' की अवधारणा को पूरी तरह बदल डाला। बाद में मिशेल फूको ने 'विचार की प्रकृति' और 'इतिहास की अवधारणा' के बदलाव को रेखांकित किया। फ्रांस के समाजशास्त्री फ्रांसुवअल्योतर ने इतिहास समाज को नये ढंग से उत्तर आधुनिक तत्व बोध से समझाया। इस अर्थ में उत्तर संरचनावाद और उत्तर आधुनिकतावाद नये विश्व का नया भौतिक-सांस्कृतिक-आर्थिक पर्यावरण है, दार्शनिकता है। यह नई पद्धति है, नया भूमण्डलीय यथार्थ है।

उत्तर आधुनिकतावाद ने साहित्यिक चिंतन के नई-नई वैचारिक पद्धतियाँ-प्रविधियाँ-शैलियाँ विकसित की है। इन वैचारिक पद्धतियों में सांस्कृतिक अध्ययन (Cultural studies), नव इतिहासवाद (Neo-Historicism), नव-मिथकवाद (Neo-Methology), अधीनस्तों का अध्ययन (Subaltern studies), नारीवाद (Women studies), दलित-दमित साहित्य का अध्ययन (Dalit studies) आदि को जगह मिली है। पूरे विश्व में दलित कला, साहित्य और संस्कृति का निर्माण तथा विवेचन उत्तर आधुनिक संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण है।

२.२ दलित साहित्य की अवधारणा

सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप साहित्य-जगत् में नई धाराओं, प्रवृत्तियों, आन्दोलनों का उदय होता रहता है। साथ ही किसी नयी धारा का विकास प्रचलित धारा की प्रवृत्ति तथा उसके मूल्य और मान्यताओं के प्रति असहमति, असन्तोष और आक्रोश का भी परिणाम होता है। साहित्य की गतिशीलता का यह सबसे बड़ा कारण है। दलित साहित्य आन्दोलन के संबन्ध में यह बात पूरी तरह लागू होती है। दलित साहित्य उस समाज-व्यवस्था की देन है जिसमें जाति और वर्ण के आधार पर मनुष्य मात्र में अंतर किया जाता है और समाज के एक बड़े तबके को अछूत मान लिया जाता है। इस समाज व्यवस्था ने उच्च वर्ण को सभी संभव सुविधाएँ व अधिकार प्रदान किए तथा निम्न वर्ण व वर्णोतर समुदाय को अधिकारहीन रखकर सेवा तक सीमित कर दिया। अन्याय और अत्याचार का यह सिलसिला शताब्दियों तक जारी रहा। इस अमानुषिकता का विरोध भी लगातार होता रहा- कभी संगठित रूप में तो कभी छिटपुट तरीके से। आधुनिक काल में आकर इस विरोध ने एक नई शक्ल हासिल की। उसने अपने

लिए नया नाम चुना और व्यवस्था परिवर्तन की बात की। शूद्र अन्त्यज, अछूत, पंचमवर्ण, हरिजन आदि शब्दों के स्थान पर 'दलित' शब्द एक व्यापक स्वरूप में अपनाया गया। उच्च जाति के लोगों से रियायत मांगने के स्थान पर अब समाज के आमूल परिवर्तन की मांग कर, समता दर्शन दलित साहित्य द्वारा उठायी गई।

दलित साहित्य की अवधारणा को समझने के लिए सर्वप्रथम दलित साहित्य एवं दलित शब्द की सटीक व्याख्या अपेक्षित है। इसका कारण यही है कि वर्तमान में प्रभावी इस आन्दोलन के संदर्भ में अनेक भ्रान्तिपूर्ण धारणाएँ सामान्य जन को भटकाती रही है। इसलिए एक सुनिश्चित अर्थ अथवा दृष्टि का स्पष्ट हो जाना अत्यंत आवश्यक है ताकि इस साहित्य तथा उन की प्रवृत्तियों को समझने में आसानी हो।

दलित साहित्य को समझने ओर समझाने की प्रक्रिया अभी जारी है। अनेक दलित और गैर दलित विद्वानों ने इस प्रक्रिया में अपना-अपना योगदान दे रहे है, अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार। इन तमाम तथ्यों को सामने रखकर, हमें तीन प्रश्नों का उत्तर खोजना अत्यन्त आवश्यक लगता है। पहला प्रश्न है- दलित है कौन? दूसरा प्रश्न दलित साहित्य क्या है? तथा तीसरा प्रश्न दलित साहित्यकार किसे कहें? इन तीनों प्रश्नों का जवाब ही दलित साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होगा।

२.२.१ दलित : अर्थ एवं परिभाषा

दलित शब्द आधुनिक है लेकिन दलितपन प्राचीन है। इस शब्द का विशिष्ट संदर्भ में सबसे पहले इस्तेमाल सत्तर के दशक की शुरुआत में बाबा साहेब अम्बेड़कर

के नवबौद्ध अनुयायियों ने किया था। वहाँ दलित शब्द की जो व्याख्या की गयी थी, उसका भाव था कि, "जिसे तोड़ दिया गया है और जिसे उसके सामाजिक दर्जों से ऊपर बैठे लोगों ने जान-बूझकर नियोजित रूप से कुचल डाला है इस शब्द में छुआछूत, कर्म-सिद्धान्त और जातिगत श्रेणीक्रम का नकार निहित है।"[1]

इस शब्द की व्याप्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद है। व्युत्पत्ति के आधार पर इसका सही अर्थ तथा वास्तविक व्याप्ति को जानना आवश्यक है। 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है।[2] जिसका अर्थ तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना है। इस शब्द के संदर्भ में विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ दिए हुए है। जैसे-

(१) "दल - (अक) विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना।
दल - (सक) चूर्ण करना, टुकड़े करना, विदारना।
दल - (नपृ) सैन्य, लश्कर, पत्र, पत्ती।"[3]

(२) "दल - (दलति, दलित) दलित-टू वर्स्ट,ओपन स्प्लिट क्लेब,क्रंक दलित-हृदयं गाठो द्वेगं द्विधा तु न विद्यते। (वेदनाओं के कारण हृदय के टुकड़े होता है, नाश नहीं)। दलित-पी.पी- ब्रोकन, टार्च, बर्स्ट, रेण्ड, स्प्लिट।"[4]

---

1 अपेक्षा (जुलाई-सितंबर) लेख्र- अम्बेडकरवादी आंदोलन की दिशा- मीना आनंद, पृ.44

2 उद्धृत- डॉ. एन. सिंह- दलित साहित्य के प्रतिमान, पृ.67

3 पाइअसददमहण्णवो (प्राकृत शब्दकोश)- स. न्याय व्याकरणातीर्थ, प.हरगोविंददास- उद्धृत- डॉ. कालीचरण 'स्नेही'- हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, पृ.24

4 द स्ट्रडेंट्स संस्कृत- अंग्रेज़ी डिक्सनरी, सं. आपटे व्ही.एस- डॉ.कालीचरण 'स्नेही'- हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, पृ.24 से उद्धृत।

संस्कृत शब्दकोशों की तरह मराठी एवं हिन्दी शब्दकोशों में भी दलित शब्द का अर्थ- 'विनष्ट किया हुआ' ऐसा ही दिया है। जैसे-

(१) "दलित - (संवि) तुडविलेले, चुर उलेले, मोडलेले।

अंग्रेज़ी - डिप्रेस्ड क्लास या शब्दास प्रतिशब्दा।"[5]

(२) "दल - (वि. सं.) स्त्री दलिता

१) मसला हुआ, मर्दित

२) दबाया, रौंदा या कुचला हुआ।

३) ख्रण्डित

४) विनष्ट किया हुआ।"[6]

मानक हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश में 'दलित' शब्द के लिए 'डिप्रस्ड शब्द' दिया है और 'दलित वर्ग' के लिए 'डिप्रस्ड क्लास'।[7]

इस प्रकार शब्दकोशीय अर्थ के अनुसार दलित शब्द का आशय है- जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट, मर्दित, पस्तहिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि।[8]

---

5 मराठी शब्द रत्नाकार- सं. आपटे वा. गो- उद्धृत- डॉ.कालीचरण 'स्नेही'- हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता, पृ.24 से उद्धृत।

6 संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर- सं. रामचन्द्र वर्मा एवं कोश संस्थान - उद्धृत-वहीं, पृ.24

7 मानक हिन्दी- अंग्रेज़ी कोश- राममूर्ति सिंह- उद्धृत- दलितों के रूपान्तरण की प्रक्रिया- नरेन्द्र सिंह, पृ.6

8 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.13

जाहिर है, उक्त सूची दलित शब्द का बहुत व्यापक अर्थ प्रस्तुत करती। जिस प्रसंग में यह शब्द प्रयुक्त किया जाता है वहाँ इसका अर्थ इतना विस्तृत नहीं है। दलित शब्द एक सामाजिक स्थिति का सूचक है। संस्कृति के ऐतिहासिक विकास क्रम की एक अवस्था विशेष में व्यवहृत हुआ है। इसका संबंध भारत की जाति-व्यवस्था से है। इस संदर्भ में डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर की व्याख्या उल्लेखनीय है, "दलित जातियाँ वे हैं जो अपवित्रकारी होती हैं। इनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, मोची, बसौर, सेवक जातियाँ जैसी चमार, डंगारी (मरे पशु उठाने वाले), ढोला, डकरी बजाने वाले आते हैं।"[9] यहाँ हम दलित चिंतक कंवल भरती को भी उद्धृत कर सकते हैं जिनका मंतव्य आम सहमति व्यक्ति करता है- "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया है और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।"[10]

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन के अनुसार- "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"[11] डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर के अनुसार- "दलित शब्द एक इतिहास है, सामाजिक दर्पण है, सर्वहाराओं का चीत्कार है। अस्मत, अस्मिता, असमानता और अनाचार विवेचक है।"[12] मोहनदास नैमिशराय

---

9 दलित साहित्य की हुंकार- सात समुद्र पार- डॉ. सोहन पाल सुमनाक्षर, पृ.42 से उद्धृत।

10 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.13 से उद्धृत।

11 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.13 से उद्धृत।

12 दलित साहित्य की हुंकार- सात समुद्र पार - डॉ. सोहन पाल सुमनाक्षर, पृ.43

दलित शब्द को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं कि "दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अन्तर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अंतर्गत आ सकता है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते... अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।" [13]

माताप्रसाद 'दलित की प्रमुख रचनाएँ' नामक लेख में 'दलित' की परिभाषा इस प्रकार दिया हैं, "दबाया गया, गिराया गया, अलग किया गया, उत्पीड़ित, उपेक्षित, बहिष्कृत, अपमानित, शोषित आदि। ...मुख्यतः हिन्दु समाज में शस्त्र और शास्त्र से पीड़ित, अपमानित और शोषित समुदाय आते हैं, उनमें जहाँ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, धुमंतु जातियाँ, बंधुवा मज़दूर, झोपड़-पट्टियों में रहकर नारकीय जीवन जीने वाले भी आते हैं।"[14] नारायण सूर्वे के अनुसार, "इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं, समाज में जो भी पीड़ित हैं, वे दलित हैं।"[15] राजेन्द्र यादव दलित शब्द को काफी व्यापक दायरे में देखते हैं। वे स्त्रियों को भी दलित मानते हैं। पिछड़ी जातियों को भी दलितों में शामिल करते हैं।[16] ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार, "भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया है, वह व्यक्ति ही

---

13 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र -ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.14

14 दलित साहित्य की भूमिका - हरपाल सिंह अरूष, पृ.6

15 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.15

16 वहीं, पृ.15

दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाध्य जनजातियाँ और आदिवासी, जरायमपेशा घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आती हैं। सभी वर्गों की स्त्रियाँ दलित हैं। बहुत कम श्रम-मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करनेवाले श्रमिक, बँधुआ मज़दूर दलित की श्रेणी में आते हैं।"[17] 'दलित पैंथर' के घोषणा पत्र में 'दलित' के भीतर इन लोगों को रखा गया है- "अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सदस्य, नवबौद्ध, मज़दूर लोग, भूमिहीन तथा गरीब कृषक, महिलाएँ तथा वे सभी लोग जिन्हें धर्म के नाम पर एवं राजनैतिक तथा आर्थिक तौर पर शोषित किया जा रहा है।"[18] शरणकुमार लिंबाले के अनुसार- "दलित अर्थात् केवल हरिजन और नवबौद्ध ही नहीं, बल्कि गाँव की सीमा से बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन खेत मज़दूर- श्रमिक, दुःखी जनता, भटकी-बहिष्कृत जाति इन सभी को 'दलित' शब्द की व्याख्या में समावेश होता। 'दलित' शब्द की व्याख्या केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं होगी। इसमें आर्थिक तौर पर पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना चाहिए।"[19] दलित शब्द को स्पष्ट करते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने कहा है कि-"जब मैं दलित शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में वे हैं जिन्हें भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिन्हें समाज में अछूत माना जाता है।"[20]

अंग्रेज़ी में दलित शब्द के लिए 'Subaltern' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है- "A Subaltern is some one with a low ranking in a social, political or

---

17 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.14

18 दलित पैंथर आंदोलन- अजय कुमार, पृ.86

19 चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य- सं. डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ. देवेन्द्र चौले, पृ.69

20 सं. रमणिका गुप्ता- दलित चेतनाः सोच- राख ही जानती है जलने का अनुभव (साक्षात्कार) :डॉ. मैनेजर पाण्डेय, पृ.3

other hierarchy. It can also mean someone who has been marginalized or oppressed." [21] The term 'Subaltern' in the context is an allusion to the work of Antonio Gramci. "It refers to any person or group of inferior rank and station, whether because of race, class, gender, sexual orientation, enthicity or religion."[22]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से पता चलता है कि दलित शब्द की व्याख्या में या परिभाषित करने में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान इसे सीमित दायरे में देखता है तो कुछ विद्वान व्यापक दायरे में देखता है। यद्यपि दलित शब्द की व्यापक व्याख्या को लेकर विवाद है, फिर भी दलित शब्द का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए होता है, जो सामाजिक संरचना और समाज-व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर अवस्थित है। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि वर्ण-व्यवस्था में जिसे अछूत या अन्त्यज समझा गया, जिसका शोषण और दलन हुआ, जिसे संविधान ने अनुसूचित किया और जो जन्मना अछूत और घृणा का पात्र रहा, वही दलित है। जो भी हो समय के अनुसार समाज में परिवर्तन आता ही रहता है। वैश्विक स्तर पर अगर देखा जाये तो वर्ण, वर्ग, नस्ल आदि के आधार पर जो पीडित है उसे व्यापक अर्थ में दलित की संज्ञा दी जा सकती है।

२.२.२ दलित चेतना

चाहे दलित हो या गैर दलित जब तक उनके चिन्ताओं, रचनाओं में दलित चेतना नहीं है, प्रतिबद्धता नहीं तब तक हम कैसे उसे दलित साहित्य रचना माने? तो इसलिए जरूरी लगता है कि दलित चेतना को स्पष्ट करके आगे बढ़े।

---

21 vocabulary.com/dictionary
22 wikipedia

दलित साहित्य में 'दलित चेतना' संघर्ष से नाता रखने वाली क्रांतिकारी मानसिकता है। मनुष्य को केन्द्र मानकर जाति व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करने वाली यह प्रतीति है। इस चेतना की प्रेरणा अम्बेडकरी सोच है। दलित चेतना गुलाम को गुलामी से अवगत कराती है। दलित चेतना दलित साहित्य का महत्वपूर्ण जनन-बीज है। यह चेतना अन्य लेखकों की चेतना की अपेक्षा अलग और विशेषतापूर्ण है। इस चेतना के कारण ही दलित साहित्य की पृथकता रेखांकित होती है। दलित चेतना गुलामी के विरुद्ध स्वातंत्र्य की आकांक्षा से विद्रोह कर उठने वाली चेतना है। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का विचार उल्लेखनीय है-"दलित चेतना का सीधा सरोकार 'मैं कौन हूँ?' से बहुत गहरे तक जुड़ा है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। अधिकारों से वंचित सामाजिक तौर पर नकार दिया जाना यानी दलित होना है और उसकी चेतना दलित चेतना जो दलित आंदोलनों के एक लंबे इतिहास की देन है। अलग-अलग कालखंडों में यह अलग रूपों में दिखाई पड़ती है। भक्तिकाल के कवियों में यह रूप अलग है, लेकिन इस चेतना के बीज वहाँ मौजूद हैं, जिसे कालान्तर में एक संघर्षशील, बौद्धिक रूप मिलता है ज्योतिबा फुले के संघर्ष के रूप में, आगे चलकर यह रूप एक नार और जुझारू रूप में विकसित होता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन-संघर्ष में, जो दलितों में एक नई चेतना का सूत्रपात करता है जिसे मुक्ति-संघर्ष की चेतना कहना ज़्यादा प्रासंगिक होगा। यही चेतना साहित्य की प्रेरणा बनकर दलित साहित्य के रूप में दिखाई देती है जिसमें मुक्ति, स्वतंत्रता के गंभीर सरोकार विद्यमान हैं। अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, पाखंड-कर्मकांड का विरोध, सामाजिक न्याय की पक्षधरता, वर्ण-व्यवस्था का विरोध, सामंतवाद का विरोध, पूंजीवाद एवं बाज़ारवाद का विरोध,

साम्प्रदायिकता का विरोध, अधिनायकवाद का विरोध जैसे सवाल दलित साहित्य के सरोकारों में शामिल हैं।"[23]

दलित चेतना सत्य, न्याय और नीति की विजय की चेतना है। आज की दलित चेतना मानवद्रोही, राष्ट्रद्रोही एवं धर्मद्रोही ब्राह्मणवादी कठोर अनुभवों से जन्मी है। दलित चेतना अर्थात् अन्याय के विरुद्ध आक्रोश। अत्याचार का विरोध, परंपरा से विद्रोह तथा सांप्रत समाज की विषमताओं से जन्मी स्वानुभूति संवेदना जो कि निर्माणकारी जागरूकता की, जिसमें दलित, पीड़ित, शोषित जन की यातनाएँ हैं, वेदना हैं, व्यथा है, संघर्ष है, आक्रोश है, विद्रोह है, सामाजिक उत्कर्ष की प्रक्रिया एवं नूतन क्रांति का बीजारोपण है। दलित चेतना मानव केंद्रित है। इस दलित चेतना के गर्भ में 'विश्वबंधुत्व की भावना' निहित है।

२.२.३ दलित साहित्य : स्वरूप एवं परिभाषा

दलित साहित्य दलितों के लिए दलितों का साहित्य है। दलित शब्द साहित्य के साथ मिलकर एक ऐसी साहित्यिक धारा का निर्माण करता है, जो मानवीय संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों की यथार्थवादी अभिव्यक्ति करती है। अनेक विद्वानों ने दलित साहित्य को परिभाषित कर उसे स्वरूप देने की कोशिश की है।

दलित चिन्तक कंवल भारती की धारणा है कि "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपने पीड़ा को रूपायित किया है अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और

---

[23] दलित लेखन के अन्तर्विरोध- सं. डॉ. रामकली सर्राफ, पृ.187-188

जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटी में आता है।"[24] दलित साहित्य की यह उचित और स्वीकार्य व्याख्या है। लेकिन, दो बातें और जोड़ना चाहिए। एक तो यह कि दलित समुदाय में पैदा हुए व्यक्ति का कुछ भी लिखा दलित साहित्य नहीं है। दलित साहित्य का संबंध चेतना से है- वह चेतना जो नकार और विद्रोह से बनी हो तथा जिसे अम्बेडकरवाद का आधार प्राप्त हो। दूसरी महत्वपूर्ण बात वरिष्ठ मराठी दलित चिंतक गंगाधर पानतावणे के सहारे कही जा सकती है। पानतावणे जी साहित्य के तीन स्रोत मानते हैं- "(१) स्वयं जानकर, भोगकर प्राप्त किया गया अनुभव, (२) दूसरे को देखकर, समझकर, समवेदना के ज़रिए प्राप्त ज्ञान, अप्रत्यक्ष अनुभव, तथा (३) कल्पना, कल्पना का तो सच से कोई सीधा रिश्ता नहीं होता। बाकी दो को पानतावणे जी 'जाणीव' तथा 'सहजाणीव' कहते हैं। जाणीव से ही दलित साहित्य रचा जा सकता है। लेकिन सहजाणीव (समवेदना) का साहित्य झूठा नहीं होता। वह भी सच है लेकिन अनुभव के ताप से रहित। प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि का यही फर्क समझना चाहिए।"[25]

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार- "दलित साहित्य जन साहित्य है, यानी मास लिटरेचर। सिर्फ इतना ही नहीं, लिटरेचर ऑफ एक्शन भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।"[26]

---

[24] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.14-15

[25] कथोदश- जुलाई २००८- गंगाधर पानतावणे से बजरंग बिहारी की बातचीत

[26] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.15

मोहनदास नैमिशराय के अनुसार- "दलित साहित्य यानी बहुजन समाज के सभी मानवीय अधिकारों और मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्यों से लिखा गया साहित्य जो संघर्ष के उपज है, जिसमें समता और बन्धुता का भाव है और वर्ण-व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।"[27]

माताप्रसाद के अनुसार-"दलित साहित्य केवल दलितों का लेखन नहीं है बल्कि जिन्होंने, भी उसकी पीड़ा का अनुभव करके उन पर साहित्य सृजन किया है वह सृजन दलित साहित्य की श्रेणी में आता है।"[28]

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर के अनुसार- "दलित साहित्य दलितोत्थान साहित्य यानी वह साहित्य जो दलितों, पीड़ितों, शोषितों और असहाय वर्ग के उत्थान और नव विकास के लिए प्रेरित करता है, जो ऐसे व्यक्तियों को उनके गौरवमय इतिहास से परिचित कराते हुए उनकी मानवीयता की पहचान कराता है।"[29]

डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन के अनुसार- "दलित साहित्य उन अछूतों का साहित्य है, जिन्हें सामाजिक स्तर पर सम्मान नहीं मिला। सामाजिक स्तर पर जातिभेद के जो लोग शिकार हुए हैं, उनकी छटपटाहट ही शब्दबद्ध होकर दलित साहित्य बन रही है।"[30]

बाबू राव बागुल के अनुसार- "दलित साहित्य वह लेखन है, जो वर्ण-व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है।

---

27 उद्धृत- हिन्दी दलित कविता- नये सन्दर्भः टी. पी. राही, पृ.14

28 दलित साहित्य : रचना और विचार - डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृ.11

29 दलित साहित्य की हुंकार-सात समुद्र पर - डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, पृ.43

30 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.15

वर्ण-व्यवस्था अर्थात् द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध-भावना। इसके विपरीत मूल्य अर्थात् प्रेम, बन्धुत्व, समता, भ्रातृभावपूर्ण शान्ति और समृद्धि।"[31]

डॉ. शरणकुमार लिंबाले के अनुसार-"दलित साहित्य अर्थात् दलित लेखकों द्वारा दलित चेतना से दलितों के विषय में किया गया लेखन। दलित साहित्य का स्वरूप उसके अंतर्गत होनेवाले दलित्व में है और उसका प्रयोजन स्पष्ट है। उसका लक्ष्य है दलित समाज को गुलामी से अवगत कराना और सवर्ण समाज के समक्ष अपनी व्यथा और वेदनाओं का बयान करना।"[32]

डॉ. सी. बी. भारत के अनुसार, "नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परंपराओं का पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सृजन है हम उसे दलित के नाम से संज्ञायित करते हैं।"[33]

डॉ. बानखेडे के अनुसार- "दलित लेखकों द्वारा दलितों के विषय में लिखा गया क्षोभकारी, विद्रोहकारी साहित्य है, दलित साहित्य।'[34]

श्री प्रेमकुमार मणि के अनुसार- "दलितों के लिए, दलितों के द्वारा लिखा जा रहा साहित्य, दलित साहित्य है। यह विलास का नहीं आवश्यकता का साहित्य है। संपूर्ण विज्ञान इसकी दृष्टि है और पीड़ित मानवता इसका इष्ट है।"[35]

---

31 वसुधा-५८- जूलाई- सितंबर (२००३), पृ.25

32 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - डॉ. शरणकुमार लिंबाले, पृ.29

33 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.15

34 दलित साहित्य (वार्षिकी) २००७-२००८- कंवल भारती, पृ.31

35 दलित साहित्यः रचना और विचार- डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृ.27

डॉ. धर्मवीर के अनुसार- "दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखता है।"[36]

डॉ. प्रेमशंकर के अनुसार-"दलित साहित्य दलितों का, दलितों द्वारा, दलितों की भाषा में लिखा गया जीवन्त साहित्य है जो अपने सच्चे अनुभवों से सोए हुए साथियों को जगाकर उसकी गरिमा, गौरव, अस्मिता, आत्माभिमान तथा अस्तित्व के प्रति विश्वास करने का साहित्य है।"[37]

डॉ. दयानन्द 'बटोही' के अनुसार- "दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति देता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक नकार है। एक विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।"[38]

उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन से पता चलता है कि जो मतभेद दलित शब्द को लेकर था वही मतभेद दलित साहित्य की संदर्भ में भी है। दलित साहित्य के संदर्भ में इस मतभेद का मूल कारण सहानुभूति बनाम स्वानुभूति है।

२.२.४ सहानुभूति या स्वानुभूति

दलित साहित्य की परिभाषा और स्वरूप निर्धारण के पश्चात् इसकी रचनाधर्मिता से संबन्धित एक और प्रश्न सामने आते है कि दलित साहित्यकार किसे कहे? या किस से द्वारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है? क्या दलितों द्वारा

---

36 दलित साहित्य की परिभाषा : समग्रता और पुर्णता की ओर (लेख): डॉ. धर्मवीर, दलित साहित्य १९९९, सं. जयप्रकाश कर्दम, पृ.39

37 दलित संघर्ष: संस्कृति एवं साहित्य की सबल अभिव्यक्ति (लेख): डॉ. प्रेमशंकर, प्रशासक, त्रैमासिक, मसूरी, जनवरी-मार्च १९९७, पृ.212-213

38 साहित्य में दलित चेतना (लेख): डॉ. दयानन्द बटोही, पश्यंती, त्रैमासिक, अप्रैल-जून १९९८, पृ.129

लिखा साहित्य ही दलित साहित्य है या दलित विषय पर गैर-दलितों की रचनाएँ भी इस श्रेणी में आएँगी? इन प्रश्नों ने एक और विवाद खड़ा कर दिया। एक तरफ भोक्ता की पीड़ा और अनुभूति की प्रामाणिकता है, तो दूसरी ओर स्थिति के प्रति करुणा और सहानुभूतिपरक दृष्टि। इस संबन्ध में शिवकुमार मिश्र कहते हैं, "दलित साहित्य संज्ञा उसी साहित्य को दी जाएगी, जो जन्मना दलित रचनाकार द्वारा रचा गया हो, उस लेखन को नहीं, जो भले ही दलित जीवन-संदर्भों से जुड़ा लेखन हो, परन्तु जिसके लेखक गैर-दलित हो।"[39]

राजकुमार सैनी का कहना है, "मेरा अभिमत है कि दलित चेतना का साहित्य लिखने के लिए दलित होना ज़रूरी नहीं है। साहित्य का संबंध संवेदना से है। दलित जाति का व्यक्ति भी व्यवस्था में बिकाऊ माल की तरह संवेदनशून्य हो सकता है। दूसरी ओर निराला जैसे महाकवि भी हुए हैं, जिन्होंने हिन्दी कविता में पहली बार 'दलित' शब्द का प्रयोग किया।"[40] इस संबंध मृदुला गर्ग की अभिप्राय है कि "गैर-दलित लेखक भले ही दलित पात्रों के बारे में सशक्त, प्रभावशाली और कलात्मक रचनाएँ दे, वे दलित लेखकों की कृतियों से कहीं न कहीं भिन्न होंगी। भाषा, शिल्प, रूपक और मुहावरों के प्रयोग में और कथ्य के निर्वाह में भी।"[41]

इस प्रकार विद्वानों में दलित साहित्य की रचनात्मक अवधारणा को लेकर दो तरह के मत प्रचलित हैं। अर्थात् कुछ विचारकों और लेखकों का मानना है कि दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा लिखा गया है। वह स्वानुभूति का साहित्य

---

39 दलित लेखन : विपथित विमर्श की दिक्कतें- शिवकुमार मिश्र, कथाक्रम :दलित विशेषांक, पृ.41- उद्धृत : दलित साहित्य का समाजशास्त्र – डॉ. हरिनारायणठाकुर

40 आजकल- दिसम्बर, पृ.41- उद्धृत- वहीं

41 कथाक्रम : दलित विशेषांक, नवंबर २०००, पृ.125- उद्धृत- वहीं

है। उसमें साहित्यकार अपने अनुभव को ही अभिव्यक्ति देते हैं, तो कुछ विद्वानों का मानना है कि गैर-दलितों द्वारा लिखित दलित केन्द्रित लेखन भी दलित साहित्य है। वस्तुतः दलित साहित्य का वैचारिक प्रस्थान अम्बेडकर दर्शन है और इस दर्शन पर खरे साहित्य को ही दलित साहित्य कहना चाहिए, चाहे वह स्वानुभूति का हो या सहानुभूति का। किन्तु अधिकांश दलित चिन्तक और लेखकों के विचार में दलित समस्या पर दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही वास्तविक दलित साहित्य है। दलित समस्या पर गैर-दलितों द्वारा लिखे साहित्य को वे दलित सहानुभूति का साहित्य कहकर खारिज कर देते हैं। उनका तर्क है कि दलितों की पीड़ा, दलित होने का त्रासद बोध और तद्जनित आक्रोश और विद्रोह कोई भुक्तभोगी दलित ही जान सकता है। वही इसे शिद्दत और सच्चाई के साथ व्यक्त कर सकता है। गैर-दलितों के दलित लेखन में द्रष्टा की सहानुभूति और करुणा हो सकती है, भोक्ता की पीड़ा और अनुभूति की सच्चाई नहीं।

इस मान्यता के समर्थकों में रमणिका गुप्ता, मैनेजर पांडे, देवेन्द्र चौबे, राजेन्द्र यादव, विश्वनाथ त्रिपाठी आदि गैर-दलित विद्वान तथा मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, कंवल भारती, डॉ. धर्मवीर, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेजैन आदि दलित लेखक हैं। इसके विपरीत माताप्रसाद, रजनी तिलक, राजकुमार सैनी और तुलसीराम जैसे अनेक दलित भी गैर-दलितों के दलित विषयक लेखन को दलित साहित्य मानने के पक्ष में है।

संक्षेप में दलित साहित्य को केवल दलितों की सीमा में बाँधना उचित नहीं है। साहित्य सृजन का अधिकार सबको है। लेकिन निष्ठा, संवेदन और प्रतिबद्धता आवश्यक है। केवल ऊपरी सहानुभूति से चेतना की धारा में शामिल नहीं हो

सकता। गैर-दलित लेखन में यदि दलितों के प्रति सच्ची सहानुभूति, संवेदना और उनकी मुक्ति की चिन्ता और चेतना है, तो ऐसे साहित्य को 'दलित साहित्य' मानने में कोई हर्ज नहीं। दलित रचनाओं में दलित जीवन की समस्या और चेतना अवश्य होना चाहिए। साथ ही अम्बेडकर दर्शन पर खरे साहित्य भी होना चाहिए। कोई रचनाकार इस तरह के 'समता दर्शन' पर आधारित साहित्य लिखेगा, तभी वह 'दलित साहित्य' होगा, अन्यथा नहीं।

२.३ हिन्दी में दलित साहित्य

हिन्दी साहित्य इतिहास की लंबी परंपरा है। डॉ. रामचन्द्र शुक्ल[42], आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी [43], डॉ. रामकुमार वर्मा [44], डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त [45], डॉ. बच्चन सिंह [46] आदि मूर्द्धन्य विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास पर अपना अपना विचार व्यक्त किया है।

इसके आधार पर कुछ विद्वानों के विचार यह है कि हिन्दी साहित्य में निर्गुण संत कवियों की वाणियों में दलित साहित्य के बीज छिपे हैं। इससे पहले सिद्ध और नाथ कवियों की रचनाओं में वर्ण और जाति-व्यवस्था पर चोट तो की गयी है किन्तु समाज को मानसिक रूप से झकझोरने तथा उसमें आत्मसम्मान व आत्मविश्वास पैदा करने वाली ऊर्जा अपेक्षित मात्रा में विद्यमान नहीं है। जबकि कबीर और रैदास आदि निर्गुण कवियों की रचनाओं में वर्ण-व्यवस्था व जातिवाद के साथ-साथ

---

42 हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. रामचन्द्र शुक्ल

43 हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदि काल, हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास - आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

44 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डॉ. रामकुमार वर्मा

45 हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त

46 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. बच्चन सिंह

सामाजिक असमानता, शोषण व अत्याचार की पोषक प्रस्थापित मान्यताओं, रूढ़ियाँ, परंपराओं व मूल्यों के खिलाफ विद्रोह का स्वर भी मुखरित हुआ है।[47] इन संतों ने जातिवादी व्यवस्था का विरोध ही नहीं किया, वरन् ऐसे समाज की स्थापना का आधार तैयार किया जिसमें वर्ण, जाति या लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव न हो तथा समता-स्वतंत्रता और बन्धुता पर आधारित समाज का निर्माण हो। निम्न उदाहरण इस को प्रमाणिता करता है-

एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाम इक गूदा।
एक जाति से सब उतपना, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।।
एकै पवन एक ही पानी, एक जाति संसार।
एक ही ख्वाक घड़े सब भाँड़, एक ही सिरजन हारा।।[48]

- कबीर दास

जो पै करता वरण विचारै
जनमत तीनि डांडि किन सारै
जो तू बाभन बाभनी जाया, आन बार हवै काहे न आया।
जो तू तुरक तुरकिनी जाया, भीतर खतना काहे न कराया।[49]

- कबीर दास

ऐसा चाहे राज मैं, जहाँ मिले सबन को अन्न।
छोटो बड़ों सब सम बसै, रविदास रहैं प्रसन्न।।[50]

- रैदास

---

47 दलित साहित्य : रचना और विचार - डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, पृ.81

48 मध्यकालीन हिन्दी काव्य - सं. डॉ. दिलीप मेहरा, पृ.48

49 भारतीय साहित्य एवं दलित चेतना- सं. धनंजय चौहाण एवं डॉ. धीरज भाई वणकर, पृ.33 से उद्धृत।

50 डॉ. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, अंक-१०, वर्ष २००२, पृ.31 से उद्धृत।

रैदास जन्म के कारणै होत न कोई नीच।
नर को नीच कारि डारि है ओछे करम की कीच।।[51]

- रैदास

कबीर और रैदास के बाद हिन्दी में दलित साहित्य की इस ऊर्जायुक्त धारा का प्रवाह धीमि हो गयी। इस का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कारण हो सकते है। जिस पर गैरव के साथ शोध दृष्टि डालने की जरूरत है।

आधुनिक काल में हिन्दी में दलित साहित्य का प्रारम्भ १९१४ में सरस्वती पत्रिका के सितम्बर अंक में प्रकाशित हुई हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। जिसमें उसने अपने अछूत होने की पीड़ा अभिव्यक्त की है। हीरा डोम की एक ही कविता आज प्राप्त है। हीरा डोम के बारे में अन्य कोई जानकारी नहीं मिलती। इसी समय अछूतानंद 'हरिहर' ने दलितों के लिए 'आदि हिन्दु' आंदोलन चलाया था। लोक छंदों में रचना करनेवाले अछूतानंद डॉ. अम्बेडकर की लेखनी से परिचित और उनके कार्यों से प्रेरित-प्रभावित थे।

स्वामी अछूतानन्द के समय में ही डॉ. अम्बेडकर के दलित मुक्ति को आन्दोलन ने संपूर्ण देश के उद्वेलित कर दिया था। स्वामी जी भी इस आन्दोलन के समर्थक थे और उन्होंने अपना सहयोग भी दिया था। डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन ने दलित वर्गों को गहराई से प्रभावित किया, क्योंकि उनके चिन्तन ने दलित अस्मिता और स्वाधीनता के जो सवाल उठाये थे, वे एकदम विचारोत्तेजक और क्रान्तिकारी थे। इन सवालों ने दलित चेतना को नये आयाम दिया और उसे विद्रोही बनाया। इसी समय चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने अम्बेडकर साहित्य को हिन्दी में प्रकाशित कर

[51] दलित लेखन का अन्तर्विरोध - सं. डॉ. रामकली सर्राफ, पृ.135 से उद्धृत।

प्रचारित करने का अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया।[52] यही से हिन्दी दलित साहित्य डॉ.अम्बेडकर की दलित मुक्ति की चेतना और विचारधारा से जुड़ा। इस विचारधारा से जुड़ने के बाद सामाजिक परिवर्तन की संपूर्ण विद्रोही चेतना ही उसकी अवधारणा बन गयी। यही से आधुनिक हिन्दी दलित लेखन का सुत्रपात माना जा सकता है।

ज्योतिबा फुले और डॉ. भीमराव अम्बेडकर की कर्मभूमि महाराष्ट्र रही। महाराष्ट्र समाज सुधार आंदोलनों और परिवर्तनवादी लेखन के मामले में अन्य प्रान्तों से अपेक्षाकृत आगे रहा। हिन्दी के दलित लेखन पर इसीलिए मराठी दलित लेखन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। लेकिन, प्रभाव का अर्थ अनुकरण नहीं समझना चाहिए। हिन्दी के दलित रचनाकारों ने मराठी दलित लेखकों से प्रेरणा और दिशा प्राप्त की। मराठी के आंदोलनधर्मी दलित युवा लेखकों ने 'दलित पैंथर' का निर्माण किया। इसी के साथ दलित लेखन ने एक आंदोलन का रूप लिया और जब इसकी चर्चा हुई तो यह महाराष्ट्र तक सीमित नहीं रही, पूरे देश में व्यापक रूप से फैला। हिन्दी में दलित लेखन को व्यापक चर्चा में लाने का कार्य 'सारिका' पत्रिका ने किया। इसके संपादक कमलेश्वर ने १९७५ में सारिका के दो दलित विशेषांक निकाले, जिससे हिन्दी क्षेत्र में भी दलित चेतना की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। इस पत्रिका के माध्यम से बाबूराव बागूल, दया पवार, अर्जुन डांगले, अरुण कांवले, बन्धु माधव, प्रो. ई. सोन कामले आदि हिन्दी पाठकों को परिचित कराया गया और दलित रचनात्मकता की शक्ति का एहसास भी कराया गया। किन्तु हिन्दी क्षेत्र में उस समय दलित साहित्य और दलित चेतना जैसी कोई तेज़ तेवर नहीं दिया देता था। कमलेश्वर के शब्दों में, "उस समय तक हिन्दी का दलित साहित्य स्वानुभूत नहीं था।

---

[52] दलित साहित्य की अवधारणा - कंवल भारती, पृ.17

गैर-दलित का ही दलित विषयक लेखन था। हिन्दी के दलित लेखकों का उदय तब नहीं हुआ था। मैं खुद हिन्दी क्षेत्र का हूँ। उस समय तक कुछ ऐसा उभार और उत्थान दिखाई नहीं पड़ता था।"[53]

इसके बाद कथाकार, संपादक महीप सिंह ने 'संचेतना' पत्रिका का चौथा अंक दिसंबर १९८१ में प्रकाशित किया। यह अंक 'मराठी दलित साहित्य' विशेषांक रूप में निकाला। इसमें करीब पच्चीस रचनाकार एवं उनकी रचनाओं को शामिल किए गए। साथ ही दलित साहित्य वैचारिक पृष्ठभूमि पर भी चर्चा किया गया। "१९९२ से पूर्व हिन्दी दलित साहित्य दलित पत्र-पत्रिकाओं, दलित सभा-सम्मेलनों, दलित मंचों पर अपनी मौजूदगी जाहिर कर चुका था। लेकिन 'हंस' पत्रिका की पहल ने इसे साहित्य के केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया। इसके लिए 'हंस' की आलोचनाएँ भी हुई। लेकिन इस संघर्ष में जब 'युद्धरत आम आदमी' (सं. रमणिका गुप्ता) जैसी जनवादी पत्रिकाएँ जुड़ गयीं, तब यह आंदोलन और अधिक स्फूर्ति के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगा।"[54] इससे हिन्दी में दलित साहित्य की चर्चा को व्यापकता तथा स्वीकृति मिली। मराठी की दलित रचनाओं को साहित्यिक बहसों में शामिल किया जाने लगा। हिन्दी के दलित रचनाकारों में इससे नया जोश आया।

समकालीन दलित चेतना में दलित साहित्य सम्मेलनों ने भी अहं भूमिका निभायी है। इस दृष्टि से अक्तूबर १९९३ में आयोजित 'नागपुर दलित लेखक

---

53 हिन्दी दलित साहित्य अपनी जगह मौलिक है- कमलेश्वर, अजय नावरिया के साथ कमलेश्वर के साक्षात्कार- हंस, आगस्त 2004

54 दलित हस्तक्षेप- रमणिका गुप्ता- संपादकीय आलेख, ओमप्रकाश वाल्मीकि

सम्मेलन' की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। डॉ. विमलकीर्ति द्वारा आयोजित इस सम्मेलन की अध्यक्षता ओमप्रकाश वाल्मीकि ने की थी। इसके बाद अक्तूबर १९९७ रमणिका गुप्ता ने हज़ारीबाग में 'दलित साहित्य लेखक सम्मेलन' का आयोजन किया, तो उसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि जैसे दलित साहित्यकारों के अलावा न केवल राजेन्द्र यादव, मैनेजर पांडे, मराठी के शरणकुमार लिंबाले, डॉ. गंगाधर पानतावणे आदि दिग्गज साहित्यकार और आलोचकों ने भी भाग लिया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कबीर, रैदास, हीरा डोम, अछूतानंद हरिहर जैसे रचनाकारों की रचनाओं ने हिन्दी में दलित लेखन की नींव डाली। साथ ही आधुनिक युग १९६० के बाद मराठी में दलित आंदोलन के उभार के साथ ही धीरे-धीरे हिन्दी में दलित जीवन से जुड़ी रचनाओं का आना शुरू हुआ तथा १९८० तक आते-आते हिन्दी में दलित साहित्य के रूप में रचनाएँ स्थापित होने शुरू हो गई। इसी बीच दलित साहित्य सम्मेलनों का आयोजन हुआ तथा इस सम्मेलनों ने यह सिद्ध कर दिया कि दलित साहित्य के आंदोलन की प्रक्रिया अब धीमी नहीं तेज़ होगी। इसी दौरान हिन्दी में दलितों द्वारा हिन्दु समाज और साहित्य की परंपरा के प्रति विद्रोह के रूप में लेखन की शुरूआत हुई, जिसने धीरे-धीरे एक विशेष प्रकार के साहित्य के रूप में अपनी पहचान स्थापित की।

आज हिन्दी में जो दलित साहित्य लिखा जा रहा है, उसका एक बड़ा हिस्सा स्वयं दलितों द्वारा रचित है। इस पीढ़ी के प्रमुख हस्ताक्षरों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, कंवल भारती, कर्मशील भारतीय, सूरजपाल चौहान, डॉ. धर्मवीर, श्यौराजसिंह बेचैन, माताप्रसाद, एन. सिंह, कौशल्या बैसंत्री, सोहनपाल सुमनाक्षर, दयानन्द बटोही, सुशीला टॉकभौरे, रजतरानी मीनू, कुसुम

मेषवाल आदि हैं। इस सूची में दिन-ब-दिन नए नाम जुड़ते जा रहे है। इस वक्त संवेदनशील दलित लेखकों की एक भरी-पूरी टीम सक्रिय है और सामाजिक परिवर्तन के संकल्प के साथ आगे बढ़ रही है।

२.३.१ स्वामी अछूतानंद तथा हिन्दी दलित साहित्य

'आदि हिन्दु आंदोलन' के प्रवर्तक स्वामी अछूतानन्द हरिहर का जन्म सन् १८७६ में उत्तर प्रदेश के फरूखाबद जनपद के सौरिख गाँव में हुआ था। वह कवि, नाटककार के साथ-साथ पत्रकार भी थे। उन्होंने हिन्दी में १९२२-१९२३ में दो साल दिल्ली से 'प्राचीन हिन्दु' और सन् १९२४-१९३२ तक कानपुर से 'आदि-हिन्दु' पाक्षिक तथा १९२९ में 'अछूत' मासिक पत्र का प्रकाशन और सम्पादन किया था। उनकी पत्रकारिता ने उत्तर भारत के दलित वर्गों में नयी चेतना का संचार किया था। वह दलित पत्रकारिता के जनक थे। इस पत्र की यह विशेषता थी कि इसमें दलितों पर होने वाला जुलम, शोषण एवं अत्याचारों को प्रकाशित किया जाता था और दलितों को उनके इतिहास से परिचित कराकर उनमें स्वाभिमान पैदा करता था।

स्वामी अछूतानन्द रचित साहित्य अधिकांश रूप से अप्रकाशित है। अपने जीवन काल में जो कुछ प्रकाशित हो सका उसमें 'राम राज्य न्याय', 'मायानन्द बलिदान', 'पारख-पद' और 'बलिछलन' नाटक अपूर्ण और अमुद्रित स्थिति में रह गया, भजनों की छोटी-छोटी कई पुस्तकें हरिहार भजनमाला, विज्ञान भाजनमाला और आदि हिन्दु भजनमाला नाम से मुद्रित एवं प्रकाशित हुई। किन्तु इन भजनमालाओं में कोई उपलब्ध नहीं है। केवल 'आदि-वंश का डंका' उपलब्ध है।

स्वामी जी नाटक तथा कविताएँ गम्भीर इतिहास बोध की हैं और विचारोत्तेचक भी है। रामराज्य न्याय नाटक द्वारा स्वामी जी 'आदि हिन्दु' सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के और दलित समाज पर अतीत में हुए अन्याय और अत्याचारों से अवगत कराने के उद्देश्य से लिखा गया है। दलितों को उनके गौरवशाली इतिहास का ज्ञान कराना और उन्हें वर्तमान दयनीय स्थिति से ऊपर उठाना। उनके रचनाओं की मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं। उन्होंने लोक शौली में कविताओं की रचना की थी। स्वामी जी ने 'अछूत' और हरिहर दोनों नामों से कविताएँ लिखी है। उन्होंने सचमुच दलित साहित्य को नया आयाम और धरातल प्रदान किया था।

२.४ दलित साहित्य का वैचारिक आधार

दलित विमर्श या साहित्य अपने वर्तमान रूप में भले ही उन्नींसवीं शताब्दी के बाद अस्तित्व में आया हो लेकिन उसकी जडें काफी अतीत तक जाती है अर्थात् दलित साहित्य के नये आयाम का मतलब यह भी है कि उसका एक पुराना आयाम है, स्वरूप है। किसी भी साहित्य का उदय शून्य से संभव नहीं है अतः दलित साहित्य का भी अपना एक इतिहास है, ठोस वैचारिक आधार है। भारतीय दलित साहित्य की वैचारिक आधार की श्रृंखला में प्रमुखरूप से महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा ज्योतिबा फुले और डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के विचारों का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रादेशिक स्तर पर अनेक नेता तथा विचारकों का भी योगदान इस संदर्भ में स्मरणीय है जैसे पेरियोर, श्री नारायण गुरु आदि आगे इस वैचारिक आधार पर विस्तार से विश्लेषण करेंगे।

२.४.१ दलित साहित्य और गौतम बुद्ध

भारतीय दलित आंदोलन या साहित्य का विकासात्मक स्वरूप का निर्माण तो ज्योतिबा फुले तथा डॉ.बी.आर. अम्बेडकर द्वारा सृजित साहित्य तथा विचारों से होता है। लेकिन दलित साहित्य के विकास की पृष्ठभूमि में गौतम बुद्ध और उनके विचारों का महत्वपूर्ण स्थान है।

गौतम बुद्ध पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ढाई हज़ार वर्ष पूर्व वर्णव्यवस्था का खण्डन ही नहीं किया था, उसे ध्वस्त भी किया था। साथ ही उन्होंने साफ-साफ कहा कि सभी मनुष्य बराबर हैं और जाति अथवा जन्म के आधार पर उनमें कोई मौलिक भिन्नताएँ नहीं हैं।

"न जच्चा वसलोहोति, न जच्चा होति ब्राह्मणों।
कम्मना वसलोहोति, कम्मना होति ब्राह्मणों।।"[55]

अर्थात् जन्म से न कोई शूद्र होता है, न जन्म से कोई ब्राह्मण। कर्म से ही शूद्र होता है और कर्म से ही ब्राह्मण।

बुद्ध के मन, वचन और कर्म में एकरूपता थी। वे जो कहते थे, उस पर पहले खुद चलते थे। वर्ण-व्यवस्था के विरोध और समानता के सिद्धांत को बुद्ध ने सबसे पहले अपने भिक्षु संघ में ही लागू किया। सुनिता नामक शोषित भंगी और उपालि नाई जैसे लोगों को अपने संघ में शमिल करके गौतम बुद्ध ने दलितोद्धार का ऐतिहासिक कदम उठाया। लेकिन जैसे ही इनको बौद्ध संघ में दीक्षित किया गया, वैसे ही बुद्ध को ब्राह्मणें के विरोध का सामना करना पड़ा। लेकिन बुद्ध ने इसका

---

[55] आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श - देवेंद्र चौबे, भूमिका, पृ.13

प्रतिरोध ही नहीं किया, बल्कि अपने तर्कपूर्ण विचारों से उनको पराजित भी कर दिया। बुद्ध ने कहा- "एकैव जातिर्लोके सामान्या न पृथक विधः"[56] अर्थात् संसार में एक ही जाति है, उससे कोई भेद नहीं है। "नास्ति हि क्रमतर सर्वलोको हितप्पा"[57] अर्थात् लोक कल्याण से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। सम्पूर्ण बुद्ध तंत्र और बुद्ध ज्ञान 'बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय' के आधार पर ही था।

गौतम बुद्ध ने मानव कल्याण के लिये बुद्ध धर्म की स्थापना की। उन्होंने भारत में प्रचलित आर्यों की रूढ़ियों स्वर्ग-नरक, जन्म-पुनर्जन्म तथा वर्ण-व्यवस्था को मानव शोषण का साधन बताया। उन्होंने ब्राह्मणों एवं सवर्ण समाज को बताया कि ढोंग, आडम्बर और भय चेष्टा द्वारा मानवता को कष्ट पहुँचाना मानव धर्म नहीं, बल्कि दया, परोपकार, अहिंसा, प्रेम के द्वारा जन मानस की सेवा करना सच्ची मानवता है। बुद्ध ने मनु द्वारा प्रतिपादित वर्ण व्यवस्था को छल-प्रपंच, कपट, द्वेष, ईर्ष्या, पाखण्ड और अन्याय की जननी बताया। उन्होंने जाति एवं धर्म के नाम पर विभाजित जन मानस को अनेकता, विरोध, संघर्ष और आपसी वैरभाव से हटाकर भाई चारे, समन्वय का अवसर प्रदान किया। बुद्ध ने वेदों को प्रमाण नहीं माना, यज्ञों में पशु बलि का विरोध किया और ब्राह्मणवाद पर कठोर प्रहार किया। साथ ही दुःख से पीड़ित लोगों का उद्धार करना बौद्ध धर्म का मुख्य ध्येय है। वे पराधीनता के घोर विरोधी थे। इसलिए स्वाश्रयी तथा स्वावलम्बी बनने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया। वे विश्व के प्रथम महापुरुष थे जिन्होंने उद्घोष किया था कि "अत्त दोपो भव, अत्त नाथो भव" अर्थात् अपना दीपक स्वयं बनो और अपना

---

56 बौद्ध संस्कृति - अँगने लाल, पृ.129

57 वहीं।

स्वामी स्वयं बनो। मानव तू अपना स्वामी स्वयं ही है, कोई पड़ोसी तेरा मालिक नहीं। उन्होंने यह भी कहा-'हे मानव, तू स्वयं अपना कर्त्त-धर्त्त है, तेरी गति-सुगति अथवा दुर्गति तेरे ही हाथों में है, तू ही उसके लिए जिम्मेदार है।'[58] निःसंदेह ये वाक्य दलित आन्दोलन की प्रेरणा का महान संदेश है।

गौतम बुद्ध ने जो सिद्धान्त दिये वे लोकतांत्रिक थे। उन्होंने पूजा उपासना का अधिकार शुद्रों को ही नहीं, बल्कि स्त्रियों को भी दिया। उन्होंने हिन्दु धर्म को मूल ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। जहाँ हिन्दु धर्म, अपनी मान्यताओं पर, जो धर्मग्रन्थों में वर्णित थी, तर्क करने वालों को नास्तिक कहकर, धर्म से बाहर कर देता था, वहीं गौतम बुद्ध कुछ भी विश्वास करने से पहले तर्क की कसौटी पर कसने का उपदेश दिया था। अर्थः गौतम बुद्ध ने अपने धर्म में तर्क को प्रधानता दिया था। इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर बाबा साहेब अम्बेडकर बौद्ध धर्म की और आकर्षित हुआ। उन्होंने कहा- "में बौद्ध धर्म को पसंद करता हूँ, क्योंकि वह समन्वित रूप से तीन सिद्धांतों को प्रदान करता है, जिन्हें अन्य धर्म नहीं करते। बौद्ध धर्म प्रज्ञा, करुणा तथा समता का पाठ सिखाता है, जिसके धर्म की नींव न तो ईश्वर पर रखी है और न आत्मा पर। उन्होंने इंसान के दुःख को समझा, जो वह रोजना भोगता है।"[59] अतः बौद्ध धर्म पददलितों के लिए आशा का दीप है।

इस प्रकार निस्संदेह दलित साहित्य आंदोलन के प्रारम्भिक स्वरूप में गौतम बुद्ध एवं बौद्ध साहित्य की अहम् भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है, जिसको आज के संदर्भ में दलित साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में मानना उचित ही है।

---

58 दलित साहित्य वार्षिकी (2004), पृ.53

59 बाबा साहेब ने कहा था - मोहनदास नैमिशराय एवं एच. आर अकेला, पृ.92

२.४.२ दलित साहित्य और मार्क्स

दलित साहित्य पर मार्क्स या मार्क्सवाद के प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि मार्क्सवाद वर्गहीन समाज की कल्पना करता है और उसके लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देता है, इसलिए दलित साहित्यकारों को मार्क्सवादियों के साथ मिलकर संघर्ष करना चाहिए। दूसरी राय यह है कि भारत में कम्युनिस्ट पार्टियों का नेतृत्व सदा से ब्राह्मण और ठाकुरों के हाथ में रहा है। वे हिन्दु धर्म की वर्णव्यवस्था को नुकसान पहुँचाये बिना वर्ग की लड़ाई लडते रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में वर्ग संघर्ष के बाद भी कोई समूल परिवर्तन दिखाई नहीं देता, क्योंकि वर्ण से ही जाति और जाति से ही अस्पृश्यता ने जन्म लिया है। अतः भारत मे जाति से लड़े बिना किसी प्रकार का कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। इस संबंध में डॉ. जयप्रकाश कर्दम का मत द्रष्टव्य है। वे लिखते हैं कि- "मार्क्स का अपना लक्ष्य है और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के उसके अपने साधन और सिद्धान्त हैं, जबकि दलितों का अपना पृथक लक्ष्य है उसकी प्राप्ति के लिए उसके अपने सिद्धान्त हैं। यद्यपि दूसरे विचारों और सिद्धातों की तुलना में दलितों का मार्क्सवाद के प्रति ज्यादा सकारात्मक दृष्टिकोण रहा है, क्योंकि मार्क्सवाद का वर्गहीन समाज का लक्ष्य दलितों के जातिहीन समाज और वर्गविहीन समाज की स्थापना के व्यापक लक्ष्य का एक आयाम रहा है। इसलिए मार्क्स या मार्क्सवाद से दलितों को कोई विरोध या आपत्ति नहीं है। दलितों को यदि आपत्ति है, तो वह मार्क्सवादियों के उस आग्रह से कि दलित उनके साथ जुड़े। यह आग्रह इस बात को इंगित करता है कि दलित मार्क्सवाद से नहीं जुड़ रहे हैं। बाबा साहेब अम्बेडकर की भी मार्क्सवादी के साथ कभी पटरी नहीं बैठी थी। इतिहास गवाह है

कि बाबा साहेब के विचारों या कार्यों का किसी मार्क्सवादी ने कभी भी समर्थन या सहयोग नहीं दिया था। दलित जहाँ जाति-विहीन और वर्णविहीन समाज की स्थापना के लिए संघर्षरत हैं, मार्क्सवादी वहीं पुराने केवल वर्गभेद मिटाने के अपने पोथीनिष्ठ सिद्धान्तों पर अडिग हैं। जाति विरोध से उनका कोई लेना-देना नहीं है। जब तक मार्क्सवादी चिन्तक जाति का ख़िलाफत को अपना एजेण्डा नहीं बनाते, तब तक मार्क्सवादियों को दलितों की हितैषी कैसे स्वीकार किया जा सकता है?"[60]

कार्ल मार्क्स ने कम्युनिस्ट मनिफेस्टो में प्रारम्भ में ही कहा कि मानव समाज का इतिहास वर्ग संघर्ष (Class struggle) का इतिहास है। शोषक और शोषित वर्ग एक दूसरे के विरोध मे खड़े होने के कारण वर्ग युद्ध निरंतर जारी रहता है। वर्ग संघर्ष ही मात्र सामाजिक विकास को प्रेरित और परिचालित करने वाली शक्ति है। लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने अपनी विचार प्रणाली में यह प्रमाणित कर दिया कि भारतीय समाज का इतिहास निश्चित रूप में वर्ण संघर्ष (Class struggle) का इतिहास है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण उच्च माने गये और शूद्र वर्ण को नीच बरकरार कर देने के कारण अछूत समाज ही सर्वथा वंचित एवं सर्वहारा समाज है। हिन्दु समाज की धर्म व्यवस्था ने अछूतों का शोषण किया, और हिन्दु समाज की अर्थव्यवस्था धर्माधिष्ठित होने के कारण उत्पादन एवं उत्पादन साधनों का स्वामित्व उच्च वर्ण को प्राप्त हुआ। उसके बल पर ही उन्होंने शूद्रातिशूद्रों का शोषण किया। इसलिए सर्वप्रथम धार्मिक व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करना अनिवार्य है और आवश्यक भी। लेकिन धर्म को अफ़ीम कहते कहते मार्क्स ने धर्म के अग्रस्थान पर अर्थ की प्रस्थावना करने के कारण साम्यवाद ने धर्मव्यवस्था पर कुठाराघात करने को

---

[60] इक्कीसवीं सदी में दलित आन्दोलन - डॉ. जयप्रकाश कर्दम, पृ.32

दखलअंदाज़ नहीं माना। मानवीय जीवन के सभी व्यवहार अर्थमूलक होते हैं यही मार्क्स के 'मूलाधार और अधिरचना' सिद्धान्त का निष्कर्ष है। लेकिन भारतीय समाज की धारणा में सभी व्यवहार धर्ममूलक होते हैं।

इस तरह विपक्षी विद्धानों के मत में मार्क्सवाद, दलित साहित्य की प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रेरणा स्रोत नहीं है। इस मतभेद के बावजूद हम को समझना होगा कि मार्क्सवाद एक विचारधारा है। प्रगतिशील साहित्य की निर्मिति का मूलस्त्रोत इसी विचारधारा में है। दलित साहित्य की निर्मिति का मूलस्त्रोत डॉ. अम्बेडकर की विचारव्यवस्था में है। दलित साहित्य भी प्रगतिशील साहित्य का एक सशक्त रूप है। मार्क्सवाद का उदय १९ वीं सदी के मध्य में और विकास २० वीं सदी में हुआ। हिंदुस्तान में इस विचारधारा का परिचय स्वाधीनता संग्राम के दौरान १९२० के बाद ही होने लगा। डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा का परिचय भी १९२० के बाद होता रहा। और इस विचारधारा से प्रेरित होते हुए महाराष्ट्र में दलित साहित्य का निर्माण होने लगा। और दलित कवि, दलित कहानीकार, दलित उपन्यासकार अपनी अलग पहचान देने लगे। साहित्य की यह धारा प्रगतिशील होते हुए भी दलित लेखकों की अलग पहचान के कारण मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित एवं प्रभावित प्रगतिशील साहित्यधारा से भिन्न रूप में विकसित होते चली। और उसका ठोस रूप १९६० के आसपास दृष्टिगोचर होने लगा। मार्क्सवादी साहित्य और दलित साहित्य को प्रकृति परिवर्तनवादी एवं प्रगतिशील होने के कारण ये दो साहित्यधाराएँ एक दूसरे के विरोध में नहीं। शायद यही मानना उचित है कि ये एक दूसरे के पूरक है। विचारों की दिशा और व्यवहार का रास्ता अलग होते हुए भी मार्क्सवाद और दलित साहित्य का अंतिम लक्ष्य एक ही है, शोषणमुक्त समाज का निर्माण। दूसरे शब्दों में वर्ग संघर्ष के

द्वारा वर्ग विहीन समाज निर्माण करना यही मार्क्सवाद का अंतिम लक्ष्य है और वर्ण संघर्ष द्वारा जातिभेद का आधार नष्ट करते हुए वर्णविहीन समाज निर्माण करना यही दलित साहित्य का अंतिम लक्ष्य है। भले ही दलित साहित्य की प्रत्यक्ष प्रेरणा मार्क्सवाद न हो, लेकिन परोक्ष रूप से इसका प्रेरणा निर्विवाद है।

२.४.३ दलित साहित्य और ज्योतिबा फुले

सामाजिक विषमता और परंपरावादी, रूढिग्रस्त समाज के विरुद्ध कटोर टीका करने वाले, जाति-प्रथा का विरोध और स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर आधुनिक भारत में जिन्होंने आंदोलन चलाया उसके प्रथम अग्रदूत क्रांतिवीर ज्योतिबा फुले को माना जाता है। जिनको डॉ. अम्बेडकर ने अपना गुरु भी माना था।

ज्योतिबा फुले का जन्म सन् १८२७ को महाराष्ट्र के कटगुण नामक ग्राम में एक माली परिवार में हुआ। उनका जन्म ऐसे समय में हुआ जब भारतीय समाज अपनी रूढ़िवादियों, सामाजिक असमानता, अपमान एवं अशिक्षा के गहन अंधकार में होने के साथ ही विदेशी गुलामी की दासता में जकड़ा हुआ था। समाज में जातिवाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। दलित एवं नीच जातियाँ शिक्षा से वंचित थीं। ऐसे वातावरण में ज्योतिबा फुले को स्कूल में दाखिला कराया जाता है। लेकिन इसका विरोध किया गया। बालक फुले स्कूल के शिक्षा से वंचित होकर घर में आ गये।

परन्तु बालक ज्योतिबा के मन में शिक्षा की अटूट लालसा थी। अतः वह घर पर ही स्वध्याय में लगे रहे। बालक का इस सनक भरी लगन को देखकर फुले को पुनःमिशन स्कूल में भर्ती किया गया। इस तरह अनेक प्रतिबंधों का सामना करके अपनी पढ़ाई पूरा किया। बचपन से ही उनके मन में समाज में व्याप्त ऊँच-नीच की

भावना, हिन्दू धर्म की विसंगतियों, अंधविश्वासों ओर कुरीतियों से बड़ी उथल-पुथल रहती थी। इसलिए प्राचीन ग्रंथों का उन्होंने परिश्रम पूर्ण अध्ययन किया। इस अध्ययन से उन्हें यह स्पष्ट हुआ कि इस समाज-व्यवस्था में दलितों, श्रमिकों और स्त्रियों को सर्वाधिक दबाया गया है। तब से उन्होंने इसका विरोध करना शुरू किया।

महात्मा ज्योतिबा फुले ने सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय होने के साथ ही अपना अध्ययन जारी रखा और साहित्य, विज्ञान एवं इतिहास के अध्ययन के साथ ही कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा जो समाज से बाहर हो। ज्योतिबा फुले ने यह अनुभव किया कि दलित समाज में व्याप्त विषमता को समाप्त करने के लिए शिक्षित होना बहुत ज़रूरी है। फुले का मानना था कि शिक्षा मनुष्य को आत्मनिर्भर, आत्मसम्मानी, निर्भीक व विवेकशील बनाती है।

अपने संकल्प को कार्य रूप में परिणित करते हुए १८४८ में बालिकाओं के लिए विद्यालय शुरू किया। स्कूल खुलने से कट्टर और पाखंडी ब्राह्मणों में ईर्ष्या-द्वेष जागा। उन्होंने तरह-तरह के व्यवधान डाले। इन सब के बावजूद फुले ने अपने अभियान जारी रखा।

ज्योतिबा फुले ने एक साथ कई भूमिकाएँ अदा की। वे समाजकर्मो एवं शिक्षक के साथ-साथ क्रांतिकारी लेखक भी थे। उनकी प्रमुख रचनाओं ब्राह्मण की चालाकी (१८६९), गुलामगीरी (१८७३), किसान का कोड़ा (१८८३) उल्लेखनीय है।

ज्योतिबा फुले ने गुलामगीरी के ज़रिए धार्मिक आडंबरों पर चाट की, सामाजिक असमानता का मूल कारण 'वर्ण-व्यवस्था' को मानते हुए मनु के उस सिद्धांत का खंडन किया है जो अतर्क पर आधारित है। उन्होंने ब्रह्मा के मुख से

ब्राह्मण को, बाहुओं से क्षत्रियों को, जाँघों से वैश्य को और पैरों से शुद्र को जन्म देने वाला तर्क झूठा माना है। 'गुलामगिरी' में विश्व की उत्पत्ति से लेकर आज तक के हिन्दु धर्म के संक्षिप्त इतिहास की विसंगितयों की चर्चा है, जिसमें उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण झलकता है। इस संदर्भ को व्यक्त करते हुए आलोचक डॉ. मैनेजर पाण्डेय कहते हैं- "उन्होंने १८७३ में गुलामगिरी नामक पुस्तक लिखी थी, जिसे दलित आंदोलन का घोषणा-पत्र और बुनियाद दस्तावेज कहा जाता है।"[61]

फुले ने वर्ण-व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था पर कठोर से कठोर प्रहार किए। उन्होंने इतिहास के अनेक साक्ष्य देकर जनसामान्य में फैली कुरीतियों एवं जड़ता को दूर करने का प्रयास किया। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था की मुख्य आधार समझी जाने वाली मनुस्मृति के सिद्धान्तों को खण्डित कर उसका बहिष्कार किया। गुलामगिरी पुस्तक में इस व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ाई गई हैं। ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर प्रहार करते हुए फुले ने कहा कि "ये ब्राह्मण लोग महार, मंतग, कुनवी आदि से घृणा करते हैं। कहते हैं कि यदि इन्हें छूलिया तो अपवित्र हो जायेंगे परन्तु ये निर्लज्ज जन्म से लेकर मरणोपरान्त तक के संस्कार कराते हैं। अनेक प्रकार की दक्षिणा लेते हैं तब इनका ब्राह्मणपन कहाँ गया।"[62] फुले के कार्यों से प्रभावित होकर डॉ. भीमराव अम्बेडकर लिखते है कि-"महात्मा फुले के शिक्षा प्रसार के कार्य से ही अछूतों में मनुष्यता प्रतीत हुई। आज तक जिनको अवतारी पुरुष माना जाता रहा है उन सभी ने छुआछूत को बनाये रखने का प्रयास किया है, बल्कि यह कहना उचित होगा कि

---

61 उद्धृतः लेख-महात्मा ज्योतिबा फुले और उनका आंदोलन- डॉ. मायादेवी (श्री. मिलिन्द, दिसम्बर २००९), पृ.10

62 दलित विमर्श के विविध आयाम - डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ.72

उन्होंने उसे बढ़ाने की चेष्टा की। छुआछूत तो दफनाने का प्रयास करने की बात एक ही पुरुष ने की है वह हैं महात्मा ज्योतिबा फुले।"[63]

निसंदेह, फुले एक ऐसे दलित-आंदोलन, दलित-क्रांति के सूत्रधार थे जिसकी वजह से दलितों में शिक्षा और जीवन मूल्यों के प्रति अनुराग जाग्रत हुआ। उनमें जातीय एकता और स्वाभिमान के भाव प्रस्फुरित हुए। सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना जागी। हिंदुओं के धर्मग्रंथों और पंडितों द्वारा फैलाए गए अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करने का संकल्प पैदा हुआ। सदियों से जारी आर्थिक शोषण और सामाजिक बहिष्कार से लड़ने के लिए उनमें हिम्मत आई। इसीलिए फुले के आंदोलन अपने आप में एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति थी। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में निसंदेह, उन्होंने दलित मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया। [64] साथ ही वे बीसवीं सदी के दलित आंदोलन एवं दलित साहित्य को नई दिशा प्रदान कर गए।

२.४.४ दलित साहित्य और श्री नारायण गुरु

प्रादेशिक सीमाओं को लाँघकर भारत में ही नहीं पूरे विश्व को अपने विचारों से प्रभावित करनेवाला महान सामाजिक क्रांतिकारी है- श्री नारायण गुरू। उनके महामंत्र 'एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर, मानव का' पूरे विश्व में फैला हुआ है। यह मंत्र आज के दलित साहित्य का प्रेरणास्त्रोत है।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक केरल में दलितवर्गों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दशा बहुत ही शोचनीय थी। उस समय जाति व्यवस्था ने लोगों को अलग-अलग टुकडों में विभाजित कर दिया था। यह भेद-भाव तत्कालीन जनता में

---

[63] दलित विमर्श के विविध आयाम - डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ.73

[64] कन्हैयालाल चंचरीक- महात्मा ज्योतिबा फुले, जीवनी के 'रचनाएं और विचार' अध्याय से।

स्पर्धा, ईर्ष्या और विरोध की विषैली मानसिकता का संचार कर रहा था। श्री नारायण गुरू स्वामी ने उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए अपने पूरे जीवन को समर्पित कर दिया था। सन् १८५८ में श्री नारायण गुरू द्वारा अरुविप्पुरम् में 'ईष़वा शिवलिंग' की प्रतिष्ठा केरल के सामाजिक नवजागरण के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी।[65] उन्होंने जाति-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन चलाया। श्री नारायण गुरू के मिश्र भोजन और मिश्र विवाह के संकल्पों और उनके कार्य-कलापों ने दलितों के मन में नवजीवन का दीप जलाया। उन्होंने धर्म के उद्देश्य के बारे में इस प्रकार कहा- "सभी धर्मों का उद्देश्य एक ही है। एक बार जब सब नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं तो उनका अंतर समाप्त हो जाता है।"[66] धार्मिक वैमनस्य समाप्त करने के लिए उन्होंने कहा - "धर्म का उद्देश्य मनुष्य के विचारों का परम सत्य की ओर उत्थान है। इसको पा लेने के बाद हर व्यक्ति अपना मार्ग स्वयं ही पा लेगा। यदि धार्मिक विवादों को ख़त्म करना है तो हर व्यक्ति को एक-दूसरे व्यक्ति के धर्म को पढ़ना चाहिए और उसे खुले मस्तिष्क से समझना होगा।"[67]

श्री नारायण गुरू स्वामी मानवता के उपासक थे। दलितों के प्रति उनकी पक्षधरता मानवीयता का ही अंग है। उन्होंने देखा कि दलित समाज मानवाधिकारों से वंचित जन समाज है। उन्होंने सदियों से गुलामी में दबी पडी दलित जाति को स्वच्छता के खुले प्रांगण में पदार्पण करने का ऊर्जा प्रदान की। अगर केरल की वर्तमान पीढी सामाजिक दृष्टि से क्रांतिकारी विचारों और प्रगतिवादी उद्‌गारों से अभिभूत हुई है तो उसके लिए श्री नारायण गुरू ने ही समुचित पृष्ठभूमि बाँधी थी।

---

65 मलयालम में दलित साहित्य : दृष्टि और सृष्टि- सं. प्रो. ए.अच्युतन, पृ.54

66 केरल की सांस्कृतिक विरासत – जी. गोपीनाथन, पृ.172

67 वहीं, पृ.172-173

अर्थात् आज के दलित साहित्य एवं दलित साहित्यकार उनके विचारों से प्रभाव ग्रहण करना स्वभाविक हैं।

२.४.५ दलित साहित्य और डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर

भारतीय समाज संरचना में सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ संघर्ष करने वाले लोग कम रहे हैं। इतिहास के विकासक्रम में ऐसे गिने-चुने नाम हैं, जिन्होंने यथास्थितिवाद, समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्थविश्वासों, रूढ़ियों, शोषण, उत्पीड़न, दमन और वर्ण-भेद के खिलाफ आवाज बुलन्द की। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपने समय में प्रचलित कट्टरपंथी एवं अमानवीय रूढ़ियों, परम्पराओं व मान्यताओं के खिलाफ न केवल संदेश दिया, वर्ण अन्याय के प्रतिरोध, न्याय व्यवस्था और सामाजिक समानता के लिए किए जाने वाले संघर्ष को नेतृत्व भी प्रदान किया।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने भारत की सामाजिक, राजनैतिक विचारों की पृष्ठभूमि, चिन्तन एवं जीवन पद्धति को गहरे स्तर तक प्रभावित किया। सदियों से भारतीय समाज मनुस्मृति की व्यवस्थाओं पर आधारित एक विशेष मानसिकता से संबंद्ध सामाजिक और राजनीतिक विधानों से नियन्त्रित होता रहा है। आधुनिक युग में अम्बेडकर ने मनुस्मृति पर आधारित श्रणीबद्ध असमानता के सिद्धान्त को कड़ी चुनौती दी व वर्ण एवं जाति पर आधारित सामाजिक और राजनीतिक विधानों के प्रति खुली बगावत की। सदियों से प्रचलन में रही वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था, उच्च-वर्गों के विशेषाधिकार एवं निम्न वर्गों के लिए अमानवीय और शोषण-युक्त व्यवस्था भारतीय समाज में संस्कार के रूप में रच-बस चुकी थी। अम्बेडकर ने आधुनिक जीवन-मूल्यों से प्रभावित होकर परम्परागत भारतीय समाज की अमानवीय मान्यताओं, जन्म के आधार पर मानव मात्र का विभाजन, उच्च वर्गों के

विशेषाधिकार एवं निम्न वर्गों की निर्योग्यताओं को अस्वीकार करके मानव मात्र के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक अधिकारों की वकालत कर एक ऐसे भय, भेद एवं शोषण-मुक्त समाज की परिकल्पना की जो समाज जन्म के स्थान पर कर्म और शोषण की बजाय पोषण पर आधारित होगा।

डॉ. अम्बेडकर का जन्म महाराष्ट्र के जिस महार (चमार) जाति में हुआ था, वह दलित, उपेक्षित और अछूत थे। समाज में परिव्याप्त जाति-प्रथा के जहरीले विष ने उनके प्रारम्भिक छात्र-जीवन को कलुषित कर दिया था। छात्र-जीवन के प्रारम्भिक दिनों में मिली मर्मान्तक पीड़ा और वेदना ने उनके अन्दर क्षोभ और कडुवाहट उत्पन्न कर दी थी। उनका सम्पूर्ण जीवन-दर्शन इसी पीड़ा, वेदना और क्षोभ की मुखर अभिव्यक्ति है। उनके चिन्तन पर बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले आदि क्रांतिकारी महापुरुषों का बहुत अधिक प्रभाव था। उन्होंने बुद्ध से मानसिक और दार्शनिक पिपासा बुझाने वाला अमृत मिला और अछूतों के उद्धार का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। कबीर ने उन्हें भक्ति भावना प्रदान की, ज्योतिबा फुले ने उन्हे ब्राह्मण विरोध के लिए प्रेरित किया और शिक्षा तथा आर्थिक उत्थान का सन्देश मिला। डॉ. जयप्रकाश कर्दम के अनुसार- "डॉ. अम्बेडकर का सपना एक सुदृढ़ समुन्नत और सुखी, सम्पन्न राष्ट्र का सपना था जिसमें सब समान हों तथा सब परस्पर प्रेम, सहयोग और बन्धुता के साथ रहें। कोई छोटा, बड़ा, ऊँचा-नीचा या सछूत-अछूत न हो। इसके लिए उन्होंने जातिविहीन और वर्गहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की। इस तरह के समाज को रचना कैसे हो, यही उनके समग्र चिन्तन और सृजन का मूल विषय और आधार है। समाज-राजनीति, धर्म कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जिसमें डॉ. अम्बेडकर के विचार एवं कार्य न किया हो। वैचारिक रूप से वह राजनीतिक क्षेत्र में लोकतन्त्र के,

सामाजिक क्षेत्र में मानववाद के, आर्थिक क्षेत्र में समाजवाद के, धार्मिक क्षेत्र में बुद्धवाद के तथा दार्शनिक क्षेत्र में अन्तिम और अनात्मवाद के पक्षधर रहे। किसी भी प्रकार की असमानता और अन्याय का उन्होंने सदैव विरोध किया।"[68] इस अन्याय और शोषण से मुक्ति के लिए उन्होंने शिक्षा, संगठन और संघर्ष का नारा दिया था। उन्होंने अपने चिन्तन के द्वारा बताया था कि अस्पृश्यता, जातिवाद पर आधारित है।

डॉ. अम्बेडकर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था, ब्राह्मणवाद, पूँजीवाद के ख़िलाफ थे क्योंकि ये सभी व्यवस्थाएँ, भेदभाव, शोषण, अन्याय और अत्याचार पर आधारित हैं। इसलिए उन्होंने इसके विरुद्ध दलितों को संगठित किया और गलत समाज-व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन शुरू कर दिया। पहले उन्होंने अपने अछूत समाज में स्वाभिमान और प्रगतिशीलता के भाव भरे, फिर देश की आवश्यकता के अनुरूप अन्य समाजों के सामने भी अपने विचार रखे। उनकी शिक्षाओं का दलित समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वे अपने मानवाधिकारों के प्रति सजग हुए। उन्होंने पीड़ित और शोषित दलित वर्ग को समानता का दर्जा दिलाने के लिए सन् १९२० में मराठी भाषा में 'मूकनायक' नामक समाचार-पत्र का प्रकाशन किया। बाद में इस दिशा में दो और पत्र भी निकाले। जिन के नाम है 'बहिष्कृत भारत' और 'जनता'। इन पत्र-पत्रिकाओं के ज़रिए डॉ. अम्बेडकर ने अपनी बातों एवं विचारों को जनता के सामने रखा। इसके साथ उन्होंने अनेक आंदोलन भी चलाये। महाड़ सत्याग्रह (१९२७), मन्दिर-प्रवेश आंदोलन (१९२९-३० कालाराम एवं अन्य मन्दिर), 'लेबर पार्टो' की

---

[68] दलित साहित्य और डॉ. अम्बेडकर (लेख): जयप्रकाश कर्दम, उद्धृत- डॉ. एन. सिंह- दलित साहित्य के प्रतिमान, पृ.237

स्थापना (१९३६), नागपुर सम्मेलन (१९४२), धर्म परिवर्तन आंदोलन (१९५६) आदि महत्वपूर्ण हैं।

डॉ. अम्बेडकर की वैचारिक प्रेरणा क्रान्ति से प्रोत्साहित होकर दलित समाज के लोगों ने विविध रूपों में साहित्य लिखने लगे। इस संबंध में वरिष्ठ दलित साहित्यकार कंवल भारती का कथन सर्वथा मान्य प्रतीत होता है कि-"दलित वर्गों के लोग डॉ. अम्बेडकर को इसलिए सम्मान देते हैं और इसलिए पूजते हैं कि उन्होंने दलितों को गुलामी का अहसास कराया था और उनको मुक्ति की लड़ाई लड़ी थी। यह वह महान कार्य था, जो किसी भी हिन्दु नेता ने नहीं किया था।"[69] उनके क्रान्तिकारी और प्रगतिगामी विचारों से अनुप्राणित होकर उन दलित, शोषित और प्रताड़ित लेखकों, कवियों तथा अन्य साहित्यकारों की लेखनी से साहित्य स्त्रोत प्रस्फुटित होने लगे जिन्हें लिखने-पढ़ने का पूर्ण निषेध था। जिनकेलिये लिखना-पढ़ना कठोर दण्ड का पैगाम माना जाता था।

डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक समानता, स्वतन्त्रता, और बन्धुत्व की स्थापना आंदोलन, नारी विमुक्ति आंदोलन, मंदिर प्रवेश आंदोलन, चौदार सरोवर से पानी पीने का आंदोलन, बैकार परती भूमि पर कब्जा कर उत्पादन बढ़ाने का आंदोलन, बेगार प्रथा को समाप्त करने का आंदोलन, महिला प्रसूति सुविधा आंदोलन, मलाबार को वन्य जाति सुधार आंदोलन तथा शैक्षिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलनों ने सवर्ण हिन्दुओं को अपने अन्दर झाकने के लिए मजबूर कर दिया। एक ओर तो इन आंदोलनों ने दलित समाज को आत्मसम्मान और गौरव तथा उन्नतिशील अतीत के इतिहास को खोजने और समझने के लिए भी मजबूर कर दिया। इसका सुपरिणाम

---

[69] डॉ. अम्बेडकर को नकारे जाने की साजिश - कंवल भारती, पृ.8

यह हुआ कि महाराष्ट्र में ही नहीं अपितु भारत के सभी प्रदेशों में एक सांस्कृतिक सम्मान की धारा बह निकली। अस्तु भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लोग अपनी-अपनी प्रादेशीय भाषाओं में डॉ. अम्बेडकर के विचारों एवं आंदोलनों से प्रेरित होकर कविता, कहानी, गीत, नाटक, उपन्यास आदि लिखने लगे। अतः यह कहना सही एवं सटीक होगा कि डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन ही दलित साहित्य का वैचारिक आधार है। इस संदर्भ में श्री. शरणकुमार लिंबाले का कथन उल्लेखनीय है-"दलित साहित्य की प्रेरणा अम्बेडकरवादी विचार हैं, क्योंकि बाबासाहेब अम्बेडकर के विचारों और आंदोलन से दलित समाज को स्वाभिमान मिला है। यदि बाबा साहब न होते तो हम न होते बाबा साहब की जीवन गाथा, उनका कार्य और वाणी तथा उनके अमूल्य विचारों से दलित समाज, दलित आंदोलन और दलित लेखक जागृत हुआ, इसलिए, बाबा साहब अम्बेडकर हो दलित साहित्य की सच्ची प्रेरणा हैं।"[70]

उपर्युक्त विवेचन से सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि दलित साहित्य की मूल प्रेरणा अम्बेडकरवादी चिन्तन ही है।

२.५ निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य जगत में दलित साहित्य को लेकर कई वाद-विवाद चल रहा है। पर यह निश्चित है कि साहित्य और विचार की परंपरा में दलित साहित्य का वजूद अब स्थायी रूप ले चुका है। दलित साहित्य समाज और संस्कृति के सभी पहलुओं को स्पर्श करते हैं। अपितु वह सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्गठन का समग्र विचार प्रस्तुत करता है। दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता और बंधुत्वता स्थापित करना चाहते है। अब दलित साहित्यकारों के सामने अपना लक्ष्य स्पष्ट है और ये

[70] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - शरणकुमार लिंबाले, पृ.52

साहित्यकार साहित्य को हथियार बनाकर भारतीय सामाजिक व्यवस्था से लडने और उसमें परिवर्तन लाने की कोशिश में है।

वर्तमान साहित्य जगत में दलित साहित्य का वैचारिक आधार को लेकर अब अधिक तर्क वितर्क की संभावनायें नहीं हैं। क्योंकि अब दलित साहित्य नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। दलित साहित्य आज जिस मुकाम पर है, वहाँ तक पहुचाने में विभिन्न वैचारिक धाराओं का योगदान रहा है। दलित साहित्य का मूल वैचारिक आधार या प्रेरणास्त्रोत देश के दीन दलितों के मसीहा डॉ. बाबा साहेब भीमाराव अम्बेडकर हैं। इनके पहले भारत में अनेक दार्शनिक, संत, महात्मा हुए जैसे बुद्ध, कबीर, रैदास, ज्योतिबा फुले, अछूतानंद आदि। इनकी विचारों ने भी दलित साहित्य को वैचारिक आधार प्रदान किया। अर्थात् इस तथ्य निर्विवाद रूप से स्थापित हो गया है कि आज की दलित साहित्य का प्रतिनिधित्व वे वैचारिक धाराएँ ही कर रही है जिनका नेतृत्व बुद्ध, ज्योतिबा फुले, अछूतानंद और डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने किया था।

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

तीसरा अध्याय

दलित नाटक और रंगमंचः तथ्यात्मक विवेचन

३. दलित नाटक और रंगमंच: तथ्यात्मक विवेचन

दलित नाटक और रंगमंच दलित आंदोलनों का ही परिणाम है और ये आंदोलन पूरे भारत के विभिन्न प्रांतों में सक्रिय रहे थे, कारण तो साफ है कि भारतीय सामाजिक संरचना में दलित और पीड़ित जनता के इतिहास मनाही का इतिहास रहा है। रास्तों पर चलने, पानी पीने, कपड़े पहनने, पढ़ने आदि मना था। स्वाभाविक रूप से इसके खिलाफ जनता ने आवाज़ उठाई। इस आंदोलन को व्यापक मंच देने के लिए तत्कालीन लोगों ने अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों का प्रयोग किया। जैसे- लोकगीत, लोकनाट्य आदि। मराठी में जलसा का प्रयोग इसका सर्जनात्मक उदाहरण है। अतः भारत के इस दलित आंदोलनों का ज़िक्र किये बिना दलित नाटक और रंग मंच की चर्चा अधूरी रह जाएगी।

३.१ भारतीय दलित आंदोलन: एक दृष्टि

आंदोलन सदैव परिवर्तन का द्योतक है। सामाजिक आंदोलन किसी भी समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षिक व्यवस्था के साथ असहमति के कारण मानवीय प्रतिक्रिया स्वरूप निर्मित होता है। ज़्यादात्तर सामाजिक आंदोलनों की जड़े सामाजिक समस्याओं में हैं। भारतीय सन्दर्भ में सामाजिक विषमता का एक प्रमुख कारण वर्ण-जाति व्यवस्था है। वर्ण-जाति व्यवस्था का मुख्य आधार सवर्ण या श्रेष्ठ जातियों के विशेषाधिकार तथा अवर्ण या निम्न जातियों पर थोपी गई अयोग्यताएँ हैं। वर्ण-व्यवस्था और जाति व्यवस्था के तहत ऊँच-नीच, छूत-अछूत की धारणा भारतीय समाज के कण-कण में इतनी गहरी है कि जीवन का कोई भी क्षेत्र उससे अछूता नहीं है। अवर्ण और हीन जातियों को शिक्षा, अर्थ और सत्ता से वंचित

रखा गया और सवर्ण इन सभी विशेषाधिकारों से संपन्न रहे। इन सबके अलावा अस्पृश्यता भी कायम रही। जातिगत भेद-भाव का सबसे अमानवीय पहलु धर्मशास्त्रों पर आधारित अस्पृश्यता है। धार्मिक विचारधारा, केवल मानव मन को ही नहीं प्रभावित करती बल्कि सामाजिक संस्कार और आर्थिक संरचना को भी निर्धारित करती है। एक को पवित्र और स्पृश्य और दूसरे को अपवित्र और अस्पृश्य मानने की अवधारणा ने जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न जातियों के पारस्परिक संबंधों पर ऊँच-नीच का संचालन किया। आधुनिक भारत में ये अस्पृश्य और अछूत दलित के नाम से अभिहित हैं। मानवीय अधिकारें से वंचित दलितों ने जाति-वर्ण-भेद एवं अस्पृश्यता के खिलाफ आंदोलन प्रारंभ किया। दलित आंदोलनों को अछूत जातियों द्वारा जातिगत दमन के विरुद्ध किये गये संघर्ष के रूप में देखा जा सकता है। यह संघर्ष औपनिवेशिक काल में आकर सामाजिक और आर्थिक बदलाव को भी परिलक्षित करता है। इसमें ज्योतिबा फुले, ई.वी. रामस्वामि नायकर, श्री नारायण गुरू, डॉ.बाबा साहेब अम्बेडकर आदि की प्रवृत्तियाँ महत्वपूर्ण है। १९ वीं शताब्दी में आकर इस आंदोलन ने एक नई शक्ल हासिल की। ये प्रत्यक्ष कार्यवाही द्वारा मानवाधिकारों के लिए लड़ते है और दूसरी तरफ जाति-व्यवस्था को तोडने का कार्य करते हैं। इस प्रकार दलित आंदोलन मानवता को स्थापित करने का संघर्ष है और बाद में यह धार्मिक, शौक्षिक तथा राजनैतिक मोड लेता है। पूरे भारत में एक सुसंघटित दलित आंदोलन नहीं हुआ है। लेकिन दलितों के विभिन्न मुद्दों को लेकर देश के विभिन्न भागों में आंदोलन चलाये गये। फिर भी इन आंदोलनों में एक मुद्दा सामान्य था वह है दलित अस्मिता। इन आंदोलनों ने आत्मसम्मान, समता और छुआ-छूत निवारण की अनिवार्यता पर बल दिया। दलित आन्दोलनों में दलित समाज के पढ़े-लिखे लोगों को, जो दलित आंदोलन से जुडे हुए थे साहित्य लिखने के

लिए प्रेरित किया क्योंकि आंदोलन को बल मिले। इस प्रकार दलित आंदोलन और साहित्य एक दूसरे के प्रेरक बने तथा संघर्ष और संगठन के रास्ते में सहायक बने। दलित आंदोलन ही दलित साहित्य की ऊर्जा है। आगे देश के विभिन्न प्रदेशों में हुए प्रमुख दलित आंदोलनों के बारें में चर्चा करेंगे।

३.१.१ केरल के दलित आंदोलन

भारत के अन्य प्रदेशों की तरह केरल के दलितों का सामाजिक इतिहास मनाही का इतिहास है। सार्वजनिक सड़कों पर चलने का अधिकार, मन्दिरों में प्रवेश कर आराधना करने का अधिकार, सही ढंग से वस्त्र पहने का अधिकार, बाजार में सामान बेचने-ख़रीदने का अधिकार, अपनी गाय को दुहने का अधिकार, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार, सामान्य भाषा का प्रयोग करने का अधिकार, अपनी उपजातियों के बीच सहभोजन करने का अधिकार आदि से वंचित होकर केरल का दलित समाज पशुओं जैसा जीवन बिता रहा था। दलितों ने जमींदारों-भूस्वामियों तथा उच्च वर्ग के लोगों के लिए खेतों में अपना जीवन होम कर दिया था। उन्हीं को अछूत घोषित करके जीवन के हर अधिकारों से वंचित रखा। दलितों के अधिकारों को पुनःस्थापित करने की लड़ाई एक आंदोलन का रूप धारण कर चुकी थी। श्रीनारायण गुरू, अय्यनकाली, करूमप्पन, दैवत्तान आदि नेता इस आंदोलन के सूत्रधार थे।

केरल के दक्षिण छोर के चान्नार नामक दलित वर्ग के औरतों को उस समय चोली पहनने का अधिकार नहीं था। १८२८ में जब दो चान्नार औरतों ने चोली पहनकर चलीं तो उनकी चोलियों को कुछ सवर्णों ने चीर डाला। चान्नारों ने खुलकर इसका विरोध किया। चान्नार आंदोलन के नाम से यह विख्यात है। अख़िर २६ जुलाई १८५९ को त्रावणकोर महाराज को चान्नार औरतों को सवर्णों जैसे वस्त्र पहनने

की आज़ादी की मंज़ूरी का एलान करना पड़ा। सन् १८५८ में श्री नारायण गुरू द्वारा अरुविप्पुरम् में 'ईष़वा शिवलिंग' की प्रतिष्ठा केरल के सामाजिक नवजागरण के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। उन्होंने ब्राह्मण वर्ग के पुरोहिताई अधिकार को चुनौती दी। उन्होंने जाति-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन चलाया। वह ईष़वा नाम की दलित जाति में पैदा हुए थे। उन्होंने सभी मनुष्यों के लिए 'एक जाति, एक धर्म और एक ईश्वर' की घोषणा की थी। उनका मंदिर बनाना ब्राह्मणों के ख़िलाफ खुला विद्रोह था। यह वर्ण-व्यवस्था को बहुत बड़ी चुनौती थी। नारायण गुरु के आंदोलन ने दलितों में जागृति पैदा की। नारायण गुरु का आंदोलन सिर्फ मंदिर निर्माण नहीं था। वह तो ब्राह्मणवाद के ख़िलाफ विद्रोह का प्रतीक मात्र था। उन्हें अपने इस कार्य के लिए ब्राह्मण और नायर जमींदारों के क्रोध का भी सामना करना पड़ा।

२८ आगस्त १८६३ को वेङानूर में जन्मे अय्यनकाली केरल के दलित वर्ग के उन्नायक एवं सामाजिक क्रान्तिकारी हैं। आम रास्ते पर गुजरने की आज़ादी के लिए सर्वप्रथम अय्यनकाली ने लड़ाई शुरू की। सन् १८९३ में उन्होंने एक बैलगाड़ी ख़रीद ली। उस जमाने में बैलगाड़ी ख़रीदने और उस पर चढ़कर सवारी करने का केवल सवर्णों का हक था। लेकिन अय्यनकाली ने बैलगाड़ी में सवारी की। सवर्णों को अय्यनकाली की करामात बेहूदी एवं ढिठाई लगी। गाड़ी में बैठे अय्यनकाली एक सफद बनियान और धोती पहने हुए थे। दलितों को सफेद पोशाक पहनने की मनाही थी। सवर्णों के साथ भारी मुठभेड़ हुई, मारपीट हुई। मगर इस घटना से दलितों को यह बात का अनुभव हुआ कि हमें आम रास्ते से गुज़रने की आज़ादी कोई भी न देगा, आम रास्ते से चलते रहने से ही वह अधिकार मिलेगा। दलित

बच्चों को स्कूल में जाकर शिक्षा प्राप्त करना का अधिकार पाना उनका दूसरा लक्ष्य था। लेकिन सवर्णों ने इसका विरोध किया। अतः उन्होंने १९०५ में वेङान्नूर में एक झोंपड़ी बनाकार पाठशाला की स्थापना की। केरल के दलितों की यह प्रथम पाठशाला थी।[1] सवर्णों ने इसको आग लगा दी। लेकिन उन्होंने उसी स्थान पर दूसरे ही दिन दूसरी झोंपडी बनाई। इन सब के फलस्वरूप सरकार को स्कूल में दाखिला संबंधी आदेश जारी करना पड़ा। इसी प्रकार उन्होंने धर्मान्तरण का भी विरोध किया। उन्होंने महसूस किया कि सारे दलितों की सम्मिलित कोशिश से ही दलितों को अधिकार एवं तरक्की मिलेगी। अतः उन्होंने १९०७ फरवरी में 'साधुजन परिपालन संघ' की स्थापना कर दलितों के संपूर्ण अधिकार के लिए भरसक प्रयत्न किया।

३.१.२ सत्यशोधक समाज आंदोलन

हमारे देश के इतिहासकारों ने यदि संकुचित सोच और पूर्वग्रहों से ग्रसित होकर यदि इतिहास लेखन न किया होता तो आज उन महान विभूतियाँ को इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता जिन्होंने शोषित एवं पीडित दलित लोगों के लिए संघर्ष करते रहे। ऐसे इतिहास से वंचित सामाजिक क्रांति के पुरोधा हैं - महात्मा ज्योतिबा फुले। इस बात से सहज अंदाज़ लगाया जा सकता है कि जिनकी कार्य शैली से प्रभावित होकर स्वायं बाबा साहेब अम्बेडकर जी ने उन्हें अपना गुरू माना।

आधुनिक भारत के दलित आंदोलन के इतिहास में फुले एक महान शिक्षाविद, सामाजिक सुधारों के पुरोधा और इससे भी बढ़कर युग परिवर्तनकारी दूरदृष्टा के रूप में माने जाते हैं। दलित-अस्पृश्यों में शिक्षा और ज्ञान की किरणें

---

[1] मलयालम में दलित साहित्यः दृष्टि और सृष्टि - डॉ. ए. अच्युतन, पृ.54

उन्होंने ही बिखेरीं। उनमें आत्म-सम्मान की भावना उन्होंने ही जाग्रत की। १८४८ में स्त्री और दलितों के लिए पाठशालाएँ खोलने के साथ ही शूद्रादि-अतिशूद्रों की मुक्ति के जो अभियान महात्मा फुले ने शुरू किये, उसका विस्तार १८७३ में सत्यशोधक समाज की स्थापना से होता है। महात्मा ज्योतिबा फुले द्वारा संस्थापित सत्यशोधक समाज ब्राह्मण वर्चस्व और उच्च जातियों द्वारा समाज की निम्न जातियों के बौद्धिक शोषण तथा सामाजिक-सांस्कृतिक उत्पीड़न और अन्याय के विरुद्ध प्रतीकात्मक रूप में एक जन-आंदोलन बनकर सामने आया। इसे हम एक नई सांस्कृतिक क्रांति की संज्ञा दे सकते हैं।

'सर्व धर्म समभाव' के पोषक और मानवता के पक्षधर सत्यशोधक समाज से कुछ कट्टरपंथी हिंदू घृणा करते थे। ज्योतिषियों और वेदपाठियों के काम-धंधे में मंदी आ गई। शुद्र और निम्न जातियों ने उनसे अपने मंगल उत्सवों, मुहूर्त और विवाह की तिथियाँ निकलवाना बंद कर दिया। महाराष्ट्र में इससे पहले इतने क्रांतिकारी और प्रगतिशील समाज सुधारों का कार्य कोई व्यक्ति या संस्था नहीं कर पाई थी। पुणे में दलित शिक्षा के प्रसार से अछूतों में सत्यशोध समाज के प्रति विशेष उत्साह था। अधिकांश पठे लिखे युवा पीढ़ी विचारों से उदार थे, लेकिन बुराइयों से लड़ने में झिझकते थे। वे यह सब जानते हुए कि पुरातनवादियों के कारण हिंदुत्व बुराइयों का घर बन गया है और उसमें अस्पृश्यता, जात्याभिमान, असामनता, सामाजिक रूढ़ियाँ हावी हो गई हैं, जिसके कारण उसकी गतिशीलता कुंठित हो गई है, फिर भी वे गंभीरता से सामाजिक क्रांति की आवाज़ बुलंद नहीं कर पाए। समाज सुधार दुस्साहस माना जाता था। जाति बहिष्कृत करने की भी प्रथा थी।

सामाजिक परिवर्तन का यह काम ज्योतिबा ने किया। अब तक किसी भी समाज सुधारक ने शुद्रों, दलितों, अस्पृश्यों की गुलामी से भी बदतर हालत के बारे में सोचा भी नहीं था, यह फुले थे, जिन्होंने बैचारिक क्रांति का सूत्रपात किया। समाज के ठेकेदारों, सरकार और बड़े-से-बड़े व्यक्ति को यह अहसास करा दिया कि शाब्दिक सहानुभूति, किताबी एकता, कोरे मेल-मिलाप की जगह सामाजिक और जातीय बराबरी की आवश्यकता है, सामाजिक न्याय की जरूरत है। इस तरह सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक अधिकारों की प्रतिस्थापना, वक्त की आवाज है। दलित स्त्री-पुरुषों की शिक्षा जरूरी है। यह था ज्योतिबा फुले नवजागरण संदेश। इसलिए फुले के जन-जागरण के कार्यकलापों और सामाजिक रूढ़ियों से संघर्षरत रहने के कारण १९ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध दलितों और शोषितों की मुक्ति के प्रयास युग कहा गया। इस प्रकार ज्योतिबा फुले का सत्यशोधक समाज सुधारवादी कार्यक्रमों के कारण पूरे महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय हो गया था। यह शूद्र, अतिशूद्र, निम्न वर्ग, किसान-कामगार और दात्तकारों में जागृति की लहर फैलानेवाला, क्रांतिकारी परिवर्तन लानेवाला जन आंदोलन बन गया था।

निसंदेह, फुले एक ऐसे दलित आंदोलन, दलित-क्रांति के सूत्रधार थे जिसकी वजह से दलितों में शिक्षा और जीवन मूल्यों के प्रति अनुराग जाग्रत हुआ। उनमें जातीय एकता और स्वाभिमान के भाव प्रस्फुरित हुए। सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना जागी। हिन्दुओं के धर्मग्रंथों और पंडितों द्वारा फैलाए गए अंधविश्वासों के विरुद्ध संघर्ष करने का संकल्प पैदा हुआ। सदियों से जारी आर्थिक शोषण और सामाजिक बहिष्कार से लड़ने के लिए उनमें हिम्मत आई। इसीलिए यह आंदोलन अपने आप में एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रांति थी। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में

दलित मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।[2] जिसे २० वीं शताब्दी में डॉ. अम्बेडकर ने आगे बढ़ाया।

३.१.३ आदि हिन्दु आंदोलन

उत्तर भारत में सन् १९२५ के आसपास स्वामी अछुतानंद (१८७९-१९३३) ने 'आदि हिन्दु आंदोलन' का सूत्रपात किया। जिन्हें हिन्दी क्षेत्र में दलित नवजागरण का अग्रदूत कहा जा सकता है। उनका जन्म उत्तर प्रदेश में चमार जाति में हुआ था। वे स्वाध्याय से अनेक भाषाओं पर अधिकार पालिया था। उनका बचपन का नाम हीरालाला था। लेकिन अछूतों के समग्र विकास के लिए उन्होंने अपना नाम बदलकर अछुतानंद कर दिया। अछुतानंद आरम्भ में आर्य समाजी थे पर वे शीघ्र ही आर्य समाज से अलग हो गए थे और अपना पृथक् आंदोलन चलाने के लिए प्रेरित हुए। वे अपने आदि हिन्दु आंदोलन के जारिए हिंदू धर्म में सदियों से प्रचलित अस्पृश्यता, जाति प्रथा, सामंतवाद, सामाजिक विषमता और रुढ़ियों पर प्रहार किया। वे दलित जातियों को आदि निवासी बताकर 'आदि हिन्दू' की नई अवधारणा प्रस्तुत की जो हिंदुत्ववादी विद्वानों की 'हिन्दू की अवधारणा' से एकदम अलग थी। हिंदुत्ववादी विद्वानों के अनुसार सिंधु पार के आर्य-अनार्य के सम्मिलित लोग 'हिन्दू' कहलाते हैं। इनकी 'हिंदू' की अवधारणा में आर्य-अनार्य जाति शमिल है। जबकि अछुतानंद ने भारत के शूद्र-अतिशूद्रों को आदि निवासी बताकर 'आदि हिंदू' की सामाजिक अस्मिता के रूप में नई अवधारणा दी थी।

---

[2] चंचरीक, कन्हैयालाल- महात्मा ज्योतिबा फुले (भारत में नवजागरण अध्याय के आधार पर), पृ.102-103

स्वामी अछुतानंद ने जातिवाद का विरोध किया और उसे उखाड़ने के लिए लोगों का आह्वान किया। उन्होंने धर्मांतरण की बात कभी नहीं किया। स्वामी जी ने अन्य निम्न जातियों के साथ अंतर्जातीया विवाह की भी बात कही। उन्होंने सन् १९२२ में दिल्ली में एक विशाल दलित सम्मेलन आयोजित किया। जिसमें स्वामी जी ने दलितों का सम्बोधन करते हुए कहा था-"आदिधर्मो अछूत-दलित, सवर्ण हिंदुओं, संपन्न मुसलमानों और शासनकर्त्ता अंग्रेज जाति के तिहरे गुलाम हैं। गांव में वे अस्पृश्यता और दासता का शिकार हैं, शहर में उन पर बेरोजगारी की मार है। उनकी अलग गंदी बस्तियां उनकी दयनीय सामाजिक-आर्थिक स्थिति का ज्ञान कराती हैं, साथ ही हिन्दू समाज के अनावरत शोषण का पता भी देती हैं जिसकी और ब्रिटिश राज ने ध्यान ही नहीं दिया। दलित तो मेहनतकश लोग हैं, लेकिन जाति प्रथा के कलंक और अस्पृश्यता के विष ने उन्हें डस रखा है।"[3] उन्होंने गांवों में प्रचलित बेगार और बंधुआ मजदूरी प्रथा का विरोध किया। समाज सुधार की श्रृंखला में उन्होंने मृत्युभोज, मद्य-पान, देवी-देवताओं की पूजा का तिरस्कार किया। सन् १९३३ में कानपुर में उनका परिनिर्वाण हुआ। हिन्दी क्षेत्र में दलित आंदोलन में उनकी भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण मानी जाती है।

३.१.४ आत्म सम्मान आंदोलन

तमिलनाडू में सबसे बड़े ब्राह्मणवाद विरोधी आंदोलन की शुरुआत ई.वी.रामस्वामी नायकर (१८७९-१९७३) किया था। जिन्हें 'पेरियोर' (महान आत्मा) नाम से जाना जाता है। वे 'आत्मसम्मान आंदोलन' के जनक है। उनके इस आंदोलन की बड़ी विशेषता यह थी कि उन्होंने शूद्र-अतिशूद्रों में आत्मसम्मान की

---

[3] आधुनिक भारत का दलित आंदोलना - आर. चन्द्रा, कन्हैया लाल चंचरीक, पृ.91

भावना जगाकर आत्मविश्वास पैदा किया साथ ही सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनैतिक स्तर पर दलित-पिछड़े वर्ग को आंदोलित करने में सफलता पाई। धर्म को दुनिया में अन्याय का कारण मानकर उसने धर्मशास्त्रों की पवित्रता पर प्रश्न चिह्न लगाया। स्त्रियाँ और दलितों की शिक्षा का समर्थन किया। शुरु में पेरियार ने कांग्रेस के छाय में रहकर दलित उपेक्षा की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया। अछूतोद्धार का आंदोलन चलाया, सामाजिक न्याय और सामाजिक समता की बात की। नशाबंदी का नेतृत्व किया। अछूतों को मंदिर प्रवेश और सार्वजनिक स्थानों के उपयोग के लिए संगठित किया। उन्होंने केरल में ईष़वा अछूत जाति आंदोलन को समर्थन दिया। लेकिन 'मद्रास कांग्रेस पार्टी' जिसमें ब्राह्मण आधिपत्य था इस बात पर उससे नाराज हो गई। समाज सुधारों की अपीलों और कार्यो के प्रति कांग्रस ने विरोद जताया।[4] कांग्रेस की पुरातन एवं रूढ़ियों से सम्बन्धि नीति से दुःखी होकर उन्होंने पार्टी छोड़ दी। १९४४ में पेरियार और उनके साथियों द्वारा द्रविड़ कष़गम पार्टी की स्थापन की जो तमिलनाडू में दलितों के राजनैतिक संघर्षों को प्रज्वलित किया।

उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने बहुत सी प्रचलित हिन्दू मान्यताओं और विचारों को चुनौतो दी। अछूत समुदाय से पेरियार ने स्पष्टतः सामाजिक-क्रांति का आह्वान करते हुए कहा-"अस्पृश्य लोगों के लिए क्या यह वांछनीय नहीं है कि वे शक्ति अथवा हिंसा के बल पर इन विषमताओं से स्वतंत्रता प्राप्त करें या अपने को इस प्रयत्न में समाप्त कर डालें। जिस देश में ऐसी प्रथा का प्रचलन हो क्या वह देश राजनीतिक स्वतंत्रता तथा स्वराज्य की अपेक्षा कर सकता है। अस्पृश्यता का

---

4 शिडयूल्ड कास्ट्स इन इंडिया - यूरलोवा, ई.एस, पृ.58-59
आर चन्द्रा एवं चंचरीक-आधुनिक भारत का दलित आंदोलन, पृ.108 से उद्धृत।

राजनैतिक दासता नहीं, यह तो केवल मात्र हिन्दू धर्म की देन है। समाज सुधारकों का यह परम कर्तव्य है कि वे इस अस्पृश्यता रूपी राक्षस का हनन कर डालें। यदि अवश्यकता पड़े तो हिंदू धर्म को भी नष्ट कर डालें।"[5] वेद और धर्मशास्त्रों में वर्णित दलित विरोधी आलेखों को उन्होंने पूरे दक्षिण भारत में उजागर किया और सदियों से दासता और अस्पृश्यता से प्रताड़ित लोगों में चेतना का संचार किया। धीरे-धीरे उनका समाज-सुधार आंदोलन दलितों में नई जाग्रति का संदेश बनकर उभरा और उन्हें अंधकार से निकालकर प्रगति और आत्मसम्मान के रास्ते दिखाये। उस सामाजिक परिवेश में सामाजिक-समता और सामाजिक न्याय का जो क्रांतिकारी उद्घोष पेरियार ने किया वह कोई सोच भी नहीं सकता था। यद्यपि उनकी आवाज दक्षिण भारत के दलितों को दृष्टि में रखकर उठी थी, लेकिन ध्वनि पूरे देश में प्रतिध्वनित हुई।

३.१.५ सतनामी आंदोलन

सतनामी आंदोलन दृढ़ जातिगत संगठन की दिशा में एक अनूठा प्रयोग माना जा सकता है। मध्यप्रदेश में सतनामी संप्रदाय पहले एक धार्मिक आंदोलन था बाद में सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन बन गया। यह छत्तीसगढ़ इलाके में बहुत प्रभावी थे। इसमें पूर्वा मध्यप्रदेश का वह भाग आता है जिसमें दुर्ग, रायपुर, बिलासपुर आदि जिले सम्मिलित हैं। मूल रूप से चमार जाति के लोग सतनामी सप्रंदाय में दीक्षित हुए हैं।

छत्तीसगढ़ में यह आंदोलन १८२० और १८३० में फैल। घासीदास इसके जन्मदाता हैं जो जाति के चमार थे। उन्होंने चमर जाति में अपना मत फैलाया कि

---

5 आधुनिक भारत का दलित आंदोलन - आर. चन्द्रा, एवं कन्हैया लाल चंचरीक, पृ.110.

सभी इंसान जाति-पांत के भेद से बराबर हैं। उन्होंने कहा ईश्वर एक है और उनका नाम 'सतनाम' (सत्यनाम) है। उन्होंने अपने अनुयायियों में शराब, तंबाकू, मांस और लाल रंग की सब्जियों के प्रयोग को निषिद्ध ठहराया। वे इस मत के प्रथम अधिष्ठाता (गुरू) बने और कहा कि उनके परिवार के पुरुष सदस्य बाद में इसके गुरु के रूप में संचालन रहेंगे।[6] घासीदास के उपदेश और धार्मिक अनुष्ठान चमार जाति में मामूली स्तर की सीधी-सादी धार्मिक परंपराओं के रूप में प्रचलित हैं। उन्होंने एकेश्वरवाद की कल्पना की और उसी का प्रचार किया। वे हिंदू मूर्ति पूजा के विरोधी थे। इसीलिए उनके अनुयायियों ने उनके द्वारा प्रतिपादित सरल धार्मिक अनुष्ठान परंपरा को अपनाया। मांस और मदिरा-सेवन का त्याग सरल पूजा विधि के अंतर्गत आते हैं। इसके मूल में यह भी भावना थी कि चमार जाति जब इन चीज़ों के खान-पान से परहेज करेंगी तो उनका सामाजिक स्तर ऊँचा होगा। उन्होंने तंबाकू के प्रयोग पर भी रोक लगाई। इससे घासीदास के अनुयायियों का सामाजिक स्तर बढ़ा। यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि यह सतनामी चमार जाति का धार्मिक-सामाजिक आंदोलन जाति को व्यापक दृढ़ता, सामूहिक प्रगति, कुरीतियों पर विजय पाने वाला एक लोक आंदोलन अवश्य है।

---

6 उद्धत- आर. चन्द्रा, एवं कन्हैया लाल चंचरीक- आधुनिक भारत का दलित आंदोलन, पृ.96.

३.१.६ आदि धर्म आंदोलन

१९२६ ई में पंजाब में आदि धर्म आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन में दो अछूत जातियाँ-चमार और चूहड़ा (सकाई कर्मचारी) शमिल थीं जिनकी पंजाब में भारी तादाद थी। इस आंदोलन का दवा था कि वे भारत के आदि या मूल निवासी है और उनकी अपनी धार्मिक मान्यताएँ भी हैं। उनके ऊपर हिन्दू धर्म थोपा गया है। आदि धर्म आंदोलन समान अधिकार प्राप्ति का संघर्ष था। अक्सर आदि हिन्दू समाज के सम्मेलन या बैठक के बाद उसके कार्यकर्त्ता और प्रतिनिधिगण इकट्ठे होकर गाँव या नगर के तालाब पर जाते थे और स्नान करके उच्च हिंदू जातियों द्वारा लगया उस परंपरागत प्रतिबंध को तोड़ते थे कि अछूत वहाँ से पानी नहीं भर सकते।[7] यह अस्पृश्यता के विरुद्ध एक ठासे कदम था। इससे जातीय एकता बढ़ी और अछूत जातियों में परस्पर अलगाव की प्रवृत्ति दूर हुई जिसे सवर्ण हिंदूओं ने उनके ऊपर थोपा था।

इस आंदोलन चलाने वाले नेताओं ने माँग की उन्हें हिन्दू के बजाय आदि धर्मी माना जाए और सार्वजनिक कुओं से पानी भरने दिया जाए। हिन्दू ज़मीदारों की तरह समान भूमि अधिकार दिया जाए। सार्वजनिक-जातीय संपत्तियों का उपयोग करने की छूट हो और उन्हें ऊँची जातियों के अत्याचारों से बचाए जाए साथ ही उनके बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया जाए। इस प्रकार पंजाब का आदि धर्म आंदोलन आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक, धार्मिक अधिकारों के लिए बहु आयामी आंदोलन था।

---

7 शिडयूल्ड कास्ट्स इन इंडिया - यूरलोवा, ई.एस, पृ.71

३.१.७ डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर और दलित आंदोलन

डॉ. अम्बेडकर के पहले भी जाति-व्यवस्था, छुआछूत तथा जातीय भेदभाव को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु दलित आंदोलन को सही दिशा डॉ. अम्बेडकर के द्वारा ही प्रदान की गई थी। सन् १९१९ ई.से लेकर डॉ. अम्बेडकर दलित आंदोलन को एक नई दिशा दी। डॉ. अम्बेडकर के आंदोलन को तीन पडावों में विभाजित किया जा सकता है। पहला है सामाजिक सुधार आंदोलन, दूसरा राजनीतिक आंदोलन और तीसरा धार्मिक आंदोलन।

किसी भी समुदाय में राजनीतिक चेतना से पहले सामाजिक चेतना आती है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक-सुधार कार्यक्रम से अपने आंदोलन की शुरुआत करके पहले दलित वर्ग में सामाजिक चेतना पैदा की और फिर उस सामाजिक चेतना को राजनीतिक में बदलना शुरु किया। अछूतोद्धार आंदोलन के ज़रिए डॉ. अम्बेडकर ने अपनी सामाजिक और राजनैतिक आंदोलन की शुरुआत सन् १९१९ ई. में साउथबरो समिति के सामने दलितों के पक्ष में साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए की थी। इस साक्ष्य में हिन्दू समाज में अछूत वर्ग के शोषण सामाजिक-राजनीतिक उपेक्षा का उल्लेख था। उन्होंने यह तथ्य का भी उत्घाटन किया कि "अछूत के साथ जुडी हुई अस्पृश्यता ही इनके भौतिक एवं नैतिक उत्थान में बाधक होती है इसी अस्पृश्यता ने उनके व्यक्तित्व को नष्ट कर दिया है और सामाजिक, धार्मिक अशक्तताओं ने इसे मानव से गिरा दिया और दास बना दिया है।"[8] दलित दुहरे शोषण के शिकार थे, एक तरफ सवर्ण थे तो दूसरे तरफ अंग्रेज़। इन सब विसंगतियों और दोहरे शोषण के कुचक्र को तोडने के लिए अछूत समाज को अवगत कराने के लिए डॉ. अम्बेडकर

---

[8] सामाजिक क्रांति के दस्तावेज़ - सं. शभूनाथ- डॉ. अम्बेडकर, पृ.885

ने पत्रिकाओं का भी संपादन किया। १९२० ई. में 'मूकनायक', १९२० ई. में 'बहिष्कृत भारत' और १९३० ई. में 'जनता' नामक पत्रिकाओं का संपादन कर दलित आंदोलनों को नई दिशा प्रदान करने और बहिष्कृत समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आवाज़ को ओर मजबूत करने के साथ-साथ हिन्दू धर्म की कमज़ोरियों तथा अस्पृश्यता के व्यवहार ओर जाति-व्यवस्था पर चोट की।

सन् १९२७ से उनके आंदोलन ने जोर पकड़ना शुरु किया। इस वर्ष में कोलाबा जिल के महाड़ के सार्वजनिक तालाब चावदार से पानी के लिए एक सत्याग्रह शुरु हुआ जिसे महाड़ सत्यग्रह परिषद द्वारा आयोजित किया गया था। डॉ. अम्बेडकर ने महाड़ सत्याग्रह आंदोलन से दलित सामाजिक क्रांति की शुरुआत माना। उन्होंने आंदोलन में कहा या-"यदि सवर्ण हिन्दुओं ने यह माना होता कि तालाब से पानी लेना दलित वर्गों का अधिकार है, तो सत्याग्रह की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन दुर्भाग्य से हिन्दुओं ने अपने व्यवहार से यह मानने से इनकार कर दिया कि उस तालाब से पानी लेना दलितों का भी अधिकार है, जो सबके लिए, यहाँ तक कि मुसलमानों और अन्य गैर-हिन्दुओं के लिए भी खुला है।"[9] आंदोलन के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने आगे कहा - "हम इस सत्याग्रह को इसलिए नहीं कर रहे हैं कि हम यह मानते हैं कि इस तालाब के कुछ अलग गुण हैं, बल्कि इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि हमें नागरिक और मानव होने के कारण अपने स्वाभाविक अधिकार चाहिए।"[10] उन्होंने फिर कहा था कि "महाड़ के सवर्ण चावदार तालाब का पानी

---

9 कवंल भारती- डॉ. अम्बेडकर का आंदोलन और समकालीन मीडिया, युद्धरत आम-आदमी, अक्टुबर-दिसंबर-२००१, पृ.33

10 कवंल भारती- डॉ. अम्बेडकर का आंदोलन और समकालीन मीडिया, युद्धरत आम-आदमी, अक्टुबर-दिसंबर- २००१, पृ.33

नहीं पीने देते, तो इस कारण से नहीं कि तालाब का पानी अशुद्ध हो जाएगा या भाप बनकर उड़ जाएगा। बल्कि, वे इस कारण से नहीं पीने देते कि उनके धर्मशास्त्रों ने जिन जातियों को नीच ठहराया है, उन जातियों को अपने तालाब से पानी लेने देने से उनको अपने सामन दर्जा देना होगा, जिसे स्वीकारने की उनकी इच्छा नहीं है।"[11]

बाबा साहेब ने हर बार अपने आंदोलन के पहले आंदोलन का उद्देश्य जनता के बीच रखा था। उन्होंने कहा था-"चावदार तालाब का पानी जब हमने नहीं पिया था, तब भी हमलोग मरे नहीं थे, और पानी पी लेने से अमर नहीं हो जाएँगो। हम यहाँ पानी पीने नहीं आये हैं, बल्कि यह सिद्ध करने आये हैं कि दूसरों की तरह हम भी इंसान हैं।"[12]

इस तरह दलित वर्ग के सामाजिक अधिकारों की यह लड़ाई १९३० ई. में नासिक के कालाराम मंदिर के सत्याग्रह से होते हुए सन् १९३२ के पुना समझौते में राजनीतिक अधिकारों के संघर्ष में बदल गई। राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए उन्होंने १९३६ में 'इंडिपेन्डेंट लेबर पार्टी' के रूप में एक स्वतंत्र राजनीतिक दल की स्थापना करके दलितों, मज़दूरों और किसानों की समस्याओं के राजनीतिक समाधानों के लिए नए आंदोलन की शुरूआत कर दी। उनकी पार्टी ने सन् १९३७ के आम चुनाव में भाग लिया। उनकी नजरों में कांग्रस पार्टी हिंदू पूंजीपतियों द्वारा समर्थित राजनीतिक पार्टी थी जिसका लक्ष्य देश को आज़ाद कराना न होकर अंग्रेजी शासन के नियत्रण से आज़ाद कराना था। इसी दौरान मज़दूरों और किसानों की समस्याओं को लेकर भारत के कम्युनिस्टों और समाजवादियों से गहरे मतभेद हुए

---

11 कवंल भारती- डॉ. अम्बेडकर का आंदोलन और समकालीन मीडिया, युद्धरत आम-आदमी, अक्टुबर-दिसंबर- २००१, पृ.37

12 वहीं, पृ.37

जिसके परिणामस्वरूप सन् १९४२ में उन्होंने 'शैडयूल्ड कास्ट फेडरेशन' बनाई जो सन् १९४६ में 'ऑल इंडिया शैडयूल कास्ट फेडरेशन' में तब्दील होकर दलित वर्ग के व्यापक हितों के लिए राजनीतिक लड़ाई लड़ने लगी।

राजनीतिक आज़ादी के बाद बदलती परिस्थितियों में डॉ. अम्बेडकर महसूस करने लगे कि इससे दलित वर्ग की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में कोई मौलिक बदलाव नहीं आया है। इस बीच उन्होंने यह भी महसूस किया कि इस देश से जातिवाद को खत्म करना इतना आसान नहीं है। जातिवाद के खात्मे के संघर्ष में वे अपनी और अपने समाज की काफी ऊर्जा नष्ट होते देख चुके थे। इसलिए उन्होंने आज़ादी के पहले ही १९२९ की एक सभा में अछूतों के लिए धर्मान्तरण की घोषणा कर दी थी। उन्होंने कहा था-"जिस प्रकार भारत के लिए स्वराज अनिवार्य है, उसी प्रकार अछूतों के लिए अब धर्म-परिवर्तन भी अनिवार्य है। दोनों के पीछे एक ही उद्देश्य है- मुक्ति की कामना।"[13] अंत में सन् १९५६ को एक विशाल जनसभा में लाखों दलितों के साथ बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार उनका दलितोद्धार आंदोलन सामाजिक सुधार आंदोलन से शुरु होकर राजनीतिक आंदोलन से होते हुए धार्मिक आंदोलन में आकार समाप्त हो गए।

३.१.८ दलित पैंथर आंदोलन

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के मरणोपरांत अम्बेडकरवादी आंदोलन का सामर्थ्यपूर्ण नेतृत्व करनेवाला गरम आंदोलन के रूप 'दलित पैंथर' सर्वपरिचित संगठन बना। स्वतंत्र्योत्तर काल में दलितों के प्रश्नों पर लगातर संघर्ष करने वाले

---

[13] धनंजय कीर- डॉ. अम्बेडकरः लाइफ एण्ड मिशन, पृ.274

'दलित पैंथर' का उल्लेख करना जरूरी है। अम्बेडकर के देहांत के बाद दलित आंदोलन कुछ समय के लिए थम-सा गया। लेकिन दलित पैंथर के उदय से दलित आंदोलन फिर से गतिशील हुआ।

१९५६ में दलितों का विराट धर्मांतरण हुआ, जिससे आंदोलन को नया सांस्कृतिक आयाम मिला। लेकिन उसी वर्षा धर्मांतरण के केवल ढाई महीने के बीच ही डॉ.अम्बेडकर का महापरिनिर्वाण हुआ और उनके आंदोलन के नेतृत्व का उत्तरदायित्व रिपब्लिरन पार्टी ने ले लिया। १९५७ में 'शेडयूल्ड कॉस्ट ऑफ इडिया' के स्थान पर 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया' नाम की पार्टी की स्थापना हुई।

दलित पैंथर की स्थापना ९ जुलाई १९७२ में हुई। यानि स्वतंत्रता प्राप्ति के एक चौथाई शतक के बाद तथा डॉ. अम्बेडकर के निधन के १६ साल बाद। इस पूरी कालावधि में एक तरफ दलितों पर अन्याय-अत्याचार हो रहे थे तो दूसरी ओर इन जूल्मों के खिलाफ आवाज़ उठानेवाला कोई प्रभावी संगठन दलितों के पास नहीं था। आज़ादी के पच्चीस साल बाद भी दलितों को डराने वाले प्रश्न का हल नहीं हुए थे। ऐसे में डॉ. अम्बेडकर के विचारों को विरासत कायम करने वाली रिपब्लिकन पार्टी तो केवल सत्ता स्वार्थ, लाचारी, जोड़तोड़ और गटबाजी से भरी हुई थी। अस्पृश्यता की समस्या को हल करने वाला स्वतंत्र संगठन न था। जातिवाद के प्रश्न पर प्रखरता से लड़नेवाला संगठन समय की मांग थी।

दलित पैंथर के उदय के संबंध में कुछ मत इस प्रकार हैं-

"जाति व्यवस्था तथा दलितों पर हो रहे अत्याचार के विरोध में रोष, इन अंतर्विरोधी कारणों से ही पैंथर का जन्म हुआ"[14]- **नागेश चौधरी**

"दलितों पर बढ़ते अत्याचार की वजह से दलित युवाओं में फैला हुआ असंतोष और रिपब्लिकन पार्टी के पुराने नेतृत्व से मोहभग हुआ। इन की वजह से दलित पैंथर की स्थापना हुई"[15] - **नलिनी पंडित**

"सभी रिपब्लिकन गुट 'विद्रोही' अम्बेडकरवाद से ही पीछ हट गए (बेईमानी की), इसलिए दलितों युवकों का पैंथर जैसा विद्रोही संगठन पैदा हुआ"[16]- **शरद पाटील**

"नेता जनता से दूर होती गई और जनता को नए नेतृत्व चाहिए थे। दलित पैंथर के उदय से जनता की यह आशा पूरी हुई"[17] - **रावसाहेब कसबे**

नामदेव ढसाल, न.वि पवार, राजा डाले, रामदास खारेटे, लतीफ खाटिक, अविनाश महानेकर, प्रलाद चेंदवणकर, अर्जुन डांगले, भाई संगारे, अनिल कांबले, अरुण कांबले, रामदास आठवले, गंगाधर गाडे, प्रीतम कुमार रेणाकर, टी. एम. कांबले आदि अग्रणी कार्यकर्ताओं ने दलित पैंथर को बढ़ावा दिया।

दलित पैंथर यानि दलितों पर होनेवाले अन्याय, अत्याचार के विरोध में एक ज्वलंत प्रतिक्रिया ही है। अम्बेडकर के निधन के बाद जर्जर होते हुए दलित समाज को पैंथर एक नई चिंगारी लग रही थी। अपनी मुक्ति आशा नज़र आ रही थी।

---

14 अपेक्षा-जुलाई-सितम्बर, २००४, पृ.58

15 वहीं

16 वहीं

17 वहीं

दलित पैंथर के उदय से दलित युवकों के मन में विषम-व्यवस्था के बारे में पल रहे रोष को व्यक्त करने के लिए जैसे एक मंच मिल गया, और दलित समाज में आंदोलन रूपी चेतना पैदा हुई। अस्पृश्य और अछूत शब्द के बदले 'दलित' शब्द का प्रचार प्रसार दलिता पैथरों ने की। युवा पीढ़ी के सोच को समझने में और उन लोगों में क्रांतिकारी चेतना पैदा करने में दलित पैंथर सफल हुए।

निष्कर्षः दलित साहित्य प्रेरणा और शक्ति का साहित्य है, यह प्रेरणा और शक्ति विभिन्न दलित आंदोलनों द्वारा मिली है। दलित साहित्य दलित आंदोलनों की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इन्हीं आंदोलनों की वजह से दलित साहित्य बहुसंख्या में लिखे गए। इस प्रकार दलित साहित्य में दलित आंदोलनों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। दलित आंदोलन ही दलित साहित्य की ऊर्जा है।

३.२ दलित नाटक और रंगमंच

साहित्य के विभिन्न विधाओं में नाटक अपना एक अलग महत्व रखता है। नाटक की विशेषता यह है कि ये पाठनीय के साथ-साथ इसका दृश्यांकन भी होता है। नाटक साहित्य की वह लोकप्रिय विधा है, जो जितनी प्राचीन है, उतनी ही महत्वपूर्ण भी। आचार्यों ने नाट्यशास्त्र को पंचम वेद कहा है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र को पंचमवेद के रूप में क्यों प्रतिष्ठित किया? क्योंकि निम्न जाति के लोग वेद-पाठ से वंचित थे। इसलिए ऐसा एक वेद की आवश्यकता पड़ी जो सभी वर्णों के लिए प्राप्त हो। पंचमवेद के रूप में नाटक की उत्पत्ति की आवश्यकता के बारे में बताते हुए भरत मुनि कहते हैं-

"न वेद व्यवहारोग्यं संश्राव्यः शुद्रजातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पंञ्चमं सार्ववर्णिकम्।।"

(नाट्यशास्त्र-भरतमुनि १/१२)

अर्थात् शुद्र आदि जातियाँ वेदों का व्यवहार नहीं कर सकतीं, इसलिए शूद्र सहित सभी जातियों के मनोरंजन और ज्ञानवर्द्धन आदि के लिए पंचम वेद नाटक की रचना की गयी है।

३.२.१ नाटकः अर्थ एवं परिभाषा

'नाटक' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर अनेक विद्वानों ने अपनी मान्यताएँ स्थापित की हैं। 'नाट्य-दर्पण' इसकी उत्पत्ति 'नट्' धातु से मानता है किन्तु 'नाट्य-सवस्वदीपिका' में इसकी उत्पत्ति मूलधातु 'नट्' से मानी गई। कुछ लोग 'नट्' धातु को 'नृत' धातु का प्राकृत रूप मानते हैं।[18]

पाणिनी के अनुसार 'नाट्य' की उत्पत्ति 'नट्' धातु से हुई है।[19] रामचन्द्र गुणचन्द्र की मान्यता है कि इस शब्द की उत्पत्ति का आधार 'नाट्' धातु है। बेबर और मोनियर विलियम्स 'नट्' धातु को 'नृत्' धातु का प्राचीन रूप मानते हैं। इसके विपरीत माकण्ड की दृष्टि में 'नट्' की अपेक्षा 'नृत्' धातु अधिक प्राचीन है। इसी को वे नाट्य का प्रारंभिक रूप मानते हैं। वैदिक भाष्यकर्ता सायण ने अपने

---

18 नाट्य समीक्षा - दशरथ ओझा, पृ.73

19 हिन्दी नाट्यशास्त्र का स्वरूप - पाणिनी ४/३/१२९

भाष्य में 'नट्' धातु का अर्थ 'व्याप्नोति' और 'नृत्' का अर्थ 'गात्रविक्षेपण' माना है। इस तरह ऋग्वेद में 'नट्' और 'नृत्' दोनों धातुओं का प्रयोग मिलता है।[20]

निष्कर्षतः 'नट्' और 'नृत्' अलग-अलग अर्थों के लिए रूढ़ हो गई। 'नट्' का प्रयोग अभिनय के संदर्भ में होने लगा और 'नृत्' का गात्राविक्षेपण के। दशरूपककार धनंजय ने इनका स्पष्ट भेद किया है। नृत, नृत्य और नाट्य तीन अर्थों के बोधक हैं। नृत्त, ताल तथा लय पर आश्रित है।[21] और नृत्य भावाश्रित होता है।[22] नाट्य अवस्था की अनुकृति होता है और रसाश्रित है।[23] नृत्य, नाट्य का अंग मात्र है। नाटक नृत्य से अधिक व्यापक अर्थ का बोध कराता है। नाटक में नृत्य के साथ-साथ अभिनय भी रहता है। भारतीय आचार्यों ने नाटक को रूपक माना है और नाटक को दस रूपकों में से एक कहा है। वस्तुतः नाटक में अनुकरण एवं अभिनय की प्रमुखता होती है।

अभिनय की प्रधानता के कारण नाटक को एक विशेष व्यक्तित्व प्राप्त होता है। अंग्रेज़ी में नाटक के लिए 'ड्रामा' शब्द का प्रयोग मिलता है। पाश्चात्य नाट्य अवधारणा में और भारतीय नाट्य अवधारणा में काफी अंतर देख सकते हैं। पाश्चात्य नाटकों में कार्य की प्रमुखता होती है और भारतीय नाटकों में अभिनय एवं रस पर ज़्यादा बल दिया जाता है। नाटक का लक्षण स्पष्ट करने के लिए कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दी गई नाटक की परिभाषाएँ देना और उस पर विचार करना आवश्यक है।

---

20 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक - रामजन्म शर्मा, पृ.1

21 दशरूपक - धनंजय, 1/9

22 वहीं, 1/9

23 वहीं, 1/7

भारतवर्ष के नाट्यशास्त्रों में भरतमुनि का नाट्यशास्त्र सबसे प्राचीन है। उन्होंने लिखा है कि अनेक भावों और अवस्थाओं से युक्त नाटक मुख्यतः लोकवृत्त का अनुकरण ही है।[24] धनंजय ने भी अवस्था के अनुकरण को ही नाटक कहा है।[25] पं. विश्वनाथ ने भी इसी सरणि का अनुगमन किया है।[26] भरत और धनंजय के अनुकूल इनकी भी मान्यता है। भरत, धनंजय, पं.विश्वनाथ सभी ने प्रकारान्तर से अनुकरण की बात ही कही है। भरत ने अनुकरण, धनंजय ने अनुकृति और विश्वनाथ ने आरोप शब्द का प्रयोग समान तथ्य के प्रतिपादन में किया है।

इसके अतिरिक्त दूसरे आचार्यों ने भी नाटक के स्वरूप का विवेचन किया है। महिमभट्ट के अनुसार अनुभाव-विभाव के वर्णन से जब आनन्द को प्राप्ति होती है तब रचना काव्य कहलाती है और गीतादि से रंजित नटों द्वारा उसका प्रयोग दिखलाया जाता है तो नाटक कहलाता है।[27]

भरत के नाट्यशास्त्र के प्रमुख व्याख्याकार अभिनवगुप्त ने उनके मत की व्याख्या करते हुए कहा है कि जो दृश्यकाव्य प्रत्यक्ष कल्पना और अध्यवसाय का विषय बनकर सत्य एवं असत्य से समन्वित विलक्षण रूप धारण करके सर्वसामान्य को आनन्दोपलब्धि कराता है, वह नाटक है।[28]

---

[24] नाना भावोपसंपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लाकवृत्तानुकरण नाट्यमेतन्मया कृतम्।। - भरतः नाट्यशास्त्र, १/१/२- उद्धृत- हिन्दी नाट्यशास्त्र का स्वरूप - डॉ. नर्वदेश्वर राय, पृ.46

[25] अवस्थानुकृतिनर्टिंच १- दशारूपक - धनंजय, पृ.31

[26] दृश्य तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम् १- साहित्य दर्पण - पं. विश्वनाथ, 6/1

[27] अनुभावविभावानां वर्णना काव्यमुच्यते।
तेवामेव प्रयोगस्तु नाट्यं गीतादिरंजितम्।।
हिन्दी नाट्यशास्त्र का स्वरूप - डॉ. नर्वदेश्वर राय- पृ.47

[28] प्रत्यक्षकल्पानुन्यवसायविषयः।

हिन्दी के नाटककारों और आलोचकों ने भी नाटक की परिभाषा दी है। भारतेन्दु ने सर्वप्रथम 'नाटक' नामक निबन्ध में लिखा- "नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या से अपने या किसी वस्तु के स्वरूप के हेरफेर कर देने वाले को, या स्वयं दृष्टि-रोचन के फिरन को। नाटक में पात्रगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादि का स्वरूप धारण करते हैं या वेषविन्यास के रंगभूमि में स्वीकार्य साधन हेतु फिरते हैं।"[29]

प्रख्यात नाटककार उदयशंकर भट्ट कहते हैं- "हृदय की वर्गीभूत चेतनाओं का, मानवीय रागद्वेषों के द्वन्द्वों का, आशा और निराशा का, भावुकता और क्रूरता का, सुख का प्रति चित्रण और ऐसे विचारों की अवधारणा जिस कला के द्वारा हो, कदाचित् उसे नाट्यकला के नाम से पुकारा जाता है।"[30] भट्ट जी नाटक में मनुष्य की अनुभूतियों की प्रमुखता को अनिवार्य मानते हैं। विष्णु प्रभाकर के अनुसार- "नाटक है भी क्या? मानव के बाह्य तथा आंतरिक संघर्ष की कहानी है, जो मंच पर से प्रस्तुत की जाती है।"[31] नाटक में अन्तर्बाह्य यह पाठ्य और श्रव्य नहीं, दृश्य होता है। रंगमंच से पृथक् नाटक की कल्पना संभव नहीं है। मंच से जुड़कर ही नाटक अपनी सार्थकता प्रतिपादित कर सकता है। डॉ. साभनाथ गुप्त कहते हैं कि,

---

लोकप्रसिद्ध सत्यासत्यादिविलक्षणत्वात् यच्छन्द वाच्चयः।
लोकस्य सर्वस्य साधारणतय स्वत्वेन भाष्यमानश्चभव्यमाणाग्र्थो नाट्यम्।
मधसूदनशास्त्री संपादित नाट्यशास्त्र, प्रथम भाग - पृ.143

29 भारतेन्दु- नाटकावली, भाग २, पृ.421

30 दाहर और सिंधपतन - उदयशंकर भट्ट, भूमिका, पृ. च 1

31 नीली झलि-रंगपरिचय - विष्णु प्रभाकर, पृ.11

"नाटक कथावस्तु के द्वारा व्यक्तिगत अथवा सामूहिक जीवन की अभिनयपूर्ण व्याख्या है।"[32]

प्रख्यात नाट्यशास्त्री और नाटककार पं. सीताराम चतुर्वेदी ने नाटक की परिभाषा देते हुए लिखा है-"किसी प्रसिद्ध या कल्पित कथा के आधार पर नाट्यकार द्वारा रचित रचना के अनुसार नाट्य-प्रयोक्ता द्वारा सिखाये हुए नट जब रंगपीठ पर अभिनय तथा संगीतादि के द्वारा रस उत्पन्न करके प्रेक्षकों का विनोद करते है तथा उन्हें उपदेश और मनःशान्ति प्रदान करते हैं तब उस प्रयोग को नाटक या रूपक कहते हैं।"[33]

संक्षेप में नाटक मानव-जीवन की सजीव प्रतिलिपि है। जीवन के यथार्थ का आँखों के माध्यम से प्रत्यक्ष अनुभव, नाटक ही कराता है। इसलिए वह अन्य विधाओं की तुलना में अधिक प्रभावकारी है। नाटक में हमारी सुरुचि-कुरुचि, उत्थान-पतन, सफलता-विफलता सब कुछ प्रतिबिम्बित होती है। उसमें मानवता, मानव मूल्यों, अनुभूतियों, समस्याओं आदि पर यथासंभव प्रकाश डाला जाता है। नाटकों में पुराने ज़माने से लेकर आज तक युगीन समस्याओं का चित्रण करते हुए उनका समाधान देने का भी प्रयास किया जाता है। मानव जीवन की सजीव, मूर्त एवं प्रत्यक्ष झांकी जिस प्रकार नाटकों में दिखाया जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं। नाटक में जीवन की विभिन्न अवस्थाओं को नाटककार अभिनेताओं के माध्यम से रंगमंच पर प्रस्तुत करता है। इसलिए, 'नाना भावोपसम्पत्रम्' 'नानावस्थान्तरात्मकम्' आदि कहा गया है। स्पष्ट है कि नाटक जीवन की अभिनयात्मक प्रस्तुति है।

---

[32] हिन्दी नाटक सिद्धान्त और समीक्षा - रामगोपाल सिंह चौहान, पृ.119

[33] अभिनव नाट्यशास्त्र - पं. सीताराम चतुर्वेदी, पृ.73

३.२.२ रंगमंच की अवधारणा

'रंगमंच' एक व्यापक शब्द है। इससे न केवल नाट्यमण्डप का बोध होता है, अपितु इसमें पाण्डुलिपि, रंगलिपि, अभिनेता, दर्शक, रंगशिल्प के तत्व अर्थात् दृश्यबंध, रंगसज्जा, रंगदीपन, ध्वनि-प्रभाव, पार्श्व-पृष्ठ-संगीत आदि सब समाहित रहते हैं। अंग्रेजी थियेटर शब्द के समानार्थों रूप में रंगमंच का प्रयोग है।

नाट्यशास्त्र में भी नाट्यमण्डप को संपूर्ण नाट्य का केवल एक अंक माना गया है-"इहादिनाट्ययोगस्य नाट्यमण्डप एक हि।"[34] तात्पर्य यह कि नाट्य की योजना में पहले नाट्यमण्डप का निर्माण कर लेना चाहिए, क्योंकि प्रभावपूर्ण अभिनय के लिए सुव्यवस्थित स्थल अपेक्षित हो जाता है। इस प्रकार, नाट्य शब्द की व्याप्ति रंगमंच में सन्निहित है। पश्चिम का थियटर शब्द भी इसी अर्थ का अभिव्यंजक है, जो एडवर्ड गार्डन क्रैग के इस मत से स्पष्ट हो जाता है- "The art of theatre is neither acting nor the play, it is nor scene nor dance, but it consists of all the elements of which these things are composed."[35]

'रंगमंच' शब्द 'रंग' और 'मंच' के योग से बना है। 'रंग' का अर्थ 'मण्डप' या 'नाट्यमण्डप' है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने 'रंग' शब्द का प्रयोग 'नाट्यमंडप' अर्थ में किया है।'[36] 'मंच' का अर्थ वह 'मण्डप' या 'कार्य स्थल' जहाँ कोई प्रयोग अर्थात् नाट्याभिनय किया जाए। इस दृष्टि से रंग और मंच दोनों का अर्थ एक ही है।

---

34 नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, द्वितीय अध्याय, श्लोक 3

35 On the Art of Theatre - Adward Gurgden Crong, p.138

36 हिन्दी नाट्य दर्पण - डॉ. नगेन्द्र, पृ.364

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र एवं अन्य नाट्य विषयक लक्षण ग्रन्थों में रंगशीर्ष, रंगपीठ आदि प्रयोग मिलते हैं, रंगमंच दोनों शब्दों का संयुक्त पर्याय प्रतीत होता है।

भारतीय नाट्य परंपरा के अनुसार रंगभूमि का अपना अलग अस्तित्व है। श्री लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार, "भूमि ही समस्त, प्रजानन, सृजन की अधिष्ठात्री है। हमारी संस्कृति में भूमि पूरे विराट नाटक, पूरी वसुधा का आधार है। संभवतः इसीलिए भूमि को हमारे यहाँ 'माँ' कहा गया है और इसकी पूजा का विधान है। चाहे कोई भी उत्सव हो, धार्मिक अनुष्ठान हो, ऐसा उद्घोष अवश्य किया जाता है कि 'भूमि' मेरी माता है, मैं भूमि का पुत्र हूँ। इस तरह हमारी सांस्कृतिक चेतना का मूल तत्व है। यह समाज की विधायिका शक्ति है, इसी भूमि तत्व से ही अर्थवत्ता है, इसका प्रमाण हमारी संपूर्ण लोक-चेतना और रंगदृष्टि में व्याप्त है।"[37]

कालान्तर में रंगपीठ, रंगशीर्ष आदि शब्दों से रंगभूमि पूर्ण व्यंजना स्पष्ट ना हो पाने के कारण एक ऐसी शब्द की आवश्यकता का अनुभव हुआ, जिससे रंग-कार्य के समस्त स्थल को ग्रहण किया जा सके। बंगला में रंगभूमि के लिए 'नाट्यमंच' या 'रंगमंच' आदि शब्दों का प्रयोग किया गया और धीरे-थीरे रंगमंच शब्द हिन्दी आदि अन्य भाषाओं में भी व्यापक हो गया।

असल में यह रंगमंच क्या है? क्योंकि कुछ लोगों ने रंगशीर्ष एवं रंगपीठ का संयुक्त पर्याय को रंगमंच माना है तो कुछ लोगों ने रंगमंडप को रंगमंच माना है। रंगमंडप अर्थात् वह स्थल जहाँ रंगकार्य या नाट्याभिनय हो। रंगमण्डप के अंतर्गत रंगशीर्ष, रंगपीठ और नेपथ्य आ जाते हैं। रंगमण्डप को ही रंगमंच मानने में

---

[37] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल- रंगभूमि, सनातन दृष्टि-छायानट, अंक 40

औचित्य नहीं क्योंकि किसी भी प्रकार के प्रदर्शन तो सामाजिकों केलिए या प्रेक्षकों के लिए ही किया जाता है अतः प्रेक्षागृह को (जहाँ प्रेक्षक बैठता है) रंगमंच से अलग नहीं किया जा सकता। अब रंगमंच का मतलब रंगमण्डप और प्रेक्षागृह के मिला रूप नाट्यमण्डप या रंगशाला के रूप में हो गया, क्योंकि बिना रंगशाला (भले ही रंगशाला खुला हो या मण्डपयुक्त) के अभिनय का कार्य मन्तव्य अधूरा ही रहेगा।

तो क्या रंगमंच केवल बल्ली, कनात और शमियाने अथवा ईट-चुने से बनी नाट्यमण्डप या रंगशाला मात्र है? इस दृष्टि से देखा जाए तो रंगमंच कुछ व्यापक हो जायेंगे। रंगमंच से तात्पर्य नाट्यपाठ से लेकर दर्शकों तक की सारी प्रक्रियाओं से हैं। अर्थात् रंगमंच के अंतर्गत नाट्यपाठ, प्रस्तुति, उपस्थापन, रंग शिल्प, रंग भवन, रंगशाला, नाट्यालोचन, प्रेक्षक और इन सबका शास्त्र भी समाहित हैं। रंगमंच, नाटक, अभिनय आदि सभी का अन्योन्याश्रित संबंध है। एक बिना दूसरे की कोई सार्थकता नहीं। शायद इसी कारण से ही डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने "नाटक को ही अपने मूर्त और व्यापक अर्थ में रंगमंच माना है।"[38] डॉ. अज्ञात के अनुसार, "नाट्य मण्डप रंगमंच का स्थूल शरीर, नाटक उसका सूक्ष्म शरीर और अभिनयादि उसकी आत्मा या प्राण है।"[39]

रंगमंच अपने सीमित अर्थ में वह स्थल समझा जाता है, जहाँ नाट्याभिनय होता है (स्टेज) और व्यापक अर्थ में नाट्य-पाठ, प्रस्तुति, अभिनय, पात्र, ध्वनि-संकेत, रंगदीपन, रंग भवन, प्रेक्षक, नाट्यालोचन और इसका शास्त्र भी समाहित हो जाते हैं। अंग्रेज़ी में थियटर शब्द का प्रयोग बहुत व्यापक एवं विस्तृत है, समस्त लोक

---

[38] रंगमंच और नाटक की भूमिका - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.15

[39] भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास - डॉ. अज्ञात, पृ.28

को ही थियेटर माना है। अंग्रेज़ी में थियटर शब्द की व्यापकता हिन्दी में रंगमंच शब्द को भी है। इसी कारण से ही ब.व.कारन्त ने बताया है कि "रंगमंच एक तरह से समस्त कलाओं का समीकरण है। रंगमंच एक ऐसी विधा है, ऐसी कला है, ऐसा माध्यम है, जिसमें संसार की कोई भी विधा उच्छिष्ट नहीं। अलग नहीं कर सकते, अलग रखा नहीं जा सकता। संसार की समस्त विधाएँ इसके समीकृत है। अतः अपरिभाषित होना ही शायद रंगमंच की परिभाषा है।"[40]

अतः हम कह सकते हैं व्यापक अर्थ में रंगमंच एक प्रक्रिया है जिसमें नाट्यपाठ से लेकर प्रस्तुतीकरण तक के समस्त कार्य-कलाप समाहित है। सीमित अर्थ में वह रंगस्थल जहाँ पर अभिनेता है।

३.२.३ दलित नाटक: अर्थ एवं संदर्भ

दलित नाटक या रंगमंच क्या है? क्या ऐसा कोई रंगमंच है? दलित नाटक या रंगमंच की अवधारणा क्या है? रंगमंच तो सब के लिए हैं फिर ये दलित नाटक या रंगमंच की क्या ज़रूरत है? आदि सवाल आज भी सक्रिय है। हमें मालूम होना चाहिए कि जब दलित साहित्य सामने आया तब उसका विरोध किया गया था और इसी तरह का सवाल सामने आया था। लेकिन अब दलित साहित्य ने भारतीय तथा विश्व साहित्य में अपना एक अलग स्थान बना लिया है। इसके पीछे सक्रिय एवं सशक्त सामाजिक एवं दार्शनिक संदर्भ भी है। इसी तरह नाटक या रंगमंच का भी विकास हो रहा है। पहले भी नाटकों में दलित समस्या को उजागर करने की कोशिश तो किया गया लेकिन दलितों की समस्या को ठीक तरह से प्रस्तुत करने में असफल रहें क्योंकि लिखने का आधार सहानुभूति था। जिस तरह दलित साहित्य

---

[40] नटरंग, खण्ड-१४, अंक-५३- जनवरी-जून, १९९०, पृ.23

का उद्‌भव हुआ उसी तरह ही दलित नाटक का उद्‌भव और विकास हो रहा है। दलित नाटक की वास्तविक चिंता अपने समाज को पराधीनता की उन परंपराओं से मुक्ति दिलाने की है जिसने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्यधारा से अस्पृश्य और कमज़ोर बनाये रखा है।

हम जानते हैं कि साहित्य दो प्रकार के हैं। पहला मौखिक और दूसरा लिखित। इन दोनों में दलितों का स्वर देखा जा सकता है। मौखिक साहित्य में लोक साहित्य तथा लोकनाट्य में दलितों की समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई हैं। सभी प्रादेशिक लोकनाट्य रूपों में यह ढूँढ़ा जा सकता है। लिखित रूप में भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में ब्रह्मा के विरुद्ध विरूपाक्ष का स्वर, दलितों के सबसे पहला विरोधी स्वर है-

> "योग्य भगवता सृष्टो नाट्यवेदः सुरच्छया।
> प्रत्योदेशो यमस्मांक सुरर्थ भवता कृतः।।
> तन्नैतदेवं कर्व्यंग्त्वया लो वितामह?
> तथा देवास्थ दत्यास्त्वत्तः सर्वे विनिर्गताः।।"[41]

अपने देवताओं की इच्छा के अनुसार जो यह नाट्यवेद बनाया है वह अपने देवताओं के लिए हम लोगों का प्रत्याख्यान किया है। यह आप को नहीं करना चाहिए क्योंकि आप हमारे स्रष्टा हैं। आप ही ने तो सुर और असुरों को बनाया फिर यह कैसा भेद-भाव है? ब्रह्मा के भेदभाव पूर्ण कृत्य की प्रतिक्रिया के रूप में प्रस्तुत विरूपाक्ष का यह शब्द दलित नाटकों के संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

---

41 नाट्यशास्त्र - भरतमुनि (सं) मधुसूदन शास्त्री, पृ.102

आधुनिक काल तक मुख्यधारा में दलित समस्या को लेकर रंगमंच पर पूर्ण रूप से नाट्य प्रस्तुति नहीं हुआ है। क्योंकि हज़ारों वर्षों से अछूत कहनेवाले दलितों को मुख्यधारा में अभिव्यक्ति की अनुमति नहीं दी जाती थी। इसलिए किसी प्रादेशिक भाषा साहित्य के इतिहास में एक भी दलित नाटक मिलना संभव नहीं है। यही कारण है कि दलित वर्ग अपने ढंग में अपनी अभिव्यक्त करते रहे। प्रादेशिक भाषा साहित्य में मौखिक परंपराओं में विशेषकर परंपरागत गीत और नृत्त-नृत्य में ये अभिव्यक्ति देखा जा सकता है। इन गीतों, नृत्त-नृत्य के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है। दलितों की समस्या वे अपने अपने ढंग से अपने अपने शैली में मंच पर प्रस्तुत करते थे। वे मंच मुक्तकाशी था वे अपने शरीर की भाषा का प्रयोग करते थे। कुलमिलकर वे अपने ही दर्द और पीड़ा को प्रस्तुत करते थे, कभी विद्रोह के स्वर कभी आत्माभिव्यक्ति और कभी मनोरंजन के लिए। "लोक कलाओं में विशेषकर नृत्य में आदिम मनुष्य के समग्र एवं समन्वयात्मक दृष्टि की अभिव्यक्ति ही देखते हैं। आधुनिक संदर्भ में इसका अत्यन्त महत्व है। मृगया के बाद एक साथ बैठकर भोजन करने के रीति में पेट के साथ मन भी भर जाने की प्रवृत्ति है। यह आह्लादपरक है, संवादात्मक है।"[42] इस तरह के संवादात्मक व्यवहार गीत, नृत्त-नृत्य का आधार शिला है। परंपरागत दलित गीत में दलितों की कल्पना शक्ति का अपूर्व दृश्य देख सकते हैं जैसे-

"आसमान पे तीर चलाने से
आसमान क्या बिधेगा फिर यह कैसी,
छुआछूत अभिजातों की यह छुआछूत।
बारो से नामक क्या उगेगा, बाड़े में फेलगा
फिर यह कैसी छुआछूत अभिजातों की यह छुआछूत।"[43]

---

42 लोकनाट्य एवं संस्कृति, प्रो.ए. अच्युतन, पृ.47

43 वहीं, पृ.49

आधुनिक काल में सबसे पहले दलित साहित्य लेखन की शुरुआत कविता, कहानी, उपन्यास और आत्मकथा के माध्यम से महाराष्ट्र में हुई। इसका सबसे मुख्य कारण तो यही दीख पड़ता है कि महाराष्ट्र जैसे प्रान्त की सामाजिक व्यवस्था में इस तरह की रचनाओं के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि मौजूद थी। भारत का शायद ही दूसरा कोई ऐसा राज्य होगा जहाँ अछूतों और दलितों के साथ इतना अमानुषिक स्तर पर सामाजिक तिरस्कार, दुर्व्यवहार और बहिष्कार किया गया हो। साथ ही ज्योतिबा फुले और डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर की कर्मभूमि महाराष्ट्र रही है। यही कारण है कि दलित साहित्य की अन्य विधाओं की तरह दलित नाटक भी महाराष्ट्र के रास्ते से ही पूरे भारतीय साहित्य में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाया है और इसमें मराठी के नाट्य साहित्य का योगदान रही है। मराठी रंगमंच में 'दलित रंगमंच आंदोलन' का आर्विभाव १९५५ के आसपास हुआ। एम.बी. चिटणीस कृत 'युग यात्रा' सर्वप्रथम मंचीय दलित नाटक रहा। हिन्दी दलित नाटक पर इसीलिए मराठी दलित रंगमंच का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

३.२.४ मराठी दलित नाटक एवं रंग मंच

मराठी में दलित साहित्य वहाँ के मुख्यधारा साहित्य से भी आगे निकल चुकि है। मराठी में साहित्य की सभी विधाओं में दलित साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। मराठी दलित नाटक का इतिहास देखने के बाद स्पष्ट होता है कि महात्मा फुले का 'तृतीय रत्न' (१८५५) नाटक मराठी दलित साहित्य का पहला नाटक है। इस नाटक में अशिक्षित गरीब किसान और उनकी पत्नी को फांसकर धोखे से उनका धन लूट लेते हैं। ऐसे पूंजीपति सामंतवादी प्रवृत्ति का पर्दाफाश किया है। 'तृतीय रत्न' नाटक सामाजिक परंपरा का पहला मराठी नाटक है। अर्थात् मराठी दलित नाटक

के जनक महात्मा फुले हैं। मराठी दलित रंगमंच एवं नाटक की नींव सत्यशोधक जलसे और अम्बेडकर जलसे है। क्रांति की नई दिशा इन जलसों से मिली। महात्मा फुले के सत्यशोधक जलसों को समाज तक पहुँचने का महान कार्य रामचन्द्रबाबा घाडगे ने किया। सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा का महत्व इन जलसों के माध्यम से किया। साथ ही अम्बेडकरी जलसों से दलितों में जाग्रति और अस्मिता निर्माण हुई। जलसे को प्रारंभ में सत्यशोध की तमाशे के नाम से ही जाना जाता था। यही तमाशा मराठी दलित रंगमंच कहलाता है। यहाँ प्रसिद्ध मराठी लोकनाट्य कलाकार बिठाबाई नारायणगाँवकर मत उल्लेखनीय है- "यह तमाशा में होनेवाला लोकनाट्य ही मराठी माटी से रिश्ता रखनेवाला गरीब दुर्बलों का नाटक है और वही दलित नाटक है।"[44]

मराठी दलित नाट्य जगत में किसान फागु वनसोडे का नाम उल्लेखनीय है। इनके 'संत चोखामेला' के जीवन पर आधारित नाटक का लेखन काल सन् १९२४ के आसपास माना जाता है। यह नाटक उस समय अनेक बार मंचित हुआ था। १९६० तक आते आते मराठी दलित नाटक एवं रंगमंच ने अपना गति हासिल कि। १९५४ में बाबुराव खोत का 'गरिबाचा बापू' नाटक रंगमंच पर प्रदर्शित हुआ तो भि.शि. शिंदे ने 'चद्रंहार'[45] नाटक के ज़रिए दलित रंगमंच पर अपना उपस्थिति दर्ज की। महाराष्ट्र के अन्य नाट्यकारों में देखा जाए तो लोक-नाट्य के माध्यम से जनजागृति करनेवाले अण्णाभाऊ साठे का जुझारू व्यक्तित्व तुफान की तरह प्रकट हुआ था। 'अकलेची गोस्ट', 'माझी मुंबर', 'लोक मंत्रयाचा दौरा' आदि लोक-

---

[44] दलित साहित्यः प्रकृति और संदर्भ - सं. संजय नवले एवं गिरिश काशिद, पृ.136

[45] दलित साहित्य आंदोलन - डॉ. चन्द्र कुमार वरठे, पृ.131

नाट्यों के माध्यम से दलितों पर होनावाला अत्याचार और उससे मुक्ति के पथ को प्रदर्शित करने में अण्णाभाऊ साठे अग्रणी थे। १९५४ को उनका 'इनामदार' नाटक आ गया तो १९५५ में नामदेव वहटकर का 'वाट चुकली'। इन नाटकों ने मराठी रंगमंच पर धूम मचा दी।[46] 'वाट चुकली' नाटक हिन्दी में अनूदित होकर रंगमंच पर सफल नाटक सिद्ध हुआ। प्राचार्य म. भि. चिठणीस द्वारा लिखित 'युगयात्रा' (सृजनकाल १९५४) नाटक का मराठी दलित नाट्य के विकास में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। पीपुल्स एज्यूकेशन सोसायटी के संस्थापक एवं अध्यक्ष डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर के जन्मदिवस (१४ अप्रेल) के अवसर पर 'संस्थापक दिन' के उपलक्ष में 'युगयात्रा' का पहला मंचन किया गया। २० नवम्बर, १९५५ में बोधि मंडल के तत्वावधान में दूसरी बार यह नाटक खेला गया। तीसरी बार १४ अक्सूबर १९५६ में 'दीक्षाभूमि' नागपूर में धर्मान्तर के ऐतिहासिक पर्व पर भी इसे खेला गया। 'युगयात्रा' के दूसरे और तीसरे मंचन के अवसर पर स्वयं डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर उपस्थित थे। अतः डॉ. अम्बेडकर की उपस्थिति इस नाटक के लिए बडी उपलब्धि थी। लाखों लागों के समुख इस नाटक को प्रस्तुत किये गये। कुछ समीक्षकों ने 'युग यात्रा' को आधुनिक संदर्भ में पहला दलित नाटक [47] माना है। अपने जन्म से ही रंगमंच के साथ सीधे जुड़ने का श्रेय दलित नाटक को जाता है।

दलित साहित्य की तरह दलित रंगमंच का आंदोलन औरंगाबाद (महाराष्ट्र) के 'नागसेन-वन' में स्थित 'मिलिंद महाविद्यालय' से ही शुरू होता है। नागसेनवन में

---

46 मराठी दलित थियेटर में महिलाओं की भागादारी, अपेक्षा, लेख. प्रो. जयश्री शिंदे- जुलाई-दिसंबर, २०१२, पृ.112

47 दलित रंगमंच - सं. कमलाकर गंगावणे एवं त्र्यंबक महाजन, पृ.17

मिलिंद महाविद्यालय से शिक्षित नयी युवा पीढ़ी साहित्य की भिन्न-भिन्न विधाओं के द्वारा अपने-आपको अभिव्यक्त करने लगी, उसी का एक आविष्कार 'दलित थिएटर' के रूप में सामने आता है। प्रो. एम. के. गायकवाड़, प्रो. अविनाश डोलस, प्रो. विजयकुमार गवई, प्रो. त्रयंबक महाजन, प्रो. तुषार मेरे, प्रो. ल.बा. रायमाने, प्रो. मनोहर, डॉ. एस.ब्ही पंडित, श्री प्रकाश त्रिभुवन, श्री मधु काले ने इकट्ठे होकर 'दलित थिएटर' को जन्म दिया तथा इस आंदोलन को एक निश्चित दिशा देने का ऐतिहासिक कार्य किया है।[48]

१९५५ से लेकर अब तक बहुत से नाटक हमारे सामने आया, कहने का मतलब यह है कि आज मराठी दलित नाटक ने अपनी स्वतंत्र पहचान बना लिया है। इसका परिणाम है कि आज नाट्य सम्मेलन हो रहे है। महाराष्ट्र के अलावा भारत के अन्य प्रांतों में भी इस तरह के नाट्य संस्थाएँ काम कर रही है। इस तरह दलित नाटक का विकास बड़ी तेज़ी से हो रहा है। आज का मराठी रंगभूमि लोकनाट्य परंपरा का विकसित रूप है। मराठी दलित रंगमंच का सशक्त प्रभाव अन्य प्रांतीय भारतीय भाषाओं के दलित नाटक और रंगमंच पर पड़ना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अतः हिन्दी के दलित नाटक और रंगमंच पर भी इस का प्रभाव पड़ा है। हिन्दी दलित नाटक और रंगमंच का विशद अध्ययन आगे के अध्याय में किया जाएगा।

३.३ निष्कर्ष

अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि दलित नाटकों के विवेचन एवं विश्लेषण के लिए अलग से अर्थ एवं संदर्भ ढूँढ़ना ही पड़ेगा। दलित साहित्य की तरह दलित नाटक भी दलित आंदोलन का ही उपज है। दलित साहित्य प्रेरणा और शक्ति का

---

[48] अखिल भारतीय दलित नाट्य सम्मेलन, दूसरा अधिवेशन. अहमदनगर, अध्यक्षीय भाषण, मधुसूदन गायकवाड, पृ.4

साहित्य है, यह प्रेरणा और शक्ति विभिन्न दलित आंदोलनों द्वारा मिली है। इन्हीं आंदोलनों की वजह से दलित साहित्य बहुसंख्या में लिखे गए। इस प्रकार दलित साहित्य में दलित आंदोलनों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। दलित आंदोलन ही दलित साहित्य की ऊर्जा है। इसलिए इस अध्याय के पहले भाग में दलित आंदोलनों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। दलित नाटक की वास्तविक चिंता अपने समाज को पराधीनता से मुक्ति दिलाने की है। दलित नाटक का आधार वेदना, विद्रोह और नकार है, यह विद्रोह और नकार उस सामाजिक संरचना से है जो अस्पृश्यता को जन्म दिया है। दलित नाटकों की परंपरा बहुत प्राचीन है, प्रदेश विशेष के मौखिक गीत साहित्य में तथा लोकनाट्य रूपों में इसका स्वरूप ढूँढ़ा जा सकता है।

नाटक सशक्त माध्यम है। भारतीय और पाश्चात्य नाट्य अवधारणा में काफी अंतर है। भारतीय अवधारणा में भारत ने अनुकरण, धनंजय ने अनुकृति और विश्वनाथ ने आरोप शब्द का प्रयोग समान तथ्य के प्रतिपादन में किया है। हिन्दी के विद्वानों ने भी 'नट' लोगों की क्रिया को नाटक कहा है। इस प्रकार रंगमंच के बारे में भी देश-विदेश के विद्वानों ने अपना-अपना मत प्रकट किया है। रंगमंच अपने सीमित अर्थ में वह स्थल समझा जाता है, जहाँ नाट्याभिनय होता है (स्टेज) और व्यापक अर्थ में नाट्य-पाठ, प्रस्तुति. अभिनय, पात्र, ध्वनि-संकेत, रंगदीपन, रंग भवन, प्रेक्षक, नाट्यालोचन और इसका शास्त्र भी समाहित हो जाते हैं (थियेटर)।

दलित नाटक के साथ एक सशक्त सामाजिक एवं दार्शनिक संदर्भ जुड़ा हुआ है। यह संदर्भ दोनों मौखिक और लिखित परंपराओं में देख सकते हैं। आधुनिक काल में दलित आंदोलन के साथ-साथ दलित नाटक और रंगमंच भी सक्रिय रहा है।

विशेषकर महाराष्ट्र में, महात्मा ज्योतिबा फुले और डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारधारा से प्रेरित होकर बहुत से दलित नाटककार और रंगकर्मी सामने आये हैं। इसके फलस्वरूप हिन्दी दलित नाटक एवं रंगमंच पर मराठी दलित रंगमंच का प्रभाव भी पड़ा है। दलित नाटक अपने आप में एक प्रयोग है, समता लाने का प्रयोग। अतः मुख्यधारा नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में भी दलित नाटकों की ज़ोरदार चर्चा जारी है।

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

चौथा अध्याय

हिन्दी में दलित नाटक : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

४. हिन्दी में दलित नाटक : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

हिन्दी दलित साहित्य की सबसे उपेक्षित विधा, नाटक का अध्ययन जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही कठिन भी। हिन्दी में अनेक दलित नाटक लिखे गये और रंगमंच पर उन नाटकों का प्रस्तुतीकरण भी हो चुका है। लेकिन उन नाटकों से संबन्धित प्रामाणिक सामग्री के अभाव है। यह तो सत्य है कि अनेक जीवंत समस्याओं को लेकर अपने-अपने संगठन के द्वारा दलित रंग कर्मी आज भी सक्रिय है। उपर्युक्त स्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में चुने हुए नाटककारों के प्रतिनिधि नाटकों के अध्ययन का प्रयास है। इस से पूर्व हिन्दी दलित नाट्य जगत पर एक दृष्टि डालना बहुत जरूरी लगता है।

४.१ दलित नाटक और परंपरा

भारत की देशी रंग परपंरा का अपना महत्व है। इस लोकधर्मी नाट्य परंपरा के बारे में कोई भी ग्रंथकार विस्तार से जानकारी नहीं देता। नाट्यशास्त्र भी परंपरा की तो जनकारी देता है लेकिन लोकधर्मो नाट्य परंपराएँ किस समाज में प्रचलित थी, उसके प्रयोक्ता और कलाकार, किस तरह के समुदाय से थे, इसके बारे में वह मौन रह जाता है। जो भी हो बहुत पुराने समये से लेकर अब तक अनेक लोकनाट्य रूप और प्रयोक्ताओं को देखने को मिलता है। चाहे वो नौटंकी हो, तमाशा हो, जात्रा हो, कूत्तु, तैय्यम् आदि हो या फिर चाहे वो देशज समुदायों के स्वामी अछूतानंद हरिहर, महात्मा ज्योतिबा फुले, भिखारी ठाकुर जैसे जन-सामान्य में स्वीकृत प्रयोक्ताओं का नाट्य कर्म ही क्यों न हो। रामचरण निर्मलकर (नाचा), शांतगोपाल पाल (जात्रा), श्री कृष्ण पहलवान (नौंटकी), राम ओ गया राम (नाचा,

तमाशा), तेजन भाई (पडुवानी), गुलाभ भाई (नौंटकी मालकिन) जैसे कलाकारों ने भारत की देशी नाट्य परंपरा को अपना-अपना योगदान दे रहे है। आदिम समुदायों के मौखिक परंपराओं में मौजूद गेवटे माला के माया आदिवासीयों की 'राविनल आची' (पहाडों का योद्धा) झारखण्ड के मुंडा आदिवासी समुदाय की 'सोसोबेंगा' जैसे सुदीर्घ नाट्य परंपरा के साथ भारत में जन सामान्य में व्याप्त लोकनाट्यों की अति विशिष्ट परंपरा विद्यमान है। भारतीय संदर्भ में इसके प्रयोक्ता तथा वाहक असुर, शुद्र तथा अनार्या जातियाँ जैसे नट्, डोम, भाण्ड, परय, पुलय आदि है। कोई संदेह नहीं कि दलित आदिवासी के देशज रंगमंच का इतिहास भारत के नाट्यशास्त्र से भी बहुत पुराना है। इस परंपरा का विशद अध्ययन अपेक्षित है। आगे हम हिन्दी की दलित नाटक आर रंगमंच पर चर्चा करेंगे।

४.२ हिन्दी में दलित नाटक और रंग मंच : एक पड़ताल

भारत में और विशेष रूप में हिन्दी क्षेत्रों में पारसी तथा शौकिया रंगमंचों और इनसे संबंध नाट्य-लेखन का लंबा इतिहास रहा है। रंग मण्डल के अलग-अलग रंग थे, उनमें वीर रस, श्रृंगार रस तथा हास्या रसों की प्रधानता थी। लेकिन कुछ नाट्य परिषदों तथा संस्थाओं के द्वारा पारसी कंपनियों के बाज़ारूपन के खिलाफ सुरुचि की रक्षा और प्रतिष्ठा केलिए कोशिशें जारी रहीं, पर तत्कालीन समय में औसत नाटकों के स्वभाव का अगर गहराई से अध्ययन किया जाए तो उनका उद्देश्य या तो हंसना-हंसाना या फिर अश्लील संवादों के माध्यम से अभिजात वर्ग का मनोरंजन करना था। इसके अलावा कुछ नाटकों पर धर्म, संस्कृति, इतिहास के साथ देश-प्रेम का दबाव भी देखा जा सकता है।

पुराने ज़माने में एक विशेष बात यह थी कि मंचीय प्रस्तुति, नवाबों, राजा-महाराजों, ज़मींदारों तथा रईसों के लिए हुआ करती थी। काशी नरेश के अतिरिक्त अन्य राजाओं और रईस-परिवारों के प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता का ही परिणाम था उस समय का नाट्यशालाएँ। पर दलित रंग मंच के इतिहास में अगर देखा जाए तो वैसी साज-सज्जा का सर्वथा अभाव रहा है। इसके लिए गांव में कोई भी खुला स्थान चुन लिया जाता था। और एक निश्चित जगह घेरकर रंगमंच बना लिया जाता था। इसी पर दरियां बिछा दी जाती थी। कभी-कभी किसी चौपाल के सामने भी यही व्यवस्था कर ली जाती थी।

पिछले अध्याय में हम ने चर्चा की थी कि दलित नाटक एवं रंग मंच का संबंध लोकनाट्य शैलियों से है। अर्थात् आज के हिन्दी नाटक भी लोकनाट्य परंपरा का विकसित रूप है। हिन्दी लोकनाट्यों की श्रृंखला में बिहार के मिखारी ठाकुर का नाम उल्लेखनीय है। इनके दो प्रसिद्ध लोकनाटकों का उल्लेख मिलता है, जो है- 'बिदेसिया' और 'गबरधिचोर'।

हिन्दी का पहला दलित नाट्य लेखक अछूतानंद हरिहर जी को माना जाना चाहिए क्योंकि अभी तक प्राचीन उपलब्ध प्रकाशित नाटक अछूतानंद हरिहर जी का ही है।[1] उन्होंने 'आदि हिंदू' सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए दलित समाज पर अतीत में हुए अन्याय और अत्याचारों से अवगत कराने के लिए 'मायानंद बलिदान' और 'रामराज्य न्याय' जैसे नाटक लिखे। 'मायानंद बलिदान' जुलाई १९२६ में लिखा गया और 'रामराज्य न्याय' का रचनाकाल १९२७ से लेकर १९३१ के बीच

1 जन विकल्प- अंकः 3, जनवरी 2013, पृ.103

ठहरता है।[2] इन नाटकों का मंचन प्रायः आदि हिंदू आंदोलन के सम्मेलनों के बाद रात्रि के समय हजारों दर्शकों के समक्ष किया जाता था।

आज़ादी के बाद हिन्दी क्षेत्रों में शोभा यात्रा नाटकों का भी अपना स्थान रहा है। विशेष तौर पर उत्तरी भारत में संत रविदास जन्म दिवस तथा डॉ. अम्बेडकर जयंती समारोह के अवसरों पर दलितों के द्वारा अलग-अलग स्थानों पर नाटकों के आयोजन की शुरुआत हुई। ऐसी प्रस्तुतियाँ एक तरफ दलित-नायकों के जीवन संघर्ष की जानकारी देते हुए उनके भीतर चेतना जगाने का कार्य करते रहे दूसरी ओर उन्हें हल्का-फुल्का मनोरंजन भी देते रहे। इन शोभा यात्रा नाटकों में विशेष तकनीक की जरूरत नहीं पड़ती है। मिल-जुलकर संवाद लिखने से प्रस्तुति पर कार्य होता है।[3]

अछूतानंद जी के बाद महत्वपूर्ण उपलब्ध नाटककार रत्नाकर बंधु त्रिशरण जी है। [4] जिन्होंने १९५६ में 'अपना देश' नाम से एकांकी नाटक लिखा। इनका अन्य रचनाएँ है- डॉ. अम्बेडकर (१९७९), हीरे की पहचान (१९८३), हमारा समाज (१९८४) आदि। शिवप्रसन्न दास ने 'हरिजन' नाम से १९५९ में एक नाटक लिखा, जो बाबू जग जीवन राम के अभिनंदन ग्रंथ 'देश गौरव बाबू जग जीवन राम' में छपा है। इस नाटक की केन्द्रीय समस्या अस्पृश्यता है। जन सभाओं में वक्तव्यों से पहले नाट्य मंचन का जो परंपरा अछूतानंद हरिहर जी ने शुरू की थी, उसका विकास ललई सिंह यादव ने किया। उन्होंने ऐतिहासिक चरित्रों को आधार बनाकर नाटक लिखे। एकलव्य (१९६३), वीर संत मायानंद बलिदान (१९८४), अंगुलिमाल (१९८६), वीरांगना झलकारीबाई आदि महत्वपूर्ण नाटकों का सृजन किया। उन दिनों

---

2 जन विकल्प- अंकः ३ , जनवरी २०१३, पृ.103-105

3 दलित पत्रकारिता - मोहनदास नैमिशराय, पृ.118

4 जन विकल्प- अंकः ३, जनवरी २०१३, पृ.107

उनके नाटकों का मंचन देखने के लिए काफी भीड़ जुड़ा करती थी।[5] ऐतिहासिक चरित्रों एवं पौराणिक कथा के जरिए दलित इतिहास लेखन को एक नई दिशा प्रदान करने वाला रचनकार है, बिहारीलाल हरित। उन्होंने एकलव्य की ऐतिहासिक कथा को आधार बनाकर 'गुरुदक्षिणा' तथा देव-असुर संग्राम की पौराणिक कथा को आधार बनाकर 'देवासुर संग्राम' लिखा।

हिन्दी नाट्य साहित्य का ही नहीं, पूरे भारतीय नाट्य साहित्य जगत में माताप्रसाद जी का नाम अद्वितीय है। उन्होंने अपने लेखन व चिंतन से दलित साहित्य को काफी समृद्ध किया है। वे अकेले ऐसे नाटककार हैं जो बीसवीं सदी से लेकर इक्कीसवीं सदी तक निरन्तर सृजन यात्रा करते हैं। १९७३ से लेकर आज तक नाट्य लेखन किया है। उनका पहला नाटक 'अछूत का बेटा' १९७३ में लिखा गया है। उनका अन्य नाटक है- धर्म के नाम पर धोखा (१९७७), वीरांगना झलकारी बाई (१९७७), तड़प मुक्ति की (१९९९), प्रतिरोध (२०००), धर्मपरिवर्तन (२००१), हम एक हैं (२००५) आदि। इस तरह बहुत से नाटककारों एवं अनेक नाटकों को देखा जा सकता है, कुछ लिखित रक्षित है, कुछ मंचित और लोक प्रचलित।

हिन्दी दलित नाट्य जगत के महत्वपूर्ण घटना के रूप में दलित नाट्य मंच की स्थापना को देखा जा सकता है। यह उस समय हुआ जिस समय समूचे देश में मंडल और आरक्षण के खिलाफ प्रतिक्रियात्मक आंधी चल रही थी तब दलित-पिछड़ों के बीच भी अपनी अस्मिता और अस्तित्व बचाने के लिए आंदोलन फूट रहा था। एक तरफ बल और छल था तो दूसरी ओर उसका सामना करने की दलितों की

---

5 जन विकल्प- अंकः ३ , जनवरी २०१३ , पृ.108

संयुक्त मुहिम। ऐसे समय जहाँ दलित आंदोलन अन्य माध्यमों से मुखर हो रहा था वहीं दिल्ली के कुछ युवा दलितों ने मिलजुल कर दलित नाट्य मंच की स्थापना की। इनमें कर्मशील भारती और धर्मवीर का नाम उल्लेखनीय है। क्योंकि उन दिनों दलित-उत्पीड़न की घटनाओं में खूब बढ़ोत्तरी हो रही थीं इसलिए दलित नाट्य मंच के माध्यम से नाट्य मंचन की योजना को आगे बढ़ाने का कार्य किया गया। इस दिशा में कर्मशील भारती ने अपनी लेखनी चलायी।

दलितों के मंदिर प्रवेश के सवाल पर कर्मशील भारती ने १० अक्टूबर १९८९ को विजयदशमी के दिन मुनीरका में 'मेरा वजूद' नाटक का मंचन किया। दो दिन बाद यानी १२ अक्टूबर को इसकी दूसरी प्रस्तुति डॉ. अम्बेडकर भवन रानी झांसी रोड, नई दिल्ली में हुई। यह नाटक दलित नाट्य मंच के बेनर पर हुआ था और पूरी तरह अव्यावसायिक था। इसकी अवधि चालीस मिनट थी।[6]

इसके बाद उन्होंने दलित सवालों पर लगातर नाटक लिखे और उनका मंचन भी कराया। उनका अधिकांश नाटक अप्रकाशित थे। उनके द्वारा लिखे तथा मंचन किये अन्य नाटकों का नाम है- मंदिर प्रवेश (१९८९), श्रेष्ठ कौन (१९९०), मानसम्मान (१९९१), फांसी (१९९२), आजादी किसकी (१९९२), झूंठा अहंकार (१९९३), गुनाहों की सज़ा (१९९३) आदि।

औरंगाबाद (लखनऊ) के सास्कृतिक, शैक्षिक एवं सामाजिक संस्था 'सुगत' के जरिए युवा निर्देशक मनीष सैनी जी दलित नाटक एवं रंग मंच को एक नई दिशा प्रदान कर रहा है। मनीष सैनी के निर्देशन में बाल नाटकों का मंचन किया जा रहा

---

6 हिन्दी दलित साहित्य- मोहनदास नैमिशराय, पृ.225

है। जैसे 'बुद्ध ही बुद्ध है', 'बाप शराब पियेंगे, बच्चे भुखे मरेंगे', 'विकास से सतत विकास' आदि। 'बुद्ध ही बुद्ध है' नाटक के जरिए गौतम बुद्ध के जीवन को चित्रित किया है और उनके विचारों से सभी को सफल जीवन जीने का संदेश दिया है। बाल नाटकों के अलावा सुगत नाट्य संस्था द्वारा और भी नाटकों का मंच किया गया है। जैसे-भीम कारवां, जनसेवक संत गाडगे आदि। भीम कारवां नाटक के माध्यम से दलित उत्थान के नायकों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही इस नाटक के माध्यम से धर्म शास्त्रों के निर्देशों पर दलित समाज को गुलाम बनाने की नीति को दर्शाया गया है।

इस तरह अस्सी के बाद कई प्रमुख्र नाटककारों ने हिन्दी दलित नाटक और रंगमंच को प्रभावित किया है। जिन में प्रमुख्र हैं- मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सुशीला टाकभौरे, एन. सिंह, रूप नारायण सोनकर, सुनील कुमार सुमन, सूरजपाल चौहान, रत्ना कुमार सांभरिया आदि।

दलित नाटक का विकास अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना में धीमी गति से हो रहा है। इसका एक कारण यह है कि जहाँ अन्य विधाएँ व्यक्तिनिष्ठ हैं, वहाँ नाटक सामूहिक विधा है। रंगमंच, प्रेक्षक, अभिनेता, मंचीय साज सज्जा, प्रकाश व्यवस्था आदि नाटक की प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। दूसरा कारण यह है कि हिन्दी में दलित नाटक लिख्रे जाते हैं, उनका मंचन भी आजकल हो रहा हैं। लेकिन उन नाटकों का प्रकाशन और उनपर विचार-विमर्श नहीं के बराबर हैं। दलित नाटक की गति में तभी परिवर्तन आएगा जब नाटक मंचित एवं प्रकाशित होकर जन सामान्य के बीच संवाद का महौल पैदा करें और उन पर गौरव पूर्ण चर्चायें हो जाएँ।

४.३ हिन्दी में दलित नाटक : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

किसी भी साहित्यक रचना में दो प्रमुख तत्व रहता है- जैसे कथ्य और शिल्प। इन तत्वों के आधार पर किसी भी रचना का विशद अध्ययन कर सकता है। लेकिन नाट्य पाठ अन्य साहित्यिक रचनाओं से भिन्न इसलिए है कि उसे अंत में मंच पर ही जाना पड़ता है। मतलब यह है कि नाटक अपने रूप और प्रकृति में निश्चित दायरे के अंतर्गत रहता है। यह दायरा रंगमंच है। अतः कथ्य और शिल्प के साथ-साथ मंचीय या प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से भी नाटकों का अध्ययन करना समीचीन लगता है। इस विवेचन में मूल रूप से कथावस्तु, पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण, संवाद एवं भाषा शैली, दृश्य योजना, अभिनेयता आदि तत्वों के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत करना हमारा अभीष्ट है।

४.३.१ कथ्यपरक अध्ययन

किसी भी साहित्य विधा में 'कथ्य' का महत्व सर्वप्रथम है, क्योंकि कथ्य ही मूल विषय है। नाटककार अपने पात्रों के जरिए जो कुछ बताना चाहता है, वही कथ्य है। कथ्य नाटक का आधार-तत्व है। नाटक के दोनों पक्ष-रचना और प्रयोग मूलतः उसी पर आश्रित होते हैं। इसलिए, कथ्य के निर्माण में बड़ी सचेष्टता की आवश्यकता पड़ती है।

आगे प्रतिनिधि नाटकों के कथ्य पर दृष्टि डालेंगे।

४.३.१.१ राम राज्य न्याय

राम राज्य न्याय नाटक स्वामी अछूतानन्द हरिहर द्वारा लिखा हुआ है। जो 'आदि हिन्दू आंदोलन' के प्रवर्तक थे। उनके अधिकांश साहित्य अप्रकाशित है।

अपने जीवन काल में जो कुछ प्रकाशित हो सका उसमें 'राम राज्य न्याय', 'मायानन्द-बलिदान', 'पारख-पद' आदि प्रमुख है। बलिछलन नाटक अपूर्ण और अमुद्रित स्थिति में रह गया। भजनों की छोटी-छोटी कई पुस्तके हरिहर भजनमाला, विज्ञान भजनमाला और आदि हिन्दू भजनमाला नाम से मुद्रित एवं प्रकाशित हुई। किन्तु इन भजनमालाओं में कोई उपलब्ध नहीं। केवल 'आदि वंश का डंका' उपलब्ध है।[7]

कथावस्तु वाल्मीकि महर्षि के महाकाव्य रामायण के उत्तरकाण्ड में वर्णित शम्बूक वध पर आधारित है। नाटक का आरंभ मंत्री द्वारा राज्य में व्याप्त अकाल के बारे में राम को बताना है। राम अकाल से पीड़ित प्रजा की सहायता करने का आदेश देता है। द्विजों को किसी प्रकार के कष्ट नहीं होनी चाहिए। जिस राज्य में ब्राह्मणों को कष्ट होता है, वह राजा नरक गामी होता है। अपार धन-दौलत और अन्न बांटकर ब्राह्मणों और प्रज्ञा जनों को कष्ट से बचाओं इस प्रकार राम विलाप कर रहें हैं। तभी एक ब्राह्मण अपने जवान बेटे का शव लिए हुए राम दरबार में प्रवेश करता है। ऐसी धारणा थी कि त्रेता युग में पिता से पहले पुत्र की मृत्यु नहीं होती थी। ब्राह्मण अपने पुत्र की मृत्यु का उत्तरदायी राम को मानता है। राम इस अकाल मृत्यु का कारण अपने गुरू वशिष्ट से पूछते हैं। वशिष्ठ इस मृत्यु का उत्तरदायी शम्बूक नामक शूद्र को मानते हैं, जो दण्डकारण्य वन में गोदावरी नदी के तट पर सन्देह स्वर्ग जाने की कामना से तप कर रहा है। शम्बूक की तपस्या का फल है यह अकाल क्योंकि शूद्र को वर्णाश्रम और मनुस्मृति के विधान के विरुद्ध तपस्या करने का अधिकार नहीं है। इसलिए जब तक उसके तप को भंग करके उसका सिर तुम्हारे

---

[7] स्वामी अछूतानन्द हरिहर- डॉ. राजपाल सिंह राज, पृ.52

हाथों से नहीं काटा जाएगा तब तक वृद्ध ब्राह्मण का बालक जीवित नहीं होगा। तबी राम शम्बूक को दंण्ड देने के लिए निकलते है। दण्डकारण्य वन में अपने वनवास के समय स्मरण करते हुए शम्बूक मुनि के आश्रम पहुँचे है। शम्बूक मुनि योगासन पर बैठे हैं। काल-गति पर विचार कर रहे हैं। राम-लक्ष्मण का प्रवेश। राम शम्बूक मुनि के समीप पहुँचकर अपना परिचय और आने का उद्देश्य बताते है। इसके बाद शम्बूक मुनि और राम के बीच गंभीर संवाद होता है। राम द्वारा शम्बूक मुनि पर तलवार से वार करने से पूर्व शम्बूक की पत्नी तुंगभद्र द्वारा राम के चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगता है। बाद में राम शम्बूक मुनि का वध कर देता है। अंत में शम्बूक मुनि और तुंगभद्रा की समाधि स्थल पर शिष्यों और आदिवासी बच्चों के द्वारा समाधियों पर फूल चढ़ाते हुए शोक गीत गाता हैं। यहाँ पर नाटक समाप्त हो जाता है।

४.३.१.२ **धर्मपरिवर्तन** (२०००)

माताप्रसाद हिन्दी दलित साहित्य के ख्याति प्राप्त साहित्यकार है। उनके नाटकों में 'धर्म के नाम पर धोखा' (१९७७), 'अछूत का बेटा' (१९९०), 'वीरांगना झलकारी बाई' (१९९५), 'तड़प मुक्ति की' (१९९९), 'वीरांगना ऊदा देवी पासी' (१९९९), 'प्रतिशोध' (१९९९), 'अन्तहीन भेडिया' तथा 'धर्मपरिवर्तन' (२०००) आदि प्रमुख है। माताप्रसाद ने अपने प्रत्येक नाटक में दलित समाज की किसी न किसी समस्या को उठाया और अन्ततः उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। कुछ नाटकों में ऐसे नायक-नायिकाओं को प्रस्तुत किया है, जिनकी पहचान भारतीय इतिहास से मिटाने का प्रयास किया गया। माता प्रसाद एक ऐसे सिद्धहस्त नाटककार हैं, जिनके नाटकों में युगबोध अपनी संपूर्ण विद्रूपता के साथ मुखरित हुआ

है। उनके नाटकों को गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने के उपरान्त डॉ.सिप्रा बैनर्जी ने लिखा है कि "नाटककार माताप्रसाद जी अपनी सामायिक चेतना से प्रेरित होकर समाज में व्याप्त बुराइयों को उद्घाटित कर एक ओर जहाँ दर्शकों की रुचि का परिष्कार करते हैं। वहीं दूसरी ओर इन समस्याओं से बचने के लिए भी आगाह करते हैं। इसके लिए पहले वे एक वैज्ञानिक की भांति समस्या के तल तक जाते हैं, उसके कारणों का अन्वेषण करते हैं, फिर एक दार्शनिक के समान उसके प्रभाव प्रतिक्रिया पर विचार करते हैं। और अंत में एक समाज-सुधारक की तरह उस समस्या का समाधान प्रस्तुत करके ही अपने कर्तव्य की इतिश्री करते हैं। माताप्रसाद जी के नाटक हिन्दी नाट्य साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में समर्थ होंगे तथा आज ही नहीं आने वाला कल भी उन नाटकों को स्वीकृति देगा।"[8] हिन्दी दलित नाटक की दृष्टि से माताप्रसाद का योगदान निश्चय अमूल्य है।

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु को तीन अंकों में विभाजित किया गया है। इसमें डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के जीवन को दर्शाया गया है। नाटक में बडौदा राज्य के डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरल के पद पर नियुक्ति के समय से लेकर धर्मपरिवर्तन तक के जीवनानुभवों को चित्रित किया है। नाटककार ने अम्बेडकर के जीवन में घटित प्रमुख घटनाओं के ज़रिए तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक अवस्थाओं को इस नाटक में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है।

अम्बेडकर ने यह महसूस किया कि एक दलित उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी उसका सामाजिक अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिए वे दलितोद्धार के

---

8 शिखर की ओर (श्री माताप्रसाद अभिनंदन ग्रन्थ), सं. डॉ. एन. सिंह, पृ. 225

लिए सामाजिक संघर्ष शुरू किया और अंत में इस सामाजिक प्रक्रिया और संरचना से निराश होकर धर्मपरिवर्तन की ओर उन्मुख हो जाता है।

बडौदा राज्य के डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरल के पद पर अम्बेडकर की नियुक्ति से नाटक का आरंभ होता है। दलित होने के कारण दफ्तर में उन्हें सामाजिक भेद-भाव सहना पड़ा और उनके अधीनस्थ कर्मचारी भी उनसे जाति-भेद दिखाते थे। दलित होने से उन्हें रहने के लिए भी जगह नहीं दिया गया। इस संदर्भ में वे पद से इस्तीफा देते हैं। उनका मत था कि दलित कितनी उच्च शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरी में उच्च स्थान पाने पर भी, समाज में उसके प्रति जातिगत भेद-भाव प्रकट किये जाती हैं इसमें कोई कमी नहीं आती है। यहाँ दलितों या अछूतों को हिन्दु धर्म में स्वीकार करने पर भी उन्हें सामाजिक क्रिया-कर्म में और व्यवहार से दूर रखा जाता है।

नाटक में अम्बेडकर के जीवन के एक प्रसंग से उनके द्वारा शिक्षा प्राप्ति के लिए जो कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ा उसका चित्रण मिलता है। उनका जन्म अछूत जाति में महार कौम में हुआ था। इन्हें हिन्दु धर्म के हिसाब से शूद्र कहा जाता है। हिन्दु धर्म में शूद्र को शिक्षा वर्जित है। लेकिन अम्बेडकर के पिताजी फौज में अध्यापक होने के कारण शिक्षा की एहमीयत महसूस किया और उन्हें पढ़ाने के लिए कठिन प्रयास किया। अछूत होने से कहीं भी उनको प्रवेश नहीं मिल रहा था। तब पिताजी ने एक अंग्रेज़ी अफ्सर से फौजी होने के आधार पर फरियाद किया तब जाके उन्हें स्कूल में प्रवेश मिला। वहाँ भी उन्हें बहुत से कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ा। वे सवर्ण हिन्दु लड़कों के साथ बेंच पर नहीं बैठ सकता था। अपने घर से रोजाना अपने बैठने के लिए टाट ले जाना और ले आना पड़ता था। स्कूल में उन्हें

लंगोटी लगाकर जाना पड़ता था। स्कूल में नल की टोंटी नहीं छू सकता था। यदि कभी कोई लड़का या चपरासी नल की टोंटी न खोलता तो उन्हें बिना पानी पिये ही रह जाता था। जब तक मास्टर कमरे में नहीं आ जाते उन्हें बाहर खड़ा रहना पड़ता था। इस तरह बहुत से मुश्किलों से गुज़रते हुए उन्होंने अपने आत्मबल और परिश्रम के ज़रिए उच्च शिक्षा हासिल की थी। इस घटना को विशेष संदर्भ के ज़रिए नाटककार ने नाटक में चित्रित किया है।

डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरल के पद से त्याग-पत्र देने के बाद उन्हें सिडेनहम कॉलेज बम्बई में प्रोफेसर के स्थान पर नियुक्ति मिली। लेकिन उनका सोचना था कि "मैं नौकरी करके अपना और अपने परिवार का ही तो भला कर सकता हूँ। इस देश में करोड़ों की तादाद में अछूत कहे जाने वाले लोग जो पशुओं की ज़िन्दगी जी रहे हैं, उनके लिए भी मैं कुछ करना चाहता हूँ।"[9] साथ ही उनका यह इच्छा थी कि इंग्लैण्ड और जर्मनी जाकर अपनी शिक्षा पूरी करके वापस आऊँगा।

विदेश से लौटने पर वे दलितों की समस्याओं को सुलझाने की कोशिश किया साथ ही बम्बई हाईकोर्ट में एडवोकेट के हैसियत से काम करने लगे। भारत के विभिन्न प्रदेशों से उन्हें दलितों पर हो रहे अत्याचार और अन्याय का विवरण देते हुए पत्र मिलता था। वे उनका हल ढूँढ़ने की प्रयास करता था। एक बार एक पत्र मिला जो कोलाबा जिले के महाद गाँव से थे। जिसमें लिखा था कि "इस वर्ष यहाँ पर सूखा पड़ा, जिस तालाब से वे पानी पीते थे, वह सूखा गया। उन्हें चोबार तालाब से पानी पीने नहीं दिया जाता। सवर्ण लोगों का कहना है कि उनका गाय, भैंस, इसमें से पानी पीते हैं, अगर अछूत भी इसमें से पानी पीने लेंगे तो वह जूठा हो जाएगा।

---

9 धर्मपरिवर्तन, माता प्रसाद, पृ.18

वही पानी गाय-भैंस के पीने पर उनके दूध में भी जूठापन आ जाएगा।"[10] इसके विरोध में अम्बेडकर ने सत्याग्रह करने का फ़ैसला किया। वास्तव में इस सत्याग्रह ने दलित-मुक्ति के आंदोलन की आधारशिला रखी थी। पहले अंक की समाप्ति महाद और नासिक के सत्याग्रह के साथ होता है।

द्वितीय अंक का आरंभ विश्व प्रसिद्ध गोलमज़ सम्मेलन से होता है। भारत की समाज और राजनीति में अछूतों को प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए अम्बेडकर ने सम्मेलन में बहस किया लेकिन गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस के नेताओं ने विरोध किया। इस पर अम्बेडकर और महात्मा गाँधी के बीच आशय संघर्ष होता है। इस घटना से देश भर में अम्बेडकर को एक गाँधी विरोधी के रूप में चित्रित किया गया।

अम्बेडकर ने दलितों को भारतीय समाज में प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए, अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए अपने अलग निर्वाचन मंडल का मांग किया। अंत में ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेमज़े मैकडोनाल्ड ने गोलमेज़ कॉफ्रेंस के आधार पर २० अगस्त १९३२ ई. को अपना कम्यूनल एवार्ड घोषित कर दिया। जिसमें मुसलमानों और सिखों के साथ ही शेडयूल्ड कास्ट को भी पृथक निर्वचन के अधिकार को मान्यता दिया गया। लेकिन इसके विरोध में गाँधीजी ने यरवदा जेल में अमरण अनशन शुरू किया। पर अम्बेडकर भी अपनी बात पर अड़े रहे। लेकिन हर तरह से दबाव पड़ने पर अम्बेडकर को गाँधीजी के साथ समझौता करना पड़ा। इस समझौता को पूना ऐक्ट नाम से जाने जाते है। इस ऐतिहासिक समझौते का सजीव चित्रण द्वारा नाटककार ने गाँधीजी जैसे महान राजनीतिज्ञ और अन्य सवर्ण

---

[10] धर्मपरिवर्तन, माता प्रसाद, पृ.24

नेताओं ने दलितों के इस लड़ाई को किस चालाकी और होशियारी से दबा दिया था, इसे देखने को मिले हैं।

पूना ऐक्ट में दृश्य के बाद नाटककार ने दस वर्ष के एक लम्बे दरमीयान के बाद दलितों की जो स्थिति है उसे एन.शिवराज के संवाद के ज़रिए प्रस्तुत किया है-

एन. शिवराज : ....पूना के ऐक्ट के दस वर्ष बीत गए, किन्तु जिस उद्देश्य से वह समझौता किया गया था वह पूरा नहीं हुआ। कांग्रेस के नेताओं ने तो प्रस्ताव पास कर दिया कि जन्म से कोई अछूत नहीं है। सभी स्कूल, धर्मशालाएँ, मन्दिर उनके लिए खोल दिए जाएँ, किन्तु व्यवहार में कुछ दूसरा ही हो रहा है। आप लोगों को जानकारी होगी कि अहमताबाद के कविया गाँव में अछूतों ने अपने बच्चों को स्कूल भेजा तो वहाँ उनका सामाजिक बहिष्कार किया गया। इसी जिले के कजून गाँव में अछूत स्त्रियों ने धातु क बर्तन में जल लाना शुरू किया तो उन नारियों पर लज्जाजनक आक्रमण किया गया, कुछ दिनों पूर्व ही जयपुर के चकवारा गाँव में अछूतों ने अपने जातीय भोज में घी के पकवान बनाए। अछूतों का घी का पकवान खाना हिन्दुओं को बर्दश्त नहीं हुआ, उन्होंने भोजन के समय सैकड़ों की संख्या में लाठियाँ लेकर निहन्थे अछूतों पर आक्रमण किया। खाने वालों को पीटा गया और उनका भोजन खराब किया गया। यह हमारी दुर्दशा है।[11]

---

[11] धर्मपरिवर्तन, माता प्रसाद, पृ.41

इस मौके पर अम्बेडकर ने जो भाषण दिया उसमें उन्होंने अपनी धर्मपरिवर्तन की घोषणा किया साथ ही उसके कारणों पर भी प्रकाश डाला। नाटककार ने डॉ. अम्बेडकर को इस आधार पर हताश या निराश नहीं दिखाया है कि हिन्दु समाज में समता के लिए उनका संघर्ष सफल नहीं हो सका। लेखक ने डॉ. अम्बेडकर को इस सोच के आधार पर धर्मान्तरण के लिए अग्रसर दिखाया है कि वर्ण-व्यवस्था जिस धर्म के मुल में है, उस धर्म-समाज में समता की स्थापना सम्भव ही नहीं है। नाटककार ने डॉ. अम्बेडकर के इस निष्कर्ष को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से रेखांकित किया है कि जब तक अछूत हिन्दु बने रहेंगे, तब तक वे दासता, अन्याय और अत्याचार से मुक्त नहीं हो सकते।

नाटककार ने अलग-अलग दृश्यों के सहारे उनके व्यक्तित्व और सिद्धान्तों पर पड़े भ्रम को दूर करने का सफल प्रयास किया। दृश्य सात में रामसिंह और प्रोफेसर सिद्धेश्वर प्रसाद के बीच होने वाला बातचीत इसका उदाहरण है। साथ ही नाटककार ने विभिन्न दृश्यों के सहारे अम्बेडकर के संपूर्ण जीवन को समेटने की कोशिश किया है। दृश्य आठ में संविधान समर्थन समारोह द्वारा अम्बेडकर ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया उस पर प्रकाश डाला है। दृश्य नौ में उनका दूसरी विवाह के संदर्भ को व्यक्त किया है। दृश्य दस में जवाहरलाल नेहरू और डॉ.अम्बेडकर के बीच हिन्दु कोडबिल के ऊपर बातचीत की चित्रण है। इस दृश्य के साथ ही दूसरी अंक समाप्त हो जाती है।

तृतीय अंक नाटक का बीज या उसकी आत्मा है। इस अंक में नाटककार ने अम्बेडकर के धर्मपरिवर्तन संबन्धित विचारों और सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया है। साथ ही धर्मान्तरण के संदर्भ में सिख, ईसाई और इस्लाम के विकल्पों पर भी

डॉ. अम्बेडकर ने विचारों को प्रदर्शित किया और राष्ट्रवाद तथा भारतीय संस्कृति की दृष्टि से बौद्धधर्म में उनकी दीक्षा के ऐतिहासिक सत्य का उद्‌घाटन किया है। अंत में १४ अक्टूबर १९५६ ई. में नागपूर के बौद्ध दीक्षा भूमि स्थल में अम्बेडकर और उनके अनुयायियों के बौद्ध दीक्षा ग्रहण करने का साथ ही नाटक समाप्त हो जाता है।

४.३.१.३ तड़प मुक्ति की (१९९९)

हिन्द दलित साहित्य के वरिष्ठ और प्रतिष्ठित साहित्यकार श्री माताप्रसाद जी का नाटक है- 'तड़प मुक्ति की'। माताप्रसाद ने दलित नाटकों को आधार भूमि प्रदान किया है। वे अकेले ऐसे नाटककार हैं जो बीसवीं सदी से लेकर इक्कीसवीं सदी तक निरन्तर सृजन यात्रा कर रहे हैं। उनका पहला नाटक 'अछूत का बेटा' १९७३ में लिखा गया है। 'तड़प मुक्ति की' नाटक उन्होंने १९९९ में लिखा है। इस नाटक में उन्होंने दलितों की वर्तमान स्थिति को उजागर किया है।

दलित समाज में अपनी स्थिति को लेकर पनप रहे असन्तोष, उलझन, घुटन एवं तड़पन को आधार बनाकर एक काल्पनिक कथ्य पर इस नाटक की रचना की गई है। नाटक का आरंभ भीमराव अम्बेडकर की जयन्ती समारोह के आयोजन से होता है। मनोज कुमार समारोह का संचालन करता है। नाटक का नायक मनोज कुमार है, जो एक शिक्षित और जागरूक युवक है। मनोज कुमार लखनऊ विश्वविद्यालय के एम.ए के छात्र होने के साथ-साथ वह रामपुर जिले की दलित युवक कल्याण समिति का अध्यक्षा भी है। इस दृश्य में डॉ. अम्बेडकर के विचारों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। सदियों से शिक्षा, सम्पत्ति आदि से वंचित रखे गए दलितों को डॉ. अम्बेडकर के लम्बे संघर्ष के परिणामस्वरूप भारतीय संविधान में समान नागरिक का अधिकार प्रदान किया गया तथा अनेक प्रकार की सुविधाओं की

व्यवस्था उनके लिए की गई। लेकिन इन सुविधाओं का लाभ किस हद तक दलितों तक पहूँचता है इसका चित्रण नाटककार ने आगे के दृश्यों में चित्रित किया है।

मनोज कुमार दलितों की समस्याओं को शासन-प्रशासन के समक्ष उठाता है तथा हल करने की कोशिश करता है। सामाजिक जागृति के लिए भी वह काम करता है। वह सच्चरित्र, स्वाभिमानी और साहसी युवक है। गुंडों द्वारा मण्डल विरोधी मोर्चे की नेता और मनुवादी पार्टी की सदस्य सुषमा देवी के साथ बदतमीज़ी का व्यवहार किए जाने पर वह उसकी रक्षा करता है ओर उसे सुरक्षित घर तक पहुँचाता है। वह पी. सी. एस की परीक्षा में रिज़र्व श्रेणी से नहीं जनरल श्रेणी में आवेदन देता है और पुरी सूची में दूसरा स्थान प्राप्त करता है। पी. सी. एस की ट्रेनिंग के दौरान सुषमा देवी से उसकी घनिष्टता हो जाती है। सुषमा देवी उससे बहुत प्रभावित होती है और उसके मानवीय और चारित्रिक गुणों से प्रभावित होकर उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रख देती है। इसी दृश्य के सात नाटक समाप्त हो जाता है।

४.३.१.४ हेलो कामरेड (२००१)

मोहनदास नैमिशराय जी हिन्दी साहित्य जगत में दलित साहित्यकार के रूप में अपना एक अलग स्थान रखते है। उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास एवं नाटक के अलावा दलित विषयों से जुड़ी कई आलोचनात्मक ग्रन्थ भी लिखे है। उनके प्रमुख रचनाएँ है- सफ़दर : एक बयान (कविता संग्रह), आवाज़ें, हमारा जवाब (कहानी संग्रह), क्या मुझे खरीदोगे, मुक्ति पर्व, आज बाज़ार बंद है, जख्म हमारे (उपन्यास), अपने-अपने पिंजरे (आत्मकथा), अदालतनामा, हेलो कामरेड (नाटक) आदि। हेलो कामरेड उनका मशहूर नाटक है। जिस में उन्होंने साम्यवादी पार्टी के कार्यकताओं में

छुपे जातीय मानसिकता के कीटाणुओं की जाँच-पड़ताल की है। इस नाटक का प्रथम प्रस्तुति १६ जुलाई १९८४ में दी स्मार्ट और राही कला संगम, नई दिल्ली द्वारा किया गया था।

कथनी और करनी में बिल्कुल विपरीत दिशा में चलनेवाले राजनैतिक नेताओं का चित्र प्रस्तुत करने वाला नाटक है- हेलो कामरेड। नाटक का आरंभ रवि के जिक्र से होता है। रवि जो एम. ए तक पढ़ा, दलित होनहार युवक था। कुछ सवर्ण गुंडे उसकी पत्नी का अपहरण कर के इज्ज़त लूटता है और उसकी हत्य कर देते हैं। रवि न्याय के लिए कानून का दरवाज़ा खटखटाता है लेकिन उसे निराशा होना पड़ता है। तभी से वह पागल हो जाता है। पागल हुआ रवि इस युग को ही बलात्कार का युग कहता है। जो यथार्थ भी लगता है।

हीरालाल और फूलवती तथा इसके दो संतान अजय और विमला जो दलित समाज के है। अजय शिक्षित बेरोजगार है। अच्छे अंक होने पर भी पैसा एवं सिफ़ारिश न होने के कारण उसे नौकरी में नहीं लिया जा रहा है। इस वक्त आरक्षण की तख्ती भी उसे नौकरी देने में उपयोगी नहीं होती दियाई देती है और विमला एक राजनीतिक पार्टी के कार्यकर्ता है। उसका मनना है कि उसकी पार्टी में जातीय भेद-भाव नहीं है। पार्टी के लिए किये कार्य को देखकर पार्टी की ओर से उसे सूबा कौंन्सिल में लिया गया था। जब कि शेष सवर्णों को यह बात नागवार लगती है। उनका मनना है कि विमला को दलित होने के कारण कौंन्सिल में लिया है न योग्यता या काम देखकर नहीं। अरविन्द, रमा आदि पार्टी के इस फैसले से नाराज़ होते हैं। एक दलित और उसमें भी एक लड़की को इस पद पर लेना उन्हें ज़रा भी गँवारा नहीं

था। अरविन्द विमला से इस बात पर चिढ़ जाता है और उसको सिखाने पर ऊतर आता है।

एक दिन रमा द्वारा मीटिंग का झूठी बहाना बनाकर विमला को दफ्तर बुलवाकर अरविन्द उसकी इज़्ज़त लूटता है। विमला यह बात अपने भाई अजय को बताती है। क्रोध में आकर अपने बहन की इज्ज़त का बदला लेता है यानी अरविन्द का कत्ल कर देता है। पुलिस द्वारा गिरफ्तार अजय ज़रा भी दुःखी नहीं होता। परंतु बेटी की लूटी इज्जत और बेटे की गिरफ्तारी को पिता हीरालाल संभाल नहीं पाते और वे दिल का दौरा पड़ने से चल बसते है। यहीं नाटक समाप्त हो जाता है।

४.३.१.५ दो चेहरे (२०१२)

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी को हिन्दी दलित साहित्यकार के रूप में देश-विदेश में जाने जाते है। उनका जुठन (आत्मकथा) जो अंग्रेजी, जर्मन, स्वीडिश आदि विदेशी भाषाओं के साथ-साथ पंजाबी, तमिल, मलयालम, कन्नड़. तेलुगू आदि भारतीय भाषाओं में भी प्रकाशित हो चुके है। उनके प्रमुख रचनाएँ सदियों का संताब, बस्स! बहुत हो चुका, अब और नहीं (कविता संग्रह), सलाम, घुसपैठिए, छतरी (कहानी संग्रह), ढोल की पौल, खेल जमूरे का (नुक्कड़ नाटक), 'दो चेहरे' उनके एकमात्र नाटक है। जिसमें उन्होंने मजदूर नेताओं के चेहरों पर चढ़े चेहरों को उभारा है। इसका प्रथम मंचन देहरादून के खचाखच भरे टाउन हाल में ३ मार्च १९८७ को सम्पन्न हुआ था।

नाटक का आरंभ मज़दूर संगठन के नेता शिवराज सिंह के भाषण से होता है। वह मजदूरों पर हो रहे अत्याचारों पर भाषण दे रहा है। तथा मज़दूरों को मेनेजमैंट

विरूध हड़ताल करने के लिए उकसाता है। तभी शिवराज सिंह के गाँव से चिठ्ठी आती है कि गाँव के दलित मज़दूरों ने हड़ताल कर दिया और खेतों में फसल पकी खड़ी है। बाहर के मज़दूर भी नहीं मिल रहे हैं। इस हालात से निपटने के लिए उसे गाँव बुलाया है। गाँव में दलित मज़दूर लोग अपने मज़दूरी बढ़ाने के लिए हड़ताल पर है। शहर के मज़दूर नेता अपने गाँव के दलित मज़दूरों पर अत्याचार करता है एवं दलित नारीओं को अपने हवस का शिकार बनता है। हड़ताल कर रहे दलित मज़दूरों को गुड़े के साथ आकर पिटता है। अंत में इसके मज़दूर विरोधी चेहरा शहर के मज़दूरों सामने भी खुल जाता है। मज़दूर एक सात मिलकर शिवराज सिंह की पिटाई कर देता है। यही पर नाटक समाप्त हो जाता है। इस तरह 'दो चेहरे' नामक इस नाटक में बहुत ही छोटे का कथा के द्वारा एक छल-कपटी मज़दूर नेता का दलित विरोधी चेहरे को हमारे प्रस्तुत किया है।

४.३.१.६ कठौती में गंगा (१९९८)

दलित साहित्य जगत में आलोचक के रूप में डॉ. एन. सिंह जी को पर्याप्त ख्याति मिली है। आलोचनात्मक रचनाओं के साथ-साथ अन्य साहित्यिक विधाओं में भी उन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। उनके प्रमुख रचनाएँ- सतह से उठते हुए, दर्द के दस्तावेज, चेतन के स्वर (काव्य संकलन), काले हाशिए पर, यातना की परछाइयां (कथा-संग्रह), कठौती में गंगा (नाटक) आदि। कठौती में गंगा नाटक में उन्होंने संत रैदास के जीवन और उपदेशों को प्रस्तुत किया है।

तेरह खण्डों में विभाजित 'कठौती में गंगा' नाटक में नाटककार ने संत रैदास के जीवन और उपदेशों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। इस नाटक की समीक्षा करते हुए डॉ. देवेन्द्र दीपक ने कहा है कि- "कठौती में गंगा की कथावस्तु की

संरचना अपने ढंग की है। प्राचीन नाट्यशास्त्र के सहारे इसका मूल्यांकन सम्भव नहीं है। इसमें एक नहीं, अनेक 'क्लइमैक्स' हैं। यहाँ हर संघर्ष की अपनी एक चरमसीमा है और हर संघर्ष का अपना एक सुखद अंत है। मैं इसे झलकियों का नाटक कहना चाहूँगा। सभी झलकियाँ एक अंतः सूत्र में बंधी हुई हैं।"[12]

नाटक का आरंभ कबीर के आगमन से होता है। जिन्हें गाँव का एक वृद्ध बताता है कि आज तो रैदास के यहाँ एक पंडित और राजा के सिपाही गए थे। जिन्हें रैदास ने सोने का कंगन दिया। कबीर दास रैदास से मिलने जाते हैं और उनसे कंगन वाली बात पूछते हैं। रैदास कबीर को बताते हैं कि कुछ दिनों पूर्व एक ब्राह्मण मुझसे जूता ठीक कराने आया था। जब जूता ठीक हो गया, तो ब्राह्मण ने कहा कि हम गंगा-स्नान के लिए जा रहे हैं। तुम यदि गंगा जी के लिए कोई भेंट देना चाहे, तो दे दें। हम गंगा जी को दे देंगे। तो मैंने अपनी कठौती से एक कौड़ी निकाली ओर कहा कि यदि गंगा मैया स्वयं स्वीकार करें तो दे देना, अन्यथा वापस लेते आना। गंगा मैया ने मेरी भेंट स्वीकार किया और मुझे देने के लिए उसको एक स्वर्ण-जड़ित कंगन दे दिया। कंगन पाते ही ब्राह्मण के मन में लालच आ गया कि इस कंगन को यदि राजा को दे दूँ तो राजा मुझे जागीर सौंप देंगे। और ब्राह्मण ने उसे राजा को भेंट दिया, राजा ने रानी को दिया। लेकिन रानी को उसके जोड़ा चाहिए था। राजा ने शहर के सारे स्वर्णकारों को बुलाया। लेकिन कोई भी स्वर्णकर उस जैसा कंगन नहीं बना सका। अन्ततः राजा ने ब्राह्मण को बुलाया कि वह कंगन जैसा ही दूसरा कंगन लाकर दे अन्यथा उसका और उसके पूरे परिवार को मृत्यु दण्ड दिया जायेगा। ब्राह्मण मेरे पास आया और उसने सारी बात बताई और

---

[12] दलित साहित्य वार्षिक (२०००)- सं जयप्रकाश कर्दम, पृ.397

मैंने अपनी कठौती से दूसरा कंगन निकालकर ब्राह्मण को दे दिया। ब्राह्मण ने राजा को पूरी बात बताई, तो राजा ने मुझे को बुलाकर सम्मानित किया। पहले एवं दूसरे ख्रण्ड में यही कथ्य है।

तीसरे ख्रण्ड में कथा पीछे चली जाती है। राघव दास और कर्म के यहाँ एक बालक ने जन्म लिया है। लेकिन वह दूध नहीं पी रहा है। इसलिए राघवदास स्वामी रामानन्द के आश्रम में जाकर उन्हें पूरी बात बताते हैं। स्वामी रामानन्द आकर बालक का मस्तक स्पर्श करते हैं और बालक दूध पीने लगता है। स्वामी जी ही रविवार को उत्पन्न होने के कारण बालक का नाम रविदास रख्रते हैं जिसे वहाँ उपस्थित नारियाँ रैदास कह देती हैं। इस तरह रविदास रैदास बन गया। इस ख्रण्ड में रैदास के सात होनेवाले कुछ घटनाओं द्वारा छुआ-छूत चित्रण भी किया है। मंदिर में, पाठशाला में, उसको जाति के नाम पर यातनाएँ सहना पड़ता है।

पाँचवा ख्रण्ड में नीरू और नीमा को लहरतारा तालाब के किनारे से एक बालक मिलता है जो निरन्तर रो रहा है। दर असल उसे भूख्र लगी है जब कर्मा उसे दूध पिलाती है तब बच्चा रोना बंद कर देता है। इस ख्रण्ड में रैदास छूआ-छूत को लेकर चिंतित दिख्राई देता है।

छठवें ख्रण्ड में रैदास अपने दयालुता के कारण संतों को पिता की बनाई हुई जूतों को मुफ्त में दे देता है। लेकिन पिता उनके इस कार्य को लेकर चिंतित है। क्योंकि इस तरह से चलेगा तो जीवन कैसे काटेगा? ये कब ख्रूद कमायेगा? यह स्थिति सुधान ने के लिए उसका विवाह कर देते हैं। लेकिन फिर भी जब वह नहीं सुधरे तो उसे घर से अलग कर देते हैं। जब रैदास दारिद्रय में जीवन व्यतीत करने लगते हैं तो साधू वेशधारा प्रभु उन्हें पारस देते हैं तो उसे वे नहीं लेते। फिर साधू

उस पारस को उनके छप्पर में खोसकर चले जाते हैं। अगले वर्ष आकर, वे उसे वहीं पर खुंसा हुआ पाते हैं। फिर उनकी मदद के लिए ठाकुर के सिंहासन के नीचे उन्हें पाँच स्वर्ण मुद्राएँ रोज मिलने लगती है। इससे रैदास ने एक मंदिर बनवाया, धर्मशाला बनाई और रैदास की प्रतिष्ठा चारों और बढ़ने लगती है।

सातवाँ खण्ड में जब सत्संग भवन में रैदास प्रवचन सुना रहे तो एक सेठ उनसे चरणामृत लेकर पीता नहीं, बल्कि उसे गिरा देता है। लेकिन चरणामृत के छींटे कपड़ो पर गिर जाता है। धोपी की लड़की जिसने कपड़े धोए तथा धोते हुए चरणामृत के दागों को चूस कर साफ किया, उसका कोढ़ ठीक हो गया लेकिन सेठ को कोढ़ हो जाता है। उसे अपने गलती का अहसास हुआ। उसने सन्त रैदास से अपनी गलती की माफी मांगी, चरणामृत पीया तब जाकर उसका कोढ़ ठीक हुआ। रैदास द्वारा ठाकुर यानी विष्णु भगवान की पूजा करने का शिकायत पण्डों काशी-नरेश से करते हैं। नरेश के दरबार में रैदास से नरेश तथा पण्डे की बहस होती है। जहाँ भगवान को पूजा द्वारा प्रसन्न करके अपने पास बुलाने का शर्त रखी जाती है। शर्त में रैदास जीत जाती है। नरेश के आदेश पर ब्राह्मण रैदास को पालकी में बैठाकर काशी में धूमाते हैं। इससे रैदास की प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जाती है।

आठवें खण्ड में हिरणकश्यप तथा प्रहलाद की कथा कही गई है कि किस तरह भगवान ने नरसिंह अवतार लेकर हिरण्यकश्यप की हत्य की और अपने भक्त प्रहलाद की जान बचाई। नवें खण्ड में रैदास द्वारा उपदेश दिये जाने पर काशी के ब्राह्मण-समाज को ऐतराज है। रैदास और ब्राह्मणों की बहस होती है। जहाँ शलिग्राम की मूर्ति को गंगा में तैरने की शर्त रखी जाती है। ब्राह्मण लोग लड़की की मूर्तियाँ बनवा ली और तैराकर यकीन भी कर लिया। लेकिन ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई छद्म

मूर्तियाँ गंगा में डूब जाती हैं, लेकिन रैदास के आहवान पर मूर्ति गंगा में तैरने लगती है।

दसवें खण्ड में रैदास समाज-सुधारक के रूप में गाँव के लोगों को शराब पीने से मनाकर, महिलाओं को, बूढ़ों को प्रताड़ित न करने का उपदेश देते है। इसी खण्ड में रैदास का शंकराचार्य से शास्त्रार्थ का दृश्य भी दिखाया है। गयरहवें खण्ड में रैदास स्वामी रामानन्द के शिष्य बनने का दृश्य दिखाया गया है। बारहवां खण्ड चित्तौड़ के महारानी झाली तथा उनकी पुत्रवधु मीरा की काशी यात्रा तथा रैदास की शिष्यता स्वीकार करने का चित्रण है। वे उन्हें चित्तौड़ गढ़ आने का निमंत्रण देती है। तेरहवां खण्ड में रैदास चित्तौड़ गढ़ जाते हैं, जहाँ उनके सम्मान में एक ब्रह्म भोज का आयोजन किया जाता है। लेकिन ब्राह्मण रैदास के साथ बैठकर भोजन नहीं करना चाहते। इससे अपमानित होकर रैदास रांपी घोंप कर आत्महत्या कर लेते हैं।

४.३.१.७ एक दलित डिप्टी कलेक्टर (२००२)

हिन्दी दलित साहित्य में रूपनारायण सोनकर ने एक चर्चित नाटककार, कवि, कहानीकार के रूप में अपनी पहचान बना लिया है। 'एक दलित डिप्टी कलक्टर' उनके द्वारा लिखा हुआ एक प्रसिद्ध नाटक है। खल-छल-नीति, विषधर, महानायक, समाज-द्रोही, छायावती आदि उनके अन्य नाटक है। नाटक के अलावा उन्होंने कहानी, कविता, उपन्यास एवं आत्मकथा भी लिखे है। जहरीली जड़ें, सद्गीत, कफन, दूध का दाम (कहानी), खूबसूरत परियों का गलबहिया डास, यदि गीदड़ नेता होता (काव्य) डंक, सुअरदान, गटर का आदमी (उपन्यास) तथा नागफनी (आत्मकथा) आदि उनके प्रमुख रचनाएँ है।

इस नाटक में एक दलित डिप्टी कलेक्टर के माँ-बाप और उसकी पहली पत्नी एवं एक नाबालिग लडकी की कथा है। नाटक का आरंभ गाँव टीकमगढ़ के दलित मज़दूर सन्तू के बेटे रतनलाल के डिप्टी कलेक्टर होने के ख़बर से होता है। सन्तू ने दूसरे के खेतों में मजदूरी करके अपने बेटे को इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ाकर डिप्टी कलेक्टर बनाया है। सन्तू के परिवार के साथ गाँव के सभी लोग बहुत ख़ुश है क्योंकि गाँव से अब तक कोई भी इतने बडे पद पर नहीं आया है। लेकिन डिप्टी कलेक्टर बनते ही रतनलाल एक दम बदल जाता है। वह एक वरिष्ट आई.ए. एस अधिकारी की बेटी से दूसरी शादी कर लेता है। शादी में उसे एक कार व १५ लाख रूपये दहेज में मिलने हैं। डिप्टी कलेक्टर अपनी पहली पत्नी अनुसूईया और छः साल की नाबालिग बच्ची जानकी को बेसहारा छोड़ देता है तथा दोनों को घर से निकाल देता है। यहाँ तक कि अपने माँ-बाप व भाई को भी त्याग देता है। कभी भी उनको अपने पास नहीं लाता है। कभी भी उनकी सहायता नहीं करता है। बेटे के डिप्टी कलेक्टर होने के पहले व बाद में भी सन्तू दूसरों के यहाँ मजदूरी करते हैं। उनके सपने साकार होकर भी टूट जाते हैं।

अनुसूईया अपने बेटी को पढ़ाना चाहता है। इसलिए ठाकुर चतुर सिंह के खेतों में मजदूरी करने के लिए जाता है। वहाँ पर ठाकुर द्वारा उसके इज़्ज़त पर हाथ डालने की कोशिश किया जाता है। इसी बीच अनुसूईय चाकू से ठाकुर पर वार कर देता है तथा ठाकुर भी अनुसूईय पर वार कर देता है। ठाकुर का मौत हो जाता है साथ ही अनुसूईय भी अपनी इज्जत बचाते-बचाते मर जाती है। बाद में जानकी को मनुवादी समाज के लोग रन्डी बना देते हैं। वर्ष बीत जाता है। जानकी को एक दिन पुलिस पकड लेता है। उसे उसके पिता के ही सामने ले जाता है। जानकी से

उसके पिता का नाम पूछा जाता है। उसके उत्तर से रातनलाल मजिस्ट्रेट का असली चेहरा सामने आ जाता है। उस पर अलग से मुकदमा चलाता है। लड़की को रन्डी बनाने में जितना दोषी मनुवादी समाज है उससे ज्यादा उसका स्वयं का पिता है। इस तरह नाटक समाप्त हो जाता है।

४.३.१.८ **खल-छल-नीति** (२००७)

हिन्दी दलित साहित्य के चर्चित नाटककार रूपनारायण सोनकर लिखा हुआ नाटक है- खल-छल-नीति। यह नाटक समाज-द्रोही नामक नाट्य संग्रह से लिया गया है। एक दलित डिप्टी कलक्टर, विषधर, महानायक, समाज-द्रोही, छायावती आदि इनके अन्य नाटक है। खल-छल-नीति नाटक में उन्होंने ग्रामीण दबंगों द्वारा दलित औरतों का शोषण एवं उन पर ढाये अत्याचारों को इंगित किया है।

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु को नौ दृश्य में दिखाया गया है। इसमें सवर्ण ग्राम-प्रधान और उनके साथीयों द्वारा दलित शोषण एवं उत्पीडन के खिलाफ पढ़े-लिखे दलित युवा संकटा प्रसाद खटिक का संघर्ष की कहानी है। नाटक का आरंभ ग्राम प्रधान- सत्यनारायण त्रिपाठी, जूनियर हाई स्कूल के प्रधानाचार्य-जितेन्द्र यादव, प्राईमरी हेल्थ सेन्टर के डॉक्टर जोरावर सिंह के बातचीत से होती है। तीनों मिलकर गाँव के सरकारी अस्पाल में गरीबों को देने के लिए जो दवाईयाँ आयी थी उसे शहर के मेडिकल स्टोर में बेचकर अपना जेब बरा साथ ही स्कूल के लिए जो पैसा फर्नीचर खरीदने के लिए दिया था उसे भी हड़प लिया। इस तरह दलितों को सरकार की ओर जो सुविधायाँ दी जाती है उसका फायदा दलितों को मिलने के बजाय सत्यनारायण त्रिपाठी जैसे लोग हासिल कर लेते है। इस प्रकार दलितों का आर्थिक शोषण करने के बात अपने अधिकार का प्रयोग करके डरा-धमका कर

मासूम दलित लड़की सुनयना को सत्यनारायण त्रिपाठी ने रखैल बना रखा है। जब सुनयना वहाँ से बच निकलने की कोशिश करता है तो उसे मारकर लहूँ-लुहान कर देता है और उसके साथ छेड़खानी भी करता है।

इस तरह तीनों मिलकर गाँव के दलितों का शोषण एवं उन पर अत्याचार करता है। इन अत्याचारों के विरूध में प्रतिरोध के रूप में संकटा प्रसाद खटिक का चरित्र सामने आता है। जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय से एम.ए. समाजशास्त्र में पास होने के बाद अपना गाँव में लौट आया है। वे गाँववालों के सामने ग्राम प्रधान, डॉक्टर एवं प्रधानाचार्य का पोल खोलता है। गरीब दलितों को अपने अधिकारों से वाकिफ़ कराता है। साथ ही गाँववालों को खेती एवं मुर्गी पालन का व्यवसाय के लिए बैक से लोन लेने में मदद करता है। इस बीच में सरकारी आदेश से गाँव का ग्राम प्रधान पद दलितों के लिए आरक्षित किया जाता है। चुनाव में संकटा प्रसाद खटिक को खडा करने का निर्णय लिया जाता है। उसके विरूध सत्यनारायण त्रिपाठी ने अपने चहते एक दलित भगतू पासी को खड़ा किया। क्योंकि सत्यानारायण त्रिपाठी को मालूम ता कि यदि संकटा प्रसाद खटिक ग्राम प्रधान बन गया तो उसका हर काम चौपट कर देगा। लेकिन संकटा प्रसाद चुनाव जीत जाता है और ग्राम प्रधान बन जाता है। वह अपना ज्ञान का उपयोग करके गाँव को तरक्की की और ले जाता है। सत्यनारायण और उनके साथी अड़चनें उत्पन्न करने की कोशिश करते रहे लेकिन इन सब को पराजित करके वे अपने गाँव को विकास की दिशा में ले चलता है। अंत में संकटा प्रसाद पर सुनयना से अवैध संबंध का आरोप लगता है। उसके गर्भ की ज़िम्मेदारी संकटा प्रसाद पर डलता है और उसे ग्राम प्रधान के पद से हडाने के लिए त्रिपाठी आमरण अनशन पर बैठता है। लेकिन

सुनायना के बयान से सत्य सामने आता है कि उसके गर्भ की जिम्मेदार सत्यनारायण त्रिपाठी है। उस ने उसे ज़बरदस्ती से रखैल बनाकर रखा है। इसी से संकटा प्रसाद अरोप से मुक्त हो जाता है और अंत में गाँव में लाये विकास के लिए सरकार की तरफ से 'ग्राम विकास पुरुष' पुरस्कार भी दिया जाता है।

संक्षेप में कथावस्तु कुछ इस प्रकार है कि देश को आजादी मिले सालों हो चुके हैं लेकिन अभी भी स्कूल में बच्चे टाट-पट्टियों में बैठ कर पढ़ने को मजबूर हैं। डॉक्टर अस्पताल की सारी दवाईयाँ शहर के प्राइवेट मेडिकल स्टोरों में बेच देता है और लोगों को बाहर से ड्रवाइयाँ लेनी पड़ती है। स्कूल मास्टर सरकार से मिले पैसे को चट कर जाता है। इन दानों को गाँव के दबंग प्रधान की राह मिली होती है। तीनों मिलकर गाँव के निर्बलों पर अत्याचार करते हैं तथा कमजोर व बेसहारा नारियों का कई प्रकार से शोषण करता है। दलित बहुल इस गाँव में एक पढ़-लिखा नौजवान बाहर से शिक्षा प्राप्त करने के बाद गाँव आता है व गाँव की हालत देख कर प्रधान को समझाता है, लेकिन प्रधान अपनी दबंगती से बाज नहीं आता व तीनों मिलकर नौजवान की पिटाई कर देते हैं। फिर वक्त बदलता है व नौजवान को गाँव की ग्राम प्रधान चुन लेती है। नौजवान गाँव से भ्रष्टाचार को मिटाते हुए एक आदर्श प्रस्तुत करता है और गाँव की प्रगति होती है।

४.३.१.९ नंगा सत्य (२००७)

दलित नाट्य जगत में लेखिकाओं का नाम कम ही सुनने को मिलता है। लेकिन सुशीला टाकभौरे जी ने अपनी लेखनी से यह स्थापित कर दिया है कि अब इस अवस्था में बदलाव आएगा। उन्होंने अपने नाटक 'नंगा सत्य' के जरिए महिला नाटककार के रूप में अपनी काबिलियत की पहचान दिया है। इसके पूर्व भी रंग

और व्यंग्य नाटक संग्रह और एकांकी लेखन उन्होंने किया है। नंगा सत्य नाटक में उन्होंने सदियों से शोषित अवस्था में रखे गए दलित समुदायों की अमानवीय दशा का प्रस्तुत किया है।

इस नाटक की कथावस्तु सात परिदृश्यों में चित्रित किया है। यह एक गाँव की कहानी है। यहाँ नाटककार कृपाशंकर और सूत्रधार कमल रहते हैं। गाँव के दलित-पिछड़े के सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक शोषण को दिखाने के लिए सफल दृश्य योजना और पात्र योजना की गई है। दलित शोषण से मुक्ति का मार्ग फुले-अम्बेडकर विचारधारा बताया गया है।

प्रथम परिदृश्य के आरंभ में नाटककार कृपाशंकर और सूत्रधार कमल के बीच एक नाटक खोलने के संबंध में विचार-विमर्श होते हैं। नाटक के अंदर नाटक (Play within the play) शैली से कथ्य आगे बढ़ती है। बुद्धिराम, सुखराम, सुनीत, शेखर आदि पात्रों का मंच पर प्रवेश होता है। कमल ने सूत्रधार के रूप में की उद्घोषणा के प्रतिक्रिया स्वरूप, वे 'नंगा सत्य' खोजने हेतु परिक्रम करते है। इस बीच उनके आपसी बातचीत से गाँधी तथा अम्बेडकर के विचारों का तुलना किया जाता है। नाटक में ठाकुर धनसिंह और उसके बेटे सत्यजीत सिंह के चरित्रों का परिचय होता है, जो शोषक वर्ग प्रतिनिधि हैं। यहीं से संघर्ष का आरंभ होता है, जो नाटक की गति को बढाता है। परिदृश्य दो की शुरूवात रामपुर के चौपाल में चल रहे ठाकुर धनसिंह और ठाकुर सत्यजीत के राजनीतिक कार्यक्रम से होती है। ठाकुर धनसिंह अपनी उत्तराधिकारी के रूप में सत्यजीत को घोषित करता है। आगे किसानों, मज़दूरों, भंगी व चमार तथा नीलिमा के रूप में स्त्रियों पर अत्याचार, दमन, सोषण करते हुए सत्यजीत के रूप में सवर्ण समाज की मानसिकता को दर्शाया

गया है। परिदृश्य तीन का शुरूवात गाँव में बुद्धिराम और सुखराम के द्वारा, नीलिमा के चीख्ने-चिल्लाने की आवाज को अनसुना कर देता है। यहाँ आम आदमी का सामाजिक यथार्थ या बेबसी का चित्रण है। अपराधी और पुलिस दोनों के डर से आम आदमी बेजुबान ही नहीं, बेजान भी बन जाता है। इस तरह शोषण के कई रूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

परिदृश्य चार के आरंभ कृपाशंकर व कमल के आपसी बातचीत के माध्यम से यह ज्ञात होता है कि समय बदल गया है लेकिन समस्याएँ वही है। शोषण आज भी जारी है, उस में कोई बदलाव नहीं आया। ज़मींदारों की ज़मींदारी अब नहीं रही फिर भी ताकत और रूपयों के बल पर सवर्ण जातियों के लोग दलितों का शोषण करता है तथा उनके बहु-बेटियों के साथ बलात्कार करता है।

इसी दृश्य में आस्या का शोषण करनेवाले, अंधविश्वास बढ़ाने वाले अधोरी बाबा का चरित्र दलित समाज का कैसे शोषण करता है, इस पर भी प्रकाश डाला गया है। यहाँ इस परिदृश्य समाप्त होता है। परिदृश्य पाँच में नाटक की चरमसीमा निहित है। दलित-पीड़ित जनता में नई चेतना पनपती है। दृश्य के आरंभ में कृपाशंकर स्कूलों में फैली अस्पृश्यता व भेदभाव की भावना के संदर्भ में बताता है। इसके बाद सभी दलित व्यक्ति अपना-अपना परिचय देते हुए भेदभाव भरे समाज को नकारते हुए शोषक समाज के प्रति विद्रोह का डंका बजाते हैं। इसी संदर्भ में सुनीत कहते हैं- "साथियों, सदियों बीत गई हैं, जुल्म अत्याचार सहते-सहते। अब सब्र की हद टूट रही है। हम दलित समझने लगे हैं- अपने ऊपर होने वाले अन्याय अत्याचार को, जातिभेद और अपमान को। अब हम चुप नहीं रह सकते। हमारी आनेवाली पीढ़ीयों को हम यह सब नहीं सहने देंगे। हम चीख्-चीख् कर बतायेंगे अपना दर्द,

अपनी पीड़ा। हम अपने लिए न्याय का रास्ता खुद बनायेंगे। अब कोई भी हमारा अपमान नहीं कर सकता...।"[13] इसके पश्चात् नीलिमा और भक्तिन के संवादों के माध्यम से धर्माचारियों का पाप-पाखंड को हमारे सामने चित्रित करता है साथ ही भक्तिन और पंडित के अनैतिक संबंध तथा काम-विकृत का चित्रण भी किया गया है।

परिदृश्य छः में नाटक की रचना और उसके दृश्य के बारे में कृपाशंकर और कमल के बीच चर्चा होती है। भक्तिन और पंडित के अवैध संतान के बारे में चर्चा होती है, तभी नीलिमा बच्ची को लेकर आती है। नीलिमा अनाथालय से बच्ची को दत्तक लेकर, एक कुवारी माँ या जो बिनयारी माँ के सम्मान से जीना चाहती है। दलित माज के व्यक्ति समाज सेवा में लगकर अपने प्रमुख लक्ष्य से किस प्रकार भटक जाते हैं इस ओर भी इस दृश्य में संकेत किया है। आगे कमल-कृपाशंकर नाटक के बारे में चर्चा करते हैं। वे निडरता के साथ नाटक को अंतिम रूप देने का निर्णय लेते है।

परिदृश्य सात में दलित, पिछड़ों व बहुजन समाज आदि का डॉ. अम्बेडकर आंदोलन से जुड़ना तथा भविष्य संबंधी समाज की कल्पना को दर्शाया है। परिदृश्य के आरंभ में हवलदार शुक्ला आता है। स्वयं को मूलनिवासी कहने वाले दो विद्रोही को वह ढूंढ रहा है। वे दोनों विद्रोही अम्बेडकरवादी हैं, जिनकी नकेल कसने के लिए शुक्ला आया है। दरअसल में सवर्ण समाज की मानसिकता का प्रभाव प्रशासन अधिकारियों पर किस प्रकार हावी है, उसे यहाँ रेखांकित किया गया है। इसके पश्चात् दलित व बहुजन समाज को उसके अधिकार दिलवाने हेतु रणनीति बनाई

---

[13] नंगा सत्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.46

जाती है। इस समय अपने अधिकार हेतु सचेत हुए चमारों के टोली में आग लगया जाती है। दलित विद्रोही लोगों के मन, प्रतिशोध पर उतारू होते हैं, तब नीलिमा उन्हें समझाती हैं- "किसी को जलाना-मारना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम तो केवल अपने अधिकार चाहते हैं- समता का अधिकार...।"[14] इस के बात सब मिलकर इसके विरुद्ध संघर्ष करता है। सारा दलित समाज लोकतांत्रिक तरीके से आंदोलन के लिए खड़ा होता है। गाँव के दलित जागने लगते हैं। डॉ. अम्बेडकर की प्रेरणा से चेतना का निर्माण होता है। परिवर्तन का आंदोलन सकारात्मक ढंग से खड़ा करने के प्रयास किये जाते हैं। सत्यजीत बंदूक लेकर हिंसा पर उतर आता है। पहले कि तरह पुलिस अब सात नहीं देता क्योंकि दलित पढ़-लिखकर बड़े अधिकारी बन गये है। सुनीत और शेखर पर हमला करने के आरोप में शुक्ला सत्यजीत को गिरफ्तार कर लेता है। अंत में धनसिंह अपनी हार और अम्बडेकरी दर्शन के विचारों की महत्ता स्वीकार करता है। फुले-अम्बेडकर की जयजयकार और दलित जागृति के गति से साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

४.३.१.१० रंग और व्यंग्य (२००६)

कथाकार, कवि, वैचारिक लेखिका के रूप में डॉ. सुशीला टाकभौरे जी का नाम हिन्दी दलित साहित्य जगत अपना स्थान बना लिया है। उनके प्रमुख रचनाएँ स्वाति बूंद और खारे मोती, यह तुम भी जानो, तुमने उसे कब पहचाना, हमारे हिस्से का सूरज (काव्य संग्रह), अनुभूति के घेरे, टूटता वहम, संघर्ष (कहानी संगह), नंगा सत्य, रंग और व्यंग्य (नाटक) आदि। रंग और व्यंग्य नाटक में जातिगत भेदभाव से

[14] नंगा सत्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.63

उत्पन्न असमानता की सामाजिक समस्याओं पर प्रहार किया है, साथ ही उनके निराकरण का सरल और महत्वपूर्ण मार्ग सुझाया है।

'रंग और व्यंग्य' नाटक तीन अंकों व कई दृश्यों में फला हुआ है। अंक एक के पहले दृश्य में दलित समाज की स्वाभिमानी नारी के व्यवहार व बदल चुके सामाजिक नियमों को चित्रित किया है। पटेल के बेटे की शादी में छब्बो अछूता खाना माँगती है, जिसे न मिलता देख वह पटेल से अपने स्वाभिमान हेतु उससे मिली जूठन को उसी के द्वार पर पटक देती है। छब्बो के अनुसार टोकरे में जो जूठन है वह उसके जानवरों के लिए लिया है तथा अपने बच्चों के लिए उसे अछूता खाना चाहिए। इस दौरान पटेल उसे अपने लटैत व पहलवान के द्वारा डराने का प्रयास करता है। मगर निर्भय होकर छब्बो वहाँ अड़ी रहती है, जिससे परिवर्तन की आहट द्रष्टव्य है। दृश्य के अंत में पटेल, लठैत व पहलवान के साथ जूठन तथा अछूता खाना लेकर छब्बो के घर जाना पड़ता है। लेकिन इसमें पटेल की स्वार्थ भावना देख सकते है। दृश्य दो में छब्बो की माँ छऊआ अपने गाँव में मंदिर बनवाता है तथा मूर्ति की स्थापना करती है। दृश्य तीन में मंदिर में पूजा-पाठ क चित्रण किया गया है।

अंक दो के पहले दृश्य में छब्बो और उसकी बेटी शालू के आपसी बातचीत के माध्यम से नाटककार ने दलितों के पृथक मंदिर के लाभ पर प्रश्न चिह्न लगाती है। छब्बो कहते है कि 'ऐसे मंदिर बनवाने का भी कोई लाभ नहीं है। इससे ज्यादा यह अच्छा होता...इन्हीं रूपयों से वह अपने जात-समाज की भलाई करती... माँ-बाप की गरीबी के कारण, जो बच्चे नहीं पढ़ रहे हैं, उनके पढ़ने की व्यवस्था करती, बेरोजगारों के रोजगार के लिए कोई काम-धन्धा शुरू करवा देती, तो लोग उसका

नाम लेते, उसका एहसान मानते...[15] छब्बे की यह बात पुरे दलित समाज का मार्गदर्शन करती है। दृश्य दो में खेल-प्रतियोगिता का दृश्य व उसमें शालू के बढ़िया प्रदर्शन का चित्रण है। दृश्य के अंत में शालू अपने गुरुजी के कहने पर सहेली हेमलता की मैसी के घर जाना दिखाया है। दृश्य तीन में हेमलता की मैसी के घर का दृश्य है। जहाँ सबको पानी पिलाते हुए मौसी उनका परिचय पूछती है। जैसे ही वह शालू का परिचय जान लेते है उसकी तरफ बढ़ाया पानी का गिलास पीछ खींच लेती है और कहती है "तुमको तुम्हारी जात मालूम है या नहीं? तुम अछूत हमारे घर में कैसे आ सकती हो?"[16] यहाँ उस भेद-भाव का चित्रण किया है जो दलित समाज सदियों से झेलते आ रहे है और उस में आज भी कोई परिवर्तन नहीं आया है।

अंक तीन, दृश्य एक में अम्बेडकरवादी चिंतन से प्रभावित दलित समाज के व्यक्तियों में आ रही जाग्रति व विद्रोह भावना के साथ-साथ शोषक सवर्ण समाज के व्यक्तियों की असलियत का चित्रण किया गया है। शालू अपने मामा के घर पहुँचता है, जहाँ उसके मामा की बेटी मालती उसकी उपस्थिति से खुश होती है तथा अपनी माँ से कह कर बाजार चली जाती है। रास्ते में प्यास लगने पर एक कुएं से पानी पीने की ज़िद करती है, मालती पानी पीने लगती है और बाल्टी गिरने के आवाज सुनकर खिमिया आती है। दोनों वहाँ से भाग जाते हैं। खिमिया उन्हें डांटता हुए मालती की माँ से शिकायत करती है। मालती को माँ से मार पड़ती है। अचानक छब्बो का आगमन वातावरण में बदलाव लाता है तथा ऐसी रूढ़िवादी परंपराओं व मान्यताओं का विरोध करती हुई वह जाग्रत होने की बात करती है। उसके बातें से प्रभावित होकर उसकी माँ छऊआ भी मंदिर को पाठशाला में परिवर्तित कर देने का

---

15 रंग और व्यंग्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.25

16 वहीं, पृ.29

निर्णय लेती है। अंत में हृदयपरिवर्तन की बात कहनेवाले सवर्ण लोगे की असली चेहरा दिखकर कर दलित जागृति के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

४.३.१.११ एक बार फिर (२००२)

'एक बार फिर' नाटक के रचयिता युवा लेखक सुनील कुमार 'सुमन' है। देशभर की प्रतिष्टित पत्रिकाओं में इनके रचनाएँ छपते रहे है। बाल साहित्यकार के रूप में इनका कार्य प्रशंसनीय है। 'दोस्ती' इनका बाल कथा संग्रह है। इनका नाटक 'एक बार फिर' और 'अपनी जात' को हिन्द आकदमी (दिल्ली सरकार) द्वारा पुरस्कृत है। ब्रह्मन्याय इनके द्वारा लिखा एकांकी है तथा 'बाल मनोविज्ञान और प्रेमचन्द का कथा साहित्य' इनके आलोचनात्मक ग्रन्थ है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत एक लोकतांत्रिक राज्य बना और अपनी एक संविधान स्थापित हुआ। अम्बेडकर के अध्यक्षता में संविधान बनाया गया। तब से लेकर संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा एवं सहायता द्वारा दलितों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक उन्नमन प्राप्त हुए। आरक्षण और आर्थिक नीतिओं ने दलितों को इस समाज में कुछ हद तक आगे बढ़ने एवं स्वाभिमानपूर्ण ज़िन्दगी जीने का अवसर प्रदान किया। इससे चातुर्वर्ण्य- व्यवस्था द्वारा निर्धारित कई बंधनों से दलित मुक्ति पाने लगे। दलितों को उच्च शिक्षा प्राप्त होने लगे आफसर बनने लगे, राजनैतिक नेता एवं मंत्री बनने लगे। इन सब से सवर्ण सामंतवादी मानसिकता रखनेवाले लोग कुछ हद तक असंतुष्ट और अस्वस्थ होने लगे। वे दलित मुक्ति एवं विकास के खिलाफ षड़यंत्र रचने लगे। नाटककार ने इस नाटक में इन षड़यंत्रों का खुलासा किया है। किस तरह सवर्ण पंडित और राजनीतिज्ञ द्वारा सामंतकाल एवं हिन्दू

चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था का पुनःस्थापन और दलितों के अधिकार एवं स्वतंत्रता को भंग करने की योजनाएँ तैयार की जा रही हैं। इन तैयारीओं का बाँटा-फोट विभिन्न पात्रों के संवादों के जरिए किया है। इस नाटक में कोई एक संदर्भ नहीं बल्कि संवादों के जरिए दर्शकों को विभिन्न परिस्थितिओं से अवबोध कराते है।

इस नाटक में यह दिखाया गया है कि दलितों के उन्नमन के लिए सरकार ने जिन्न-जिन्न योजनाएँ तैयार किया है। उन सबी योजनाओं को भंग एवं स्थगित करने के लिए चिरकुण्ड बाबा और उसके चेले मंत्रीओं द्वारा किये जानेवाले कार्य का वर्णन नाटक में हुआ है। नाटक का आरंभ ढोंग संत चिरकुण्डा बाबा और अखिल भारतीय सनातन ब्राह्मण महासभा के जेनरल सेकरेटरी पं. मनसुखलाल शास्त्री को दलितों में आयी जाग्रति पर चिंतित दिखायी देता है। दलित समाज के लोग पढ़-लिखकर उनके बराबरी करने लगे है। इस लिए दलित समाज में आ रहे विकास को रोकने के लिए चिरकुण्डा बाबा अपने चेले मंत्रीओं को बुलाता है। ये सब मिलकर दलितों के विकास में बाधा उत्पन्न करने के लिए कई योजनाएँ बनाते हैं। जैसे- संविधान द्वारा दिये गए अधिकारों को समाप्त करना, दलितों के लिए आरक्षित सरकारी नौकरीओं का न भरना, शिक्षा क्षेत्र में प्राइवेटाइजसन लाकर आरक्षण खतम करना, शैक्षणिक पाठ्यक्रम में मनुवादी विचारधारा को प्रमुखता देना, दलितों की आपसी एकता और भाईचारे की भावना को नष्ट करना, दलित समाज को राजनीतिक ताकत बनने से रोकना, इस तरह दलित समाज की प्रगति के हर रास्ते को बंद करने का षड़यंत्र रचा जा रहा है। इस प्रकार एक बार फिर पहले जैसे सामंतवादी समाज की स्थापना किया जाए। यही इस नाटक का कथ्य है।

४.३.१.१२ रास्ते, चोर रास्ते

'रास्ते, चोर रास्ते' नाटक मराठी के ख्याति प्राप्त नाटककार प्रो. दत्त भगत के नाटक 'वारा पठवारा' का हिन्दी अनुवाद है। १९८६ में थिएटर अकादमी पुणे द्वारा आयोजित लेखकों की कार्यशाला में इस नाटक का लेखन, वाचन तथा मंचन हुआ। इसका दूसरा मंचन संगीत नाटक अकादमी द्वारा औरंगाबाद में आयोजित नाट्य महोत्सव में हुआ। इस नाटक में मौजूदा दलित समस्या और संघर्ष का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

हम जितने भी आधुनिक बने, फिर भी समाज में कुछ चीज़े रह जाती है, जो बीच-बीच में काँटे को तरह हमारे आधुनिकता के पैरों को चुभती रहती है। पुराने ज़माने से दलितों को कई तरह के अन्याय और अत्याचार का शिकार बनना पडा। बाबा साहेब अम्बेडकर के नेतृत्व में चलायी गई दलित आंदोलन से दलितों में जागृति आयी। अम्बेडकर ने ही दलितों को संवैधानिक बराबरी दिलाई। दलित में से बहुत लोग पढ़कर बडा स्थान ग्रहण किया। लेकिन पुराने जाति-पाँति की मानसिकता का जो कट्टरपन है, वह आज भी स्वयं को आधुनिक कहे जानेवाले के अंदर छिपा हुआ है।

प्रस्तुत नाटक में मिलिंदनगर में होनेवाले घटनाओं के सहारे नाटककार ने वर्तमान समाज में दलितों पर हो रहे अत्याचारों और उसके विरुद्ध दलितों के संघर्ष का चित्र प्रस्तुत करना कोशिश किया है। नाटक में प्रत्येक पात्र का अपना महत्व है। इसका एक मुख्य पात्र है- सतीश गाडेघाटे। दलित जाति के होते हुए भी उसके काका ने अच्छी तरह उसकी पढाई करवा दी थी। वह अब कॉलेज के प्राध्यापक है। सतीश के काका बौद्ध धर्म पर विश्वास करते हैं और बाबा साहेब अम्बेडकर व उनके

विचारों का बडा आदर करते हैं। सतीश का विवाह एक ब्राह्मण युवता हेमा से होता है। काका हमेशा हेमा को उसकी जाति के नाम से चिढ़ाते हैं। तब हेमा गुस्सा होती है तो काका बाबा साहेब अम्बेडकर का वचन बताते हैं-'जो जाती ही नहीं वह है जात'।

काका के आयोजन में एक बौद्ध बिहार की स्थापना करनेवाला है। इसकेलिए उसके साथ कई लोग हैं, सतीश के शिष्य अर्जुन भी इसमें शमिल है, जो कॉलेज में बी.ए. पढ़ता है। अर्जुन गर्म स्वभाव का युवक है। बौद्ध विहार की स्थापना के साथ उसका एक लक्ष्य यह भी है कि सरकार द्वारा बाढ़ पीडितों के लिए बनाये गये मकान को कब्जा करके सभी झोपड़ पट्टी वाले दलितों और बाढ़ पीड़ितों को दी जाएँ। कॉर्लान के मकान तैयार हुए लगभग एक महीना बीत चुका है लेकिन काम पूरा करके बंटवारे की कोई हलचल दिखाई नहीं पड़ रही थी। इसलिए अर्जुन ताला तोड़कर भीमनगर के सभी बाढ़ पीड़ित लोगों को इन मकानों में बसा देते है। अर्जुन ने यह पहचान लिया था कि इस मकान के कॉन्ट्रॉक्टर पवार को बाढ़ पीड़ितों के नाम पर वहाँ अपने रिश्तेदारों की भरती करने का उद्देश्य था। इसलिए सरकार की अनुमति न मिलने पर ताला तोडकर अर्जुन ने वहाँ गरीबों को बसा लेता है।

दासराव गुरुजी कॉलेज के और एक प्राध्यापक हैं, जो ब्राह्मण है। इस मिलिंदनगर के मामले में वह पवार को सहारा देता है। दासराव अपने को प्रगतिशील मानते है, फिर भी उसके मन में जाति की जड़े अब भी टूटा नहीं है। जब सतीश उससे किराये पर घर पूछता है तो वह घर नहीं देता है। और बहाना बनाया अछूत सतीश के परिवार को घर देने से उसके अन्य किरायेदार घर खाली कर देगा।

दासराव पुत्री सोनल अर्जुन से प्यार करती है। सोनल द्वारा अर्जुन को लिखी चिट्ठियों से दासराव को इसका पता चलता है। लेकिन इसके बारे में वह सोनल से कुछ भी पुछता नहीं है, क्योंकि वह अपनी लड़की के सामने प्रगतिशील आदमी है, उसका प्रेम तिरस्कृत करने पर उसका प्रगतिशीलता का नकाब ऊतर जाएगा। वह उसकी शादी अरविंद देशमुख्र नामक एक ब्राह्मण लड़के से तय कर देता है। इतना ही नहीं अर्जुन को वह बुरी तरह गाली देता है- "तुम कितने भी पढ़ो लिख्रो फिर भी तुम्हारी आदतें नहीं जाने वाली-सभ्यता नाम की चीज़ तुम लोगों को मालूम ही नहीं। ....तू अपनी अक्ल अपने पास ही रख्र मेरी लड़की की तरफ आँख्र उठाकर देख्रने की कोशिश भी की तो आँख्र ही निकालकर हाथ में रख्र दूँगा।"[17] इतना ही नहीं, वह उससे हेमा के बारे में भी बुरी तरह से बाते करता है। आगे अपमान सहने की ताकत न रहने के कारण अर्जुन अपने प्रेम को भूलने के लिए विवश होता है।

मिलिंदनगर बनाने के नाम से अर्जुन वहाँ के लोगों से चंदा लेते थे। लेकिन वहाँ शेवंता नामक एक अछूत लडकी थी, उसका दो बार चंदा न देने के कारण बस्ती से निकाल देता है। आगे भीमनगर के लोगों के लिए बस्ती मिलने के लक्ष्य से अर्जुन के नेतृत्व में मॉर्चा निकालते है। कॉन्ट्रॉक्टर पवार ने भी लोगों को इकट्ठा करके इसके विरुद्ध मॉर्चा निकालता है। सतीश अर्जुन को इस मोर्चे से रोकने का प्रयास करता है, लेकिन वह नहीं मानता है। मोर्चों में दंगा होता है और मिलिंद नगर की बस्ती के घरों से सामान सड़क पर फेंक देती और बस्ती को आग लगाई जाती है। दंगों में पडकर शेवंता की मृत्यु होती है। सब लोग अर्जुन को इसका जिम्मेदार ठहराता है। काका इससे बहुत दुःख्री होते हैं और उसकी मृत्यु हो जाती

---

[17] रास्ते चोर रास्ते- प्रो. दत्त भगत, पृ.546

है। कॉलेज के अन्य लडके अर्जुन को कॉलेज से निकालने का नारा लगाता है। इस समय केवल सतीश ही अर्जुन के पक्ष में था। अंत में कोर्ट अर्जुन को निर्दोषी घोषित करता है।

आगे जिन लोगों को ढंग फसाद करने केलिए पकडता है, उन सभी मुल्ज़िम को छोड देते है। इससे जुडकर दंगा फसाद हुआ और चौराहे पर यदाकदा मारपीट हुई। इसके बीच पड़कर सोनल गायब होती है। उसके पिता यह विश्वास रखता है कि अर्जुन ने ही सोनल को भगाया है। लेकिन अर्जुन आकर यह खबर देता है कि सोनल दासराव के घर में सुरक्षित है। अर्जुन द्वारा अपनी पुत्री के जान बचाने में दासराव बहुत ही संतुष्ट होता है। अर्जुन को सोनल के विवाह के बारे में सोचकर अब दुःख नहीं है, क्योंकि उसको लगता था कि यदि वह सोनल से विवाह करते तो उसके प्रेम में वह अपने आंदोलन को, अपने संघर्ष करे भूल जाएगा। अर्जुन सतीश से बताता है कि "अगर आंदोलन में उतरना है तो कीमत चुकानी पड़ती है।"[18] आगे सतीश और हेमा अर्जुन की अच्छाईयों को पहचानते हैं और अर्जुन को ज़मानत लेने के लिए दोनों साथ चलते हैं। वे पहचानते है कि समय के अनुसार नये-नये अंकुर को ही संभालना होता है, उसे किनारे पर रहकर नहीं, उसके साथ-साथ हाथ मिलाकर जाना चाहिए।

४.३.१.१३ कोर्ट मार्शल (१९९१)

स्वदेश दीपक हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार एवं नाटककार है। नाटककार के रूप में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। बाल भगवान, सबसे उदास कविता, कोर्ट मार्शल आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। उनके सबसे मशहूर नाटक है –

[18] रास्ते चोर रास्ते- प्रो. दत्त भगत, पृ.582

कोर्ट मार्शल। सदियों से तथाकथित छोटी जाति पर ऊँची जातिवालों के द्वारा किये जानेवाले बहुस्तरीय अन्याय, अत्याचार और शोषण का चित्र इसमें प्रस्तुत किया गया है।

दो अंकों में विभाजित 'कोर्ट मार्शल' नाटक में नाटककार स्वदेश दीपक ने भारतीय सेना में पनप रहे दलित अत्याचार के जरिए वर्तमानकालीन समाज को उसके पिछड़ेपन की याद दिलाता है। प्रथम अंक में घटना और समस्या का विस्तार है। द्वितीय अंक में संघर्ष का चरमोत्कर्ष और अंत है। पात्रों की वास्तविकता, यथार्थ जगत्, कौतूहल, जिज्ञासा की अनुभूति जहाँ क्रूर सत्य से सीधे साक्षात्कार है वहाँ कोर्ट मार्शल नाटक की मौलिकता है। क्रूरता और करुण का अद्‌भुत समन्वय नाटक में देखा जा सकता है। नाटक का नायक रामचंदर है। सैनिक रामचंदर लगातार अपमानित किया जाता है, क्योंकि वह छोटी जाति का है और ऊँची जाति के दो अफसरों के कारण अपनी ज़िन्दगी की बरबादी को सहते-सहते जाति प्रथा से घृणा करते हुए उन लोगों पर प्रतिशोध करता है। एक दिन अपमान की बाँध अनुशासन की बाँध को तोड़ देती है। प्रतिशोध की उत्तेजना में वह कैप्टन वर्मा को मार डालने और कैप्टन कपूर पर गोली चलाने तथा कातिलाना हमला करने के अपराध में पकड़ जाता है। तब चलने वाले फौजी मुकदमे या कोर्ट मार्शल की सुन्दर एवं रोचक कहानी ही नाटक का मूलाधार है। नाटककार ने नाटक में भारतीय सेना जिस पर हर व्यक्ति को, देशवासी को गर्व है, उस सेना में होनेवाले अमानवीय अत्याचारों और जातिगत छुआछूत की सडियल मानसिकता को बड़ी दिलचस्प ढंग से हमारे सामने बेपर्द किया।

नाटक के पहले अंक में कोर्ट मार्शल के पहले दिन का वर्णन है। इसमें सभापति जज कर्नल सूरत सिंह, अपराधी रामचंदर, सरकारी वकील मेजर अजय पुरी, बचाव वकील कैप्टन बिकाश राय, जज एडवोकेट, सलाहकार जज तथा अन्य जज और गवाह के रूप सुबेदार बलवान सिंह, डॉक्टर कैप्टन गुप्ता, कैप्टन बी. डी. कपूर, लैफ्टीनेंट कर्नल बजेंद्र रावत, गार्ड आदि उपस्थित है। रामचंदर के ऊपर कोर्ट मार्शल की कार्यवाही शुरू की जाती है। मेजर पुरी गवाह के रूप में रेजिमेंट के सूबेदार बलवान सिंह को बुलाया और दस जून की रात नौ बजे यानी हादसे के दिन के बारे में पूछा। इसके उत्तर में बलवान सिंह ने कहा कि उस गार्ड ड्यूटी पर रामचंदर था। उस रात कैप्टन वर्मा और कैप्टन कपूर मोटरसाइकल लेकर वहाँ पहूँचे। जब मोटरसाइकल गार्ड के पास पहुँची तो रामचंदर ने गोली चलाई थी। पहली गोली कैप्टन वर्मा को लगी। मोटरसाइकल सड़क से नीचे उतर कर एक पेड़ से टकराया। जब मोटरसाइकल जमीन पर लुढ़क रही थी तो रामचंदर ने दूसरी गोली चला दी। इसके बाद बलवान सिंह से बचाव वकील बिकाश राय प्रश्न पूछते है। फिर कोर्ट में गवाहों के रूप में डॉक्टर कैप्टन गुप्ता और लफ्टीनेंट कर्नल ब्रजेंद्र रावत को बुलाया। इन दोनों से पूछे गये सवालों एवं उत्तरों से हमें पता चलता है कि रामचंदर से कैप्टन कपूर क्यों घृणा करते थे।

रामचंदर निम्न जाति के थे और कैप्टन कपूर के मन में निम्न जातियों के लोगों को लेकर घृणा का भाव था और वे अपने वंश पर बहुत गर्व करता था। इस बीच पाँच हज़ार मीटर की दौड़ में रामचंदर ने कैप्टन कपूर को हरा दिया। इस से असली संघर्ष शुरू होता है। रामचंदर के पहले इस दौड़ में कैप्टन कपूर का वर्चस्व था। उन को ऐसा लगता है कि अगर रामचंदर ने पाँच हज़ार मीटर दौड़ में उत्तरी

कमान के खेलों में जीत ली तो मेरा क्या होगा। इस डर के कारण वह बलवान सिंह से कहकर रामचंदर को अपनी अर्दली के रूप में ले लेता है। सबेरे-शाम अभ्यास के समय उसे घर के काम में लगाया जाता का और खुद दौड़ने की प्रेक्टीस भी नहीं करता था। बल्कि अधिक से अधिक शराब पीते रहता है। पत्नी को पीटता है। इसी बीच अपने परिवार के बारे में बिकाश राय का विवरण सुनकर कैप्टन कपूर झटके से अपनी जगह पर खडा होता है। वह चीख-चीखकर बोलना शुरू कर देता है। इस समय सूरत सिंह गार्ड से कैप्टन करूर को उसकी जगह पर बिठाने को कहा। इस दृश्य से पहला अंक समाप्त होता है।

दूसरे अंक का आरंभ बिकाश राय के भाषण से होता है। पहले अंक के अंत में कैप्टन कपूर ने बिकाश राय को नक्सलवादी कहा, उसके बारे में दूसरे अंक के आरंभ में बिकाश राय पुरा विवरण देता है। फिर गवाह के रूप में बलवान सिंह आता है। बलवान सिंह के बयान से हम समझ सकते है कि अर्दली बना रामचंदर को कैप्टन बी.डी. कपूर शारीरिक तथा मानसिक रूप में उत्पीडित करते थे। कैप्टन कपूर तथा उनके मित्र कैप्टन वर्मा रामचंदर को सब के सामने चूहड़ा और भंगी कहकर पुकारते थे। इसके अलावा एक दिन घर आये मेहमान की छोटी बच्ची ने टट्टी कर दिया। सब मेहमानों के सामने कैप्टन कपूर ने रामचंदर से टट्टी साफ करने को कहा लेकिन उसने इन्कार दिया। इससे भड़कर कपूर ने सब मेहमानों के सामने उससे कहा-"जात का चूहड़ा और टट्टी उठाने में शर्मा आती है। तुम्हारे पुरखे पुश्तो से हम लोगों की टट्टी की टोकरी सिर पर उठा रहे हैं।"[19] इस घटना के बाद रामचंदर की शिकायत पर उसे कैप्टन कपूर के अर्दली पद से हडाकर गार्ड

[19] कोर्ट मार्शल - स्वदेश दीपक, पृ.78

की ड्यूटी दी जाती है। मात्र दस दिन की प्रेक्टिस से रामचंदर ने दौड़ प्रतियोगिता में जीत जाता है। रामचंदर एशियाई प्रतियोगिता के लिए सेना के प्रतिनिधि रूप में चुना गया। इन सब कारणों से कैप्टन कपूर बाख़ैला गये थे। इस के बाद कैप्टन कपूर और कैप्टन वर्मा जब भी मौका मिलता रामचंदर को अपमानित करते रहते, उसे गाली देते रहते। इसी बात की परिणति यह होती है कि अंत में इन लोगों की गाली और अन्याय, अत्याचार से तंग आकर एक दिन रामचंदर इन दोनों पर गोली चलाता है।

मेजर पुरी के अनुसार रामचंदर ने दुनिया का सबसे कठोर अपराध किया है। इसलिए उसे फाँसी की सजा मिलनी चाहिए। नाटक के अंत में कर्नल सूरत सिंह ब्रिगेडियर बनने के ख़ुशी में और रेजिमेंट का रेजिंग डे के नाम पर एक बड़ा खाना हो रहा है। इसमें रामचंदर भी शमिल होते है। पार्टी में कैप्टन कपूर भी शमिल होता है लेकिन उसे चारों और जलील होना पड़ता है। ऐसी अपमान भरी स्थिति में वह ख़ुदकुशी कर लेता है। उसी वक्त सुरत सिंह ने रामचंदर से कहा-"जब दुनिया की अदालत इन्साफ न कर सके, तो कभी-कभी ऊपरवाला इन्साफ कर देता है। पोएटिक जस्टिस"[20] साथ ही कहा था है कि कल सुबह तुम्हें सजाए-मौत दूँगा। इस दृश्य के नाटक का अंत होता है।

४.३.१.१४ दलित (१९९८)

श्री नाग बोडस हिन्दी साहित्य के सुविख्यात कथाकार एवं सफल नाटककार हैं। उनके प्रमुख नाटक हैं- टीम टप्पर, कृति-विकृति, ख़ूबसूरत बहु, नर-नारी,

---

[20] कोर्ट मार्शल - स्वदेश दीपक, पृ.96

बीहड़, वसीयत, तोता झूठ नहीं बोलता, दलित आदि। श्री नाग बोडस का 'दलित' नाटक दलित जीवन की गंभीर समस्याओं को प्रस्तुत करनेवाला एक सशक्त नाटक है।

नाटक का शुरूवात भीतर के नाटक 'अब कहने की बारी है' की ड्रेस रिहर्सल से होती है। इस नाटक को 'युवा दलित मोरचे' के लोग अपने प्रचार के लिए कर रहा है। 'अब कहने की बारी है' नाटक के निर्देशक नवीन ऊँची जाति का है। जो अपने वामपंथी विचारों के कारण दलित मोरचे से जुड़ा हुआ है। सब मिलकर रिहर्सल आरंभ करता है। नाटक के सभी इकट्ठा होकर बाबा साहेब अम्बेडकर की तस्वीर के सामने गायन करते हुए नाटक शुरू करते है। इसमें नाटककार नाग बोडस ने एक नाटक अन्तर्गत दूसरे नाटक को प्रस्तुत किया है।

भीतर के नाटक 'अब कहने की बारी है' का लेखक रंगीलाल है। इस का कथावस्तु कुछ इस प्रकार है। भीतरी नाटक में भरोसी चमार एक दलित मज़दूर है, जिसके पास तीन बीघा ज़मीन है। फिर भी मज़ूरी करके पेट पालता है। उसने अपने बेटे मातादीन का कटोरी से शादी कराया। कटारी देखने में खुबसूरत है। उसके बारे में सुनकर गाँव के ज़मीन्दार गैंदासींग का मन मोहित हुआ। उसने भरोसी की बहू को घर से उठाया। भरोसी की खूब पिटाई की और उसका घर-बार तोड़ देता है। उसे लाठी से मारकर बेहोश कर देता है। भरोसी शिकायत लेकर थाना पहूँचता है। गैदासींग से कटोरी को पुलिस छुडाकर लाती लेकिन वहाँ से छुडाने के लिए भरोसी से दारोगा हज़ार रूपया मांगता है। जिस गैदासींग ने उसकी बहु को उठाया था, उसी से ही सौ के लिए ढाई रूपये व्याज़ के हिसाब से उसे रूपया लेना पडता है, वे भी उसकी भूमि गिरवी रखकर। इसी बीच पुलिस थाने में ही

दारोगा की अनुमति से दीनानाथ पंडित कटोरी का दैहिक शोषण करता है। यहाँ नाटककार ने पुलिस द्वारा दलितों पर किये जानेवाले अमानवीय अत्याचार और शोषण का चित्रण है। इस तरह तीन बीघा ज़मीन भी भरोसी को नष्ट हो जाता है। इस कारुणिक दास्तान को नाटककार ने भीतर के नाटक में प्रस्तुत किया है। साथ ही भीतर के नाटक द्वारा नाटककार ने दलित समाज से लोग झेल रहे बन्धुआ मज़दूरी को भी दिखाया है।

नवीन अब इस नाटक का रिहर्सल करवा रहा है। वह दलितों के मुक्तिकामी संघर्ष कर समर्थक है। वह कामरेड़ है और सवर्ण होने पर भी वह वामपंथी रुझान के कारण दलितों से मिला हुआ है। वह अपने को निर्देशक साबित करना चाहता है। उसे राजनीति से उतना सरोकर नहीं जितना नाटक से है। नवीन पहले अपने जीवन में हुई एक घटना के बारे में रिहर्सल की रूकावट के बीच में बता रहा है। वह कई परशानियों के बीच रिहर्सल कर रहा था। तब कटोरी की रेल के लिए लड़की मिलने की परेशानी सबसे बड़ी थी। लड़कियाँ आती हैं और जल्दी ही वापस जाती हैं। इस बीच दुल्लपुर के घंटाघट चौक पर एक घटना घटती है। कल्लू नामक मोची बैठकर जूती की मरम्मत कर रहा था। तदवसर आये टंडन मिश्रा के गुंडों ने कल्लू मोची को बूरी तरह पिटता है। यह देख्रकर नवीन और उनके साथी गुंडों को मारकर भगा देते हैं। रामचरण कहता है कि दलित मोर्चा के लोगा किसी की धमकी से पीछे नहीं हटता, तुम लोग शामिल हो दलित मोर्चा में और हम दलित मिलकर ऐसे गुंडों से निबटेंगे। मीना पिता की पिटाई की बात सुनकर वहाँ पहूँचती है। नवीन की नज़र तभी कल्लू की पुत्री मीना पर पड़ती है और उसे नाटक में

कटोरी की रोल करने के लिए भेजने की बात कल्लू से करती है। आखिर नाटक करने केलिए मीना मान जाती है।

टंडन मिश्रा के गुंडों से निपटने के लिए दलित मोर्चा के लोगों का सहायता यादव करता है, जो अगड़ी जाति का नेता है। तीस-पैंतीस सालों से वह राजनीति के मंजे हुए खिलाड़ी है। दलितों पर जब टंडन-मिश्रा के गुंण्डों का अक्रमण होता है। तब युवा दलित मोरचे के रामचन्दर आदि उसकी पिटाई करके खूब मरम्मत करते हैं। एन वाक्त पर आकर यादव दलितों का हिमायती और हिफ़ाज़तदार बन जाता है। उसका उद्देश्य दलितों का वोट कमाना रहा है। नाटक के दूसरा अंक में नाटक एक दम नया मोड लेता है। क्रान्तिकारी युवा दलित मोरचे का रामचन्दर अवसरवादी बन जाता है। वह टंडन से गठबंधन बनाकर, उस के सहारे विधायक बन जाता है। टंडन भी रामचंदर के द्वारा दलित वोट हासिल कर के एम.पी बनना चाहता है। इसी बीच रामचन्दर के आदमी की पिटाई के कारण कल्लूराम मोची मर जाता है। उसकी बेटी पिता की लाश का संस्कार न करके अनशन में बैठती है तो दलित मोरचा भी उसके साथ होता है। बहुत दिनों तक अनशन चलता है लेकिन अंत में कुछ भी हासिल किये बैगर अनशन समाप्त करना पड़ता है। यहाँ पर नाटक भी समाप्त हो जाता है।

४.३.२ शिल्पपरक अध्ययन

शिल्पविधि नाटक के सबसे महत्वपूर्ण अंश है। शिल्पविधि शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'टेकनिक' शब्द के प्रयोग के रूप में होता है। 'टेकनिक' का सरल एवं स्पष्ट अर्थ है- "कला के विधान और उपकरणों की योजना का वह विधान, वह प्रक्रिया, वह ढंग, वह तरीका, जिसके माध्यम से नाटककार अपनी अमूर्त अनुभूति व

विचार धारा को नाटक के रूप में सर्वथा स्पष्ट मूर्त, व्यवस्थित एवं निश्चित रूपदान करता है, शिल्पविधि के द्वारा अस्पष्ट अनुभूति को स्पष्ट, सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण, अभिव्यक्ति देकर अपने लक्ष्य की पूर्ति में सफल होता है। शिल्पविधि के अध्ययन क्षेत्र में नाटक के कलापक्ष का ही मुख्यरूप से विवेचन होता है।"[21]

पात्र योजन एवं चरित्र चित्रण, संवाद और भाषाशैली, दृश्य योजना, उद्देश्य और अभिनय आदि शिल्पपक्ष के अंतर्गत आते हैं।

४.३.२.१ राम राज्य न्याय

४.३.२.१.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

पात्रों के रूप में नौ पात्रों का वर्णन किया है। मुख्य पात्र शम्बूक मुनि, तुंगभद्रा, राम, लक्ष्मण और वशिष्ठ है। नाटक के सभी पात्र पुराण से लिया गया है। नाटककार ने शम्बूक के चरित्र को बहुत ही प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। शम्बूक जुल्म के शिकार का प्रतीक नहीं बल्कि राम के वर्चस्ववाद के विरोध में खड़े विद्रोही पात्र बनकर उभरते हैं। शम्बूक के तर्क के सामने राम बेज़बान हो जाता है। नाटक में नाटककार ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगया है। राम को स्वार्थी, ब्राह्मण वर्ग की हिमायती के रूप में चित्रित किया है। तुंगभद्र को नाटककार ने अन्याय ने विरुध लड़नेवाली चेतनशील नारी के रूप में चित्रित किया है। इस प्रकार नाटककार ने पौराणिक पात्रों को नये सिरे से प्रस्तुत किया है।

---

[21] हिन्दी नाटकों की शिल्पविधि का विकास - डॉ. शन्दि मालिक, पृ.4

४.३.२.१.२ संवाद एवं भाषा शैली

अछूतानन्द जी ने नाटक में सरल भाषा का प्रयोग किया है तथा उन्होंने तत्कालीन गद्य और पद्य दोनों शैलियों का प्रयोग किया है। जैसे नाटक में मनुस्मृति की आलोचन करने के लिए गज़ल शैलि का प्रयोग किया है। देखिएः-

"निशदिन ये मनुस्मृति हमको जला रही है।
ऊपर न उठने देती, नीचे गिरा रही है।"[22]

नाटककार ने मार्मिक संवादों के जरिए राम को कठघरा में खड़ा कर देता है। देखिएः-

"शम्बूक मुनिः अपना वर्णाभिमान त्याग कर अनार्य आदि निवासी गुमराह निषाद को छाती से लगाया था, शबरी माता के झूठे वेर खाए थे, महावीर, सुग्रीव आदि को सखा बनाया था और असुरराज विभीषण को मिश्र बनाया था। परन्तु ये सब स्वार्थ के लिए तुम्हारा ठोंगे था। ...तुम ब्राह्मणों के अन्ध भक्त हो। लो मेरा सिर उतार लो।"[23]

संवाद में नाटककार ने अपमान और तिरस्कार का मुह तोड़ जवाब शम्बूक मुनि और उनकी पत्नी तुंगभद्र के द्वारा बड़े अनुठे ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। जैसेः-

"तुंगभद्रा : ...ओ निर्दयी! तुने वनवास के समय ब्राह्मणों के बहकाने से असंख्य आदिवासियों को गजर-मूलीकी तरह काटा है। ...ओ जालिम! नारी वध करने से हिचकता क्यों? बचपन

---

[22] स्वामी अछूतानन्द हरिहर- डॉ. राजपाल सिंह राज, पृ.54
[23] वहीं, पृ.55

में तूने यक्ष काव्या ताडुका का वध किया था, वनवास के समय विधवा सूपर्नखा के कान-नाक काटे, राज सिंहासन पर बैठकर तूने अपनी गर्भिणी स्त्री सीता को निरपराधि करते हुए वन में निकाल दिया। ...आज मेरे हृदय में भी तलवार घसेड़ कर अपनी अमर कीर्ति संसार में कायम कर दे।"[24]

इस तरह मर्म को छूने वाले संवाद गद्य एवं पद्य शैली में रचे हैं कि दर्शक को राम के प्रति अपनी मानसिकता बदलने को प्रेरित करता है। भाषा में ब्रज भाषा, उर्दू ओर संस्कृत शब्दों का उपयुक्त रूप में प्रयोग किया है।

४.३.२.१.३ दृश्य योजना

राम राज्य न्याय नाटक पाँच दृश्यों विभाजित है। कथा-विकास के अनुसार दृश्यों का विभाजन किया गया है। प्रथम दृश्य राम राज्य में व्याप्त अकाल एवं उसके कारण का चित्रण है। दूसरे दृश्य में दण्डकारण वन में पंचपटी है, जहाँ राम ने वनवास के समय का स्मरण करता तथा सीता हरण की स्मृति को ताजा करने का चित्रण है। तीसरे दृश्य में शम्बूक मुनि के आश्रम में शम्बूक मुनि और उनकी पत्नी तुंगभद्रा के परस्पर वार्तालाप से मनुस्मृति की आलोचन किया है। नाटक के सबसे मार्मिक दृश्य चौथा है। जिसमें शम्बूक मुनि एवं राम के बीच का तर्क और अंत में शम्बूक मुनि वध दिखाया गया है। पाँचवा दृश्य में दण्डकारण्य आश्रम में शम्बूक मुनि और तुंगभद्रा की समाधि स्थल पर शिष्य, आदिवासी सब मिलकर दोनों समाधियों पर फूल चढ़ाते हुए शोक गीत गाता है। इसी दृश्य के साथ नाटक समाप्त

[24] स्वामी अछूतानन्द हरिहर- डॉ. राजपाल सिंह राज, पृ.55

हो जाता है। इस प्रकार नाटककार ने कथावस्तु के स्थिति में निरंतर रखने के लिए विभिन्न दृस्यों का संयोजन किया है।

४.३.२.१.४ उद्देश्य

स्वामी अछूतानन्द हरिहर ने 'आदि हिन्दू' सिद्धान्त का प्रतिपादन करने और पौराणीक युग में दलित समाज पर हुए अन्याय, अनाचार एवं अत्याचारों से अवगत कराने के उद्देश्य से राम राज्य न्याय नाटक की रचना किया है। साथ ही रामायण के उपेक्षित पात्र शम्बूक के द्वारा राम के चरित्र की आलोचना करने का प्रयास भी किया है। इस नाटक के जरिए मनुस्मृति की आलोचना करना भी उनका लक्ष्य रहा है। इस नाटक में ऐतिहासिक पौराणिक अन्याय कथा को आधार बनाकर वर्तमान के अन्याय को नकारने, विरोध करने और एकजुट होने का संदेश दिया गया है।

४.३.२.२ धर्म परिवर्तन

४.३.२.२.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

नाटक के प्रमुख तत्वों में पात्र योजना एवं चरित्र का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय और पाश्चात्य नाट्यशास्त्रों में पात्र संबन्धित अनेक समानताएँ स्पष्ट दिखाई देती है। अरस्तु ने स्वीकार किया है कि चरित्र में सत्-असत् का भी कुछ अंश होना चाहिए। शास्त्र ग्रन्थों में उल्लिखित स्वभाव, श्रृंगार आदि के आधार पर नायक-नायिका का वर्गीकरण, खलनायक तथा अन्य पात्रों का विश्लेषण आज के संदर्भ में उतना महत्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि पात्रों के चरित्र चित्रण में भद्रता, औचित्य, जीवनगत् विश्वसनीयता तथा संगीत का अपना-अपना महत्व है। फिर भी बदलते

परिवेश में चरित्र चित्रण में बी विभिन्न रीतियों का समागम स्वाभाविक है। नाटक के संदर्भ में पात्र निस्सन्देह नाटक का आधार है और यही वस्तुतः चारित्रय को प्राप्त करता है। नाटककार इस पात्र में ही चरित्र भरता है।[25] इन पात्रों और उनके चरित्र के ज़रिए नाटककार प्रस्तुत नाट्य कृति में समाज और उसमें रहने वाले लोगों के आचार-विचार, संस्कृति, मानसिक व्यापार तथा सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

अतः मानव एक सामाजिक जीव होने के कारण तथा नाटक का मुख्य विषय मनुष्य और उसकी समस्याओं का होने के कारण उसमें समाज का भी चरित्र-चित्रण होता है। इसलिए समाज में लक्षित सभी व्यवहार और मनोव्यापारों को पात्रों के व्यक्तित्व और चरित्र में देखा जा सकता है। पात्र परिकल्पना एवं सृष्टि देश-काल, वेश-भूषा, भाषा आदि का ध्यान रखते हुए किया जाता है।

धर्मपरिवर्तन एक ऐतिहासिक नाटक है। अतः इस नाटक का हर एक पात्र यथार्थ और इतिहास से लिया गया है। प्रस्तुत नाटक के हर एक पात्र भारतीय जनता के मन में जीनेवाला पात्र है, जैसे डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, छत्रपति साहूजी, मुहम्मद अली जिन्ना आदि। इसलिए पात्रों का चरित्रांकन बहुत ही सावधानी से नाटककार ने किया है।

इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य अम्बेडकर के चरित्र पर प्रकाश डालना है। इसलिए नाटककार ने अम्बेडकर के चरित्र को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। इस नाटक में उन्हें दलितों के मसीहा, संविधान निर्माता, दलित जाति में पैदा हुए महान् विद्वान के रूप में चित्रित किया है। साथ ही उनके चरित्र में सहनशीलता, अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाना आदि गुण भी देखा जा सकता है।

---

[25] साहित्य का श्रेय और प्रेय- जैनेन्द्र कुमार, पृ.181

और इसमें गाँधीजी के चरित्र को एक अलग दृष्टिकोण से देखने का प्रयास नाटककार ने किया है। नाटककार ने पात्र योजना कथावस्तु के कार्य-संकलन, स्थल-संकलन और काल-संकलन के अनुसार किया है। उनका पात्र समाज में प्राप्त यथार्थवादी या जीवित व्यक्ति का प्रतिबिम्ब है।

४.३.२.२.२ संवाद एवं भाषा शैली

संवादात्मक होना नाटक का स्वरूपगत लक्षण है। संवाद ही नाटक की कथावस्तु, पात्र, अभिनय आदि को विकासोन्मुख करता चलता है। कविता, उपन्यास, कहानी की भांति नाटक में वर्णन का समावेश नहीं किया जा सकता है। इससे उसका प्रभाव कम हो जाएगा। आकर्षण एवं प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिए तो उन विधाओं में भी संवाद-शैली का उपयोग किया जाता है। नाटककार को जो कुछ कहना होता है, जिस विचार को, दर्शन को व्यक्त करना चाहता है, उसके लिए पात्रों के संवाद ही माध्यम होते हैं। आधुनिक नाट्य-समालोचना में संवाद को एक पृथक् तत्व के रूप में विश्लेषित किया गया है। नाटक में संवादों की योजना केवल वार्तालाप के लिए नहीं की जाती, अपितु उससे पात्रों के चरित्र, सभ्यता, संस्कृति और कुलमिलाकार समग्र नाटकीय वातावरण पर भी प्रकाश पड़ता है।

धर्म परिवर्तन एक ऐतिहासिक नाटक है। अतः नाटक में नाटककार ने ऐतिहासिक तथ्यों को आधार बनाकर संवाद योजना की है। इसलिए प्रस्तुत नाटक का संवाद प्रामाणिक तथा तथ्यात्मक है। विभिन्न संदर्भ में सफलतापूर्ण संवादों के ज़रिए नाटक को आगे बढ़ाया है। देखिएः-

"पूजारी : आप लोग यहाँ क्यों इकट्ठे हैं?

डॉ. अम्बेडकर : हम लोग यहाँ कालाराम का दर्शन करने आए हैं। हम कालाराम का रथ भी खींचेंगे और गोदावरी में स्नान भी करेंगे।

एक पूजारी : तुम अछूत लोग कालाराम का दर्शन कर, रथ खींचकर और गोदावरी में स्नान कर हिन्दुओं की बराबरी करना चाहते हो।

दूसरा पूजारी : हम ऐसा कदापि नहीं होने देंगे। ऐसा होने पर भगवान कालाराम अपवित्र हो जाएँगे और गोदावरी का जल भी अशुद्ध हो जाएगा।

डॉ. अम्बेडकर : आज हम दर्शन करके ही जाएँगे।"[26]

नाटककार ने संवादों के ज़रिए चरित्र निरूपण तथा कथावस्तु को आगे बढ़ाने का सफल प्रयास किया है। नाटक के संवादों में बोधगम्यता, प्रभावोत्पादकता एवं संप्रेषणीयता है।

४.३.२.२.३ दृश्य योजना

वस्तु के विकास या योजना अंकों या दृश्यों में किया जाता है। आचार्यों ने नाटक में अंकों की रचना कार्यावस्थाओं के आधार पर की हैं। एक-एक अवस्था-एक-एक अंक में पूर्ण होने पर नाटक की समाप्ति पाँच अंकों में हो जाती है। नाटक में कितने अंक होने चाहिए, इस संबन्ध में भी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में मतैक्य नहीं है। सामान्यतय पाँच से लेकर दस अंकों तक का विधान किया गया है।

---

[26] धर्मपरिवर्तन, माता प्रसाद, पृ.28

नाटक की पाँच कार्यावस्थाएँ होती हैं और इसलिए कार्यावस्था को एक-एक अंक द्वारा स्पष्टता प्रकट करने के लिए पाँच अंकों का विधान किया गया है। आजकल के नाटकों में तीन अंकों का अधिक प्रचलन है। सामान्यतया एक-एक अंक में पाँच-पाँच, दस-दस दृश्यों का संयोजन पाया जाता है।

प्रस्तुत नाटक की कथावस्तु तीन अंकों में विभाजित है। पहले अंक में आठ दृश्य, दूसरी अंक में दस दृश्य तथा तीसरी अंक में पाँच दृश्यों का संयोजन हुआ है। पहले अंक में विभिन्न दृश्यों के ज़रिए अम्बेडकर की जीवन संघर्ष का चित्रण है। अम्बेडकर के नियुक्ति बडौदा राज्य के डिप्टी एकाउण्टेण्ट जनरल के पद पर होता है। दलित होने के कारण वहाँ उन्हें बहुत से कठिनाइयाँ का सामना करना पड़ा। दफ्तर में अपने कर्मचारी उनसे जातिगत भेद-भाव दिखाता है। बाहर उन्हें रहने के लिए जगह नहीं मिलता है। ऐसी स्थिति में उन्हें पद से इस्तीफा देना पड़ता है। साथ ही इस अंक में अम्बेडकर ने पढ़ाई के लिए जो कष्ट उठाया उसके ज़रिए तत्कालीन समाज में दलितों को पढ़ाने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, उसका चित्रण है। श्री माताप्रसाद ने इसमें यह भी दिखाने का सफल प्रयास किया है कि किस तरह तत्कालीन हिन्दु समाज में मानवीय अधिकारों से वंचित करोड़ों अछूतों को गुलामी का अहसास कराने के निमित्त ही अम्बेडकर ने महाद और नासिक के सत्याग्रह किए थे। वास्तव में इन्हीं दो सत्याग्रहों ने दलित मुक्ति के आंदोलन की आधारशिला रखी थी।

दलितों के राजनीतिक अधिकारों को लेकर लिखा गया इस नाटक का दूसरा अंक अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है। राष्ट्र और सामाजिक सद्भाव के हित में डॉ. अम्बेडकर ने गोलमेज सम्मेलन में जीती हुई पृथक् निर्वाचन की मांग को किस

प्रकार छोड़ना पड़ा, इसका जितना सजीव चित्रण इस अंक में है, उतना ही सजीव दृश्यांकन इस यथार्थ का भी है कि पूना समझौने के बाद भी दलितों का शोषण बन्द नहीं हुआ और उनपर हिन्दुओं के अत्याचार यथावत् होते रहे।

नाटक की तीसरी और अंतिम अंक में नाटककार ने अम्बेडकर की धर्म परिवर्तन संबंधी विचारों को प्रस्तुत किया है। धर्मान्तरण के संदर्भ में सिख, ईसाई और इस्लाम के बारे में उनका विचार तथा बौद्ध धर्म को स्वीकारने के कारणों पर चर्चा किया है। इसी तरह नाटककार ने कथावस्तु के स्थिति में निरंतर रखने के लिए विभिन्न अंकों में विभिन्न दृश्यों का संयोजन सफलतापूर्ण रूप से किया है।

४.३.२.२.४ उद्देश्य

नाटक का उद्देश्य मनोरंजन मात्र नहीं परंतु ज्ञान और विचारों को प्रदान करना भी है। आचार्य भरत ने कहा है कि नाटक में धर्म, अर्थ, काम, युद्ध, शान्ति, क्रीड़ा, हँसी आदि समस्त लोकों से संबन्ध रखनेवाले व्यापारों का समावेश किया गया है। इस दृष्टि से देखें तो नाटक के लिए उद्देश्य विविधायामी है। फिर भी नाटक एक ऐसा माध्यम है जिसके ज़रिए बहुसंख्यक दर्शकों तक विचार बहुत ही स्पष्ट और सीधे पहूँचते हैं।

इस नाटक द्वारा श्री माताप्रसाद का उद्देश्य अम्बेडकर के उस सम्पूर्ण संघर्ष को, जिसकी परिणति धर्मान्तरण के रूप में हुई, उसे प्रस्तुत करना है। नाटक जैसे माध्यम के सहारे अम्बेडकर द्वारा किए गये दलितोद्धार और धर्मपरिवर्तन को जनता के सामने नाटककार ने चित्रित किया है तथा हिन्दु समाज में धर्मान्तरण के कारणों पर गम्भीरता से कभी विचार नहीं किया है। उस पर चर्चा करना भी नाटककार का

उद्देश्य है। साथ ही अम्बेडकर के जीवन संघर्ष के ज़रिए उनके चरित्र एवं विचारों को प्रस्तुत करना नाटककार का उद्देश्य है।

४.३.२.३ तड़प मुक्ति की

४.३.२.३.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

दलितों की वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत करने के लिए काल्पनिक कथा के आधार पर 'तड़प मुक्ति की' रचना की गई है। इसलिए पात्र भी काल्पनिक होना स्वभाविक है। नाटककार ने कथावस्तु के अनुसार पात्र योजना की है। वे अपने पात्रों के जरिए सामाजिक समस्याओं को दर्शकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

नाटक में मनोज कुमार के साथ कई पात्र हैं, सोहन लाल, मोहन लाल, शिव प्रसाद, मनोहर लाल, राम लाल, दीन दयाल वाल्मीकि, ओमप्रकाश सरोज, नरोत्तम सिंह, रामचरण पाण्डेय, जड़ावती देवी, सुषमा देवी आदि। लग-भग पच्चीस पात्र इस नाटक में है। मनोज कुमार इस नाटक का प्रमुख पात्र है। फिर भी अन्य पात्र कथ्य को आगे बढ़ाने में अपनी-अपनी चरित्र निभाता है। मनोज कुमार एक शिक्षित एवं जागरूक युवक है, जो लखनऊ विश्वविद्यालय का एम. ए छात्र होने के साथ-साथ वह रामपुर जिले की 'दलित युवक कल्याण समिति' का अध्यक्ष है। वह एक सच्चरित्र, स्वाभिमानी और साहसी युवक है। वह दलितों की समस्याओं को सरकारी अधिकारीओं के समक्ष उठाता है तथा उनका समाधान कराता है। उसको अपने योग्यता पर पुरा बरोसा है, इसलिए पी. सी. एस की परीक्षा में रिज़र्व श्रेणी से नहीं जनरल श्रेणी में आवेदन देता है।

इस नाटक का एक दलित नारी पात्र है, जडावती देवी जो उत्तम प्रदेश की मुख्यमन्त्री है। इस चरित्र को नाटककार ने प्रतीकात्मक ढंग से चित्रित किया है। मुख्यमन्त्री होने के नाते विकास के ठोस और रचनात्मक कार्य करने की बजाए वह डॉ. अम्बेडकर की मूर्तियों की स्थापना, अम्बेडकर पार्क और जिले बनाने और उनके उद्घाटन करने तक सीमित है। न दलितों की शिक्षा की ओर उनका ध्यान है, न रोजगार की ओर, न स्वास्थ्य व अन्य सुविधाओं की ओर। इस पात्र को नाटककार ने इसलिए चित्रित किया है कि सत्ता पर दलितों का आ जाना भर काफी नहीं है। जरूरी यह है कि सत्ता में पहुँचने वाला व्यक्ति दलित समस्याओं को गहराई से समझता हो तथा उसके समाधान के प्रति सजग और प्रतिबद्ध हो। नाटक के अन्य पात्र जैसे- सुषमा देवी, सोहन लाल, दीन दयाल वाल्मीकि आदि पात्र कथावस्तु के तंत्रियों को आगे बढ़ाने में सफल एवं महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

४.३.२.३.२ संवाद एवं भाषा-शैली

'तड़प मुक्ति की' नाटक में सहज एवं सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। नाटककार ने ही इस नाटक की भाषा के बारे में इस प्रकार कहा है- "इसकी भाषा साहित्यिक न होकर साधारण पढ़े-लिखे की भाषा है, क्योंकि यह उन्हीं के लिए लिखी गई है, इसलिए इसमें लालित्य का अभाव है।"[27]

नाटक के संवाद ज्यादातर लंबे-लंबे है। जैसे-

[27] तड़प मुक्ति की- माताप्रसाद, पृ.12

"मनोज कुमार: दूसरे धर्म में जाने के पहले अगर धर्म की पूरी जानकारी कर ली जाए, उसका उनके जीवन और परिवार पर क्या असर पड़ेगा तब वह उसमें जाएँ तो ठीक है,....

*** *** ***

इस प्रकार दूसरे धर्मों में जाने पर भी भेद-भाव उनका पीछा नहीं छोड़ता है। इसलिए ऊबकर वे पुराने स्थानों पर लौटने का प्रयास करते हैं।"[28]

लगता है विचारों को सही एवं स्पष्ट रखने के ध्यान से संवाद बहुत लंबे हो गए। संवादों में आधुनिक राजनीति एवं भ्रष्ट शासक, नेता और कर्मचारियों का व्यक्तित्व और भ्रष्टाचार का खुलासा हुआ है। जैसे-

"चपरासी : .... यहाँ आरक्षण की योग्यता भी रूपये से आँकी जाती है। जो आरक्षित कोटे वाला रूपया देगा वह रख लिया जाएगा। हाँ, रूपया देने पर भी उसे किसी एम.पी था एम.एल.ए से सिफारिश लिखाकर लानी पड़ेगी। जिससे नियुक्ति हो जाने पर सिफारिश करने वाले एम.पी, एम.एल.ए पर एहसान लादा जा सके।"[29]

इस तरह के संवादों के जरिए नाटककार ने दलितों के लिए जो सुविधायाँ दी गयी हैं, वह किस हद तक उन तक पहुँचता है इसको दर्शाया है। साथ ही प्रशासनिक भ्रष्टाचार भी दिखाया है।

---

[28] तड़प मुक्ति की- माताप्रसाद, पृ.34

[29] वहीं, पृ.50

४.३.२.३.३ दृश्य योजना

'तड़प मुक्ति की' नाटक को तीन अंकों में विभाजित किया है। प्रथम अंक को छः दृश्यों में बाँटा गया है। प्रथम अंक के हर एक दृश्य में दलित शोषण के विभिन्न रूपों को दिखाया गया है। अंक दो में छः दृश्य है। इस अंक के दृश्यों में मण्डल कमीशन के समर्थन एवं विराध में हो रहे रैलीयों के जरिए कमीशन पर विचार-विमर्श किया है। साथ ही शासन-प्रशासन में हो रहे भ्रष्टाचार पर प्रकाश डाला है। तृतीय अंक में भी छः दृश्य रखे है। इस अंक में मनोज कुमार द्वारा सुषमा देवी को बदमाशों से बचाना, मनोज कुमार पी.सी.एस परीक्षा में जनरल श्रेणी में दूसरे नंबर से पास होना, पी.सी.एस के ट्रेनिंग के दारौन सुषमा देवी ओर मनोज कुमार में घनिष्ठता बढ़ना और अंत में सुषमा देवी का विवाह प्रस्ताव के साथ नाटक का अंत दिखाया गया है। इस नाटक में माताप्रसाद ने नाट्यारभं, उद्घाटन, चरमसीमा और नाटकान्त को तीन अंकों और छः दृश्यों में सम्मिलित किया है।

४.३.२.३.४ उद्देश्य

दलितों की वर्तमान स्थिति को उजागर करने के उद्देश्य से लिखा गया नाटक है- 'तड़प मुक्ति की'। साथ ही उन पर हो रहे सामाजिक एवं आर्थिक शोषण का चित्रण भी नाटककार का लक्ष्य है। क्योंकि वर्तमान सदर्भ में दलितों के आर्थिक उत्थान के लिए कई सारी योजनाएँ चलाई जाती है, लेकिन उनका लाभ इन्हें मिलने के बनाय बिचौलिए और दलालों को मिलता है।

नाटक के प्रमुख पात्र मनोज कुमार द्वारा नाटककार ने यह कहने का भी प्रयास किया है कि ये सरकारी सुविधायाँ दलित समाज के लिए आकस्मिक उपचार

है, इसे स्थाई उपचार के रूप नहीं अपनाया जा सकता। इसलिए दलित समाज को आत्मनिर्भर होना चाहिए और अपने अन्दर यह विश्वास पैदा करें कि वे किसी से कम नहीं है।

४.३.२.४ हेलो कामरेड

४.३.२.४.१ पात्र योजना और चरित्र चित्रण

परम्पराओं के खिलाफ तथा राजनैतिक खोखलापन को दिखाने के उद्देश्य से लिखा गया नाटक है- 'हेलो कामरेड'। इसलिए इस के हिसाब से नाटक का पात्र-परिकल्पना एवं सृष्टि किया गया है।

विमला नाटक के प्रमुख नारी पात्र है जो एक शिक्षित दलित नारी के साथ-साथ एक राजनौतिक दल के कार्यकर्ता भी है। जो समाज-सेवा को बढ़ी महत्व देते है। वे अपने पार्टी पर पूरा विश्वास रखता है कि उसके पार्टी में जातिगत भेद-भाव नहीं है। लेकिन सूबा कौंसिल में उसे चुन लिया जाने से सवर्ण साथिओं का मुखौटा उस के सामने ऊतर जाता है। वे समझ जाते हैं कि बड़ी-बड़ी सभाओं में जाति-भेद मिटाने की बात करनेवाले असल में अपने अंदर जातिवादी राक्षस छिपाये बेठे है।

अजय इस नाटक का प्रमुख पुरुष पात्र है। वह शिक्षित बेरोजगार है तथा दलित चेतना से संपन्न, जागरूक और साहसी युवक है। अच्छी डिग्री होने पर भी पैसा एवं सिफ़ारिश न होने के कारण आराक्षित पद पर भी उसे नौकरी नहीं दिया जाता। अजय के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने दलित में फूटते आक्रोश को अभिव्यक्ति दिया है। वह समाज में परिवर्तन के लिए दकियानूसी तंत्र को तहस-नहस कर क्रांति के तूफान की कामना करता है। दलितों को अपना मंच बनाने, अपने

आप को पहचानने और अपने हितों के लिए लड़ने, मर-मिठने का आह्वान करता है। जो बहिन के बलात्कारी का खून कर साबित कर देता है कि दलितों को अपनी लड़ाई किस हद तक लड़नी होगी।

इस नाटक एक ओर पात्र रवि, जिसका का चरित्र वर्तमान समाज के खोखलापन के विरुद्ध प्रतीक रूप में नाटककार ने चित्रित किया है। जो नाटक के बीच-बीच में पागल के रूप अपना उपस्तिथि दर्ज करता है। जो सबी को वर्तमान स्थिति से चौकन्ना करता है और चेतावनी भी देता है। नाटक के अन्य पात्र है- हरिया, किसना, हीरालाल, अरविन्द, सुधीर, दीपक, शंकर शर्मा, लेखक, पलटू, रमा, फुलवती आदि।

४.३.२.४.२ संवाद एवं भाषा शैली

'हेलो कामरेड' में नाटककार मोहनदास नैमिशराय ने संवाद एवं भाषा-शैली को कथ्यानुकूल रखा है। इस नाटक का संवाद गंभीर तथा विचारोत्तेजक है- जैसे

"अजय : ...ये अत्याचार तो इन पर सादियों से होते चले आये हैं और होते रहेंगे। इन्हें कोई रोक नहीं सकता। कामरेड, जुल्म करने वाले से सहने वाला अधिक दोषी होता है। जिस दिन उन्होंने जुल्म सहना छोड़ दिया, समझ लो अत्याचार बन्द।"[30]

नाटक में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। जैसे दलित पात्र हरिया व किसना के संवाद के समय ग्रामीण भाषा का प्रयोग हुआ है।

---

[30] हेलो कामरेड- मोहनदास नैमिशराय, पृ.32

"किसना : पर क्या कहवै है?

हरिया : कहवै है, कल गरीबों के आँसू पोंछने कोई नेता आवेंगे।

किसना : फिर तो भईया हरिया, कल खूब मजमा जमेगा।"[31]

कहीं-कहीं राजनैतिक नेताओं के विरुद्ध किये गये संवाद में विरोध गाली में बदल जाता है।

किसना : ससुरों का कोई दीन ईमान ही ना है। आज मेरी गावेंगे कल तेरी।"[32]

संवादों में कहीं-कहीं नाटककार ने भ्रष्टाचारी नेताओं विरुध अपनी भाषा तेज़ करने के लिए व्यंग्य का भी प्रयोग किया है।

"अजय : (व्यंग्य से) हूँ, आज की राजनीति चलती ही ऐसे लोगों से है, जो पार्टी के कामों में दलाली करते हों।"[33]

इस तरह नाटककार ने सरल, स्वाभाविक एवं संप्रेषणीयता से युक्त भाषा का प्रयोग किया है तथा पात्रानुकूल भाषा शैली का भी प्रयोग किया है।

४.३.२.४.३ दृश्य योजना

मोहनदास नैमिशराय जी अपने नाटक 'हेलो कामरेड' में अंक या दृश्यों के जगह 'फेड आडट' रखा है। पहले जब महानगरों में नाटकों का मंचन होते थे।

---

31 हेलो कामरेड- मोहनदास नैमिशराय, पृ.15

32 वहीं, पृ.19

33 वहीं, पृ.25

तब दृश्य बदलने के लिए प्रकाश बंद कर देते थे। जिस तरह सिनीमा ग्रह में इंडरवेल के वक्त प्रकाश आ जाता है। उसके विपरीत नाटक में दृश्य बदलने के लिए प्रकाश बंद कर देते है।[34] इसलिए उन्होंने अपने नाटक के दृश्यांकन में दृश्य बदलने के जगह 'फट आउट' शब्द का इस्तेमाल किया है। 'फट-आउट' शब्द का अर्थ है धीरे-धीरे प्रकाश बद हो जाना। नाटक आठ फेड आउट के बाद मध्यांतर है। उसके बाद दो फेड आउट और है। नाटककार ने दस फेड आउट के अंतर पूरे कथ्य को सम्मिलित किया है।

४.३.२.४.४ उद्देश्य

'हेलो कामरेड' नाटक का प्रमुख उद्देश्य यह है कि वर्तमान समाज में जी रहे भ्रष्टाचारी नेताओं के पोल खेलना है जो राजनैतिक रंगमंच पर कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं, जिनके दिल और दिमाग में अभी भी जाति-भेद भरा है। साथ ही प्रचलित वर्ण व्यवस्था, नौकरी राजनीति में दलितों का उत्पीडन, परम्पराओं के खिलाफ विद्रोह और अत्याचार के विरूध बदले की भावना आदि दिखाना ने का प्रयास भी नाटककार ने किया है।

दलित समाज की एक अलग पहचान या अस्तित्व बनने की जरूरत पर प्रकाश डालना भी नाटककार का मक़सद रहा है।

४.३.२.५ दो चेहरे

४.३.२.५.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने कथावस्तु के अनुसार पात्र योजना की है। नाटक में लग-भग तेरह पात्र है। शिवराज सिंह, राजिन्दर सिंह, प्रधान जी, नाहर सिंह,

---

[34] मोहनदास नैमिशराय जी से किये बातचीत के अनुसार

किरान, धर्मपाल, बसेसर, घीसू, बजंरगी, संतो, दो मज़दूर आदि। शिवराज सिंह शहर में मज़दूर संगठन का बड़ा नेता है। लेकिन वह अपने गाँव के दलित मज़दूर का शोषण एवं दलित नारीओं पर अत्याचार करता है। शिवराज सिंह के चरित्र द्वारा नाटककार ने इस तरह के मज़दूर नेताओं के असली चेहरे को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। एक जगह पर अपने को मज़दूरों के मसीहा करनेवाले यह नेता दूसरी जगह दलित नारीओं का बलात्कार करता है। संतो नाटक के दलित स्त्री पात्र है। जो अत्याचार विरोध करनेवाली, जागृत दलित नारी के रूप में हमारे सामने आता है। किरान, धर्मपाल, बसेसर व घीसू के चरित्र को नाटककार ने अपने अधिकारों के लिए लड़ानेवाला दलित व्यक्ति के रूप में किया है। इस तरह कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सभी पात्र सफल एवं महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

४.३.२.५.२ संवाद एवं भाषा शैली

संवाद ही नाटक की कथावस्तु को आगे ले चलता है। नाटककार को जो कुछ कहना होता है, उसके लिए पात्रों के संवाद ही माध्यम होते है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने संवादों के जरिए कथ्य को आगे बढ़ाया है। नाटक में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। नाटक में ग्रामीण जन-भाषा का प्रयोग हुआ है क्योंकि ज्यादात्तर पात्र ग्रामीण ही है।

इस संवाद को देखिएः-

"घीसू : बसेसर, सबकू ठीक तरियो कह आया ना? कल तड़के मिटिन है।

बसेसर : हाँ, कह आया हूँ। मेरे तो गोड्डे टूट गे सारा दिन फिरतो-फिरतो।

घीसू : देख्र बेट्टे। ये भाग-दौड़ आग्गे चल के थारे ही काम आणी है। म्हारी जिनगी में तो जो होणा था, सो हो लिया। क्या-क्या न देख्र लिया इस गाँव में। इब जाके कुछ आस बंधी है।"[35]

संवादों में कहीं-कहीं मुहावरों का प्रयोग भी किया है-

"बसेसर : तुम्हें क्या लगता है वो म्हारा साथ दगा? हाथी के दांत ख्राने के अलग और दिख्राने के अलग होते हैं।"[36]

४.३.२.५.३ दृश्य योजना

'दो चेहरे' नाटक छः दृश्यों समायोजित है। दृश्य एक से कथा का आरंभ होता है। पहले दृश्य में शिवराज सिंह को मज़दूर संगठन के नेता के रूप में जो व्यक्तित्व है, उसे दिख्राया गया है। दृश्य दो में गाँव के दलितों द्वारा किये जा रहे हड़ताल का विवरण है। दृश्य तीन में शिवराज सिंह के दलित विरोधी चेहरा प्रस्तुत किया है। दृश्य चार में दलितों द्वारा हड़ताल का तैयारी एवं शिवराज सिंह के चरित्र पर प्रकाश डाला गया है। दृश्य पाँच दलितों के हड़ताल पर शिवराज सिंह और उनके गुड़े द्वारा किये गये अत्याचार का चित्रण है। दृश्य छः में शिवराज सिंह के मज़दूर विरोधी चेहरे को बेनकाब कर देते है। उन पर मज़दूर के प्रतिक्रिया के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

---

35 दो चेहरे- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.31

36 वहीं, पृ.34

४.३.२.५.४ उद्देश्य

ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा 'दो चेहरे' नामक इस नाटक लिखने का एक ही उद्देश्य है। वह है- मज़दूर नेताओं के चेहरे पर चढ़े चेहरों को हमारे सामने प्रस्तुत करना। अर्थात् कुछ नेता अपने को मज़दूर एवं दलितों के मसीहा कहते है लेकिन उन के असली चेहरा कुछ और होते है। इसे एक छोटी सी कथा के द्वारा नाटककार ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है।

४.३.२.६ कठौती में गंगा

४.३.२.६.१ पात्र योजन एवं चरित्र चित्रण

'कठौती में गंगा' नाटक रैदास के जीवन और उपदेशों पर आधारित नाटक है। इसलिए रैदास का चरित्र केन्द्रीय रूप में चित्रित होना स्वाभाविक ही है। दरअसल इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य रैदास के चरित्र पर प्रकाश डालना है। इसलिए नाटककार ने रैदास के चरित्र को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। उपदेशों तथा पदों के ज़रिए उनके परिवर्तनवादी दृष्टिकोण को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। सहजीवीओं के प्रति दयालुता, सहानुभूति आदि गुण भी उनके चरित्र में देखा जा सकता है। साथ ही छुआ-छूत के प्रति उनका विरोध भी दरशाया गया है। ब्राह्मणें तथा शंकराचार्य के साथ हुए संवादों से उनकी तर्कबुद्धि का परिचय भी मिलता है।

४.३.२.६.२ संवाद एवं भाषा-शैली

'कठौती में गंगा' नाटक में साधारण बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है। नाटक में संवादों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। नाटक की कथा संवादों के

माध्यम से ही आगे बढ़ती है। प्रस्तुत नाटक में भी नाटककार ने संवाद पात्रानुकूल ही रखे हैं। कहीं-कहीं संवाद छोटे, चुटीले और सार गार्भत है, जैसे-

"शंकराचार्य : उज्जवल चांद पर कलंक क्यों?

रैदास : कमल नाल में कंटक ज्यों।

शंकराचार्या : श्वेतो-श्वेतो सब भलो?

रैदास : श्वेतो भलो न केश।

रैदास : जितने सागर?

शंकराचार्या : उतने ही खारे।

रैदास : जैसे विद्वान?

शंकराचार्या : निर्धन बेचारे।

शंकराचार्या : शरीर शून्य?

रैदास : प्राण बिना।

शंकराचार्या : लक्ष्मी शून्य?

रैदास : दान बिना।

रैदास : व्रत?

शंकराचार्या : तप बिना।

रैदास : भोजन?

शंकराचार्या : घृत बिना।

शंकराचार्या : पुण्य बिना मानव।

रैदास : कंठ बिना गायन।"[37]

---

[37] कठौती में गंगा- डॉ. एन. सिंह, पृ.64

इस तरह छोटे-छोटे संवादों के साथ ही विषय गंभीरता के अनुसार संवाद भी कहीं-कहीं लंबा हो जाता है। जैसे-

"रैदास : माँ! मनुष्य-मनुष्य में इतना भेद क्यों है?

कर्मा : (गम्भीर) क्या कह रहा है?

रैदास : माँ, ये छुआ-छूत का वर्ताव मुझे अच्छा नहीं लगता। सभी के शरीर हाड-मास के ही तो बने हैं। फिर लोग हमारे साथ दुर्व्यवहार क्यों करते हैं? किसी को छू दो तो वह मारता है, डांटता है। किसने बनाई आखिर ये छुआ-छूत, अंच-नीच, जात-पात? स्वामी जी तो कहते हैं प्रभु सबको बराबर प्यार करते हैं बराबर समझते हैं।"[38]

नाटककार ने पात्रों के अनुसार भाषा-शैली का प्रयोग किया है। नाटक की भाषा सहज, सरल, खड़ी बोली तो है ही, उसमें पात्रानुकूल अन्य बोलियों का उपयोग भी हुआ है। जैसे-

"परिचारिका : महाराणी जी थरी जै हो! थाने काशी जावा वास्ते थारो रथ तैयार है।

झाली राणी : आछो।"[39]

---

38 कठौती में गंगा- डॉ. एन. सिंह, पृ.33

39 वहीं, पृ.70

इस तरह प्रस्तुत नाटक के संवाद छोटे लेकिन सारागर्भित तो हैं ही, आवश्यकतानुसार कहीं-कहीं पर वे गम्भीर तथा लम्बे भी है। नाटककार ने संवादों की भाषा पात्रों की स्थिति, मनोभावों तथा नाटक की आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिखा गया है।

४.३.२.६.३ दृश्य योजना

'कठौती में गंगा' नाटक को तेरह खण्डों में विभाजित किया है। साधारणतः नाटक में एक वस्तु या संघर्ष का विकास उसे चरमसीमा में पहुँचाकर तथा अंत दिखाया जाता है। लेकिन इस नाटक में हर खण्ड में एक संघर्ष का विकास, चरमसीमा और नाटकान्त दिखाया गया है। मतलब इस नाटक में एक नहीं अनेक क्लाइमैक्स हैं। जिसे एक सूत्र में बंधा गया है।

प्रथम खण्ड तथा द्वितीय खण्ड में रैदास के व्यक्तित्व की महत्व दिखाया गया है। तृतीय तथा चौथे खण्ड में रैदास के जन्म संबंधी बातों को दिखाया गया है। इस तरह प्रत्येक खण्ड में रैदास के व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ उनकी उपदेशों को दर्शाया गया है। साथ ही वस्तु को रोचक बनाने के लिए नवीन उद्‌भावनाओं को जोड़ दिया है। जैसे-रैदास और शंकराचार्य के शास्त्रार्थ वाला प्रसंग और अंत में चित्तौड़गढ़ में आयोजित ब्राह्म-भोज में रैदास का आत्महत्य कर लेना।

इस तरह तेरह खण्डों में रैदास के जीवन और अनेक उपदेशों को नाटककार ने दिखाया है।

४.३.२.६.४ उद्देश्य

'कठौती में गंगा' नाटक का प्रमुख उद्देश्य रैदास जैसे महान संत, समाज-सुधारक और साहित्यकार के जीवन पर प्रकाश डालना है। और उनकी उपदेशों द्वारा दलित समाज को जागरूक करना भी है। नाटककार ने छुआ-छूत के भीषण अवस्था का भी चित्रण किया है ताकि दलितों में इस के प्रति जागृती उत्पन्न हो। इसके अतिरिक्त मद्यनिषेध, अपने माता-पिता का सम्मान, गुरू का सम्मान करने की प्रेरणा भी इस नाटक से हमें मिलते हैं।

४.३.२.७ एक दलित डिप्टी कलेक्टर

४.३.२.७.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

नाटक के कथ्य काल्पनिक होते हुए भी नाटक के हर एक पात्र समाज में प्राप्त यथार्थवादी या जीवित व्यक्ति का प्रतिबिम्ब लगता है। नाटक में लग-भग पंद्रह पात्र को दिखाया गया है। रतनलाल को डिप्टी कलेक्टर के रूप में चित्रित किया है। रतनलाल के चरित्र द्वारा नाटककार उस विभाग के दलितों को दिखाने का प्रयास किया है जो अब दलित समाज में बन रहा है। ऐसे दलित जो पढ़ लिखकर बड़े अधिकारी बनते ही अपने गाँव और माँ-बाप व भाई बन्धुओं से कटते जा रहे है। वे भी उस मनुवादी समाज का हिस्सा बन जाता है जिस ने सदियों से उन जैसे दलितों का शोषण किया था। नाटककार ने अनुसूईया के चरित्र को बहुत ही प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। अंपढ़ व दलित नारी होने पर भी अपने पति के छोड़ने से वह टूट नहीं जाती। वह अपनी बच्ची को पालने के लिए मज़दूरी करने लगती है। जब ठाकुर उसे बेइज़्ज़त करने की कोशिश करता है तो अपने जान की परवाह न करके

उस से लड़ते है। इस तरह साहसी नारी के रूप में अनुसूईया का चित्रण किया है। नाटक के अन्य पात्र है- सन्तू, रामदीन, ठाकूर चतुर सिंह, जानकी, मैकी आदि। नाटककार ने कथ्य के अनुरूप पात्र एवं चरित्र चित्रण किया है।

४.३.२.७.२ संवाद एवं भाषा-शैली

नाटक के संवाद सहज एवं सरल है। संवाद में ग्रामीण भाषा का प्रयोग हुआ है।

जैसे-

"दूसरा मजदूर : दद्दू, तुम मेहनत मजदूरी करके अपने बबुआ का पढ़ावा हऊ। अब तुम्हार दिन बहुर जइ हैं। दूसरे के खेतन म मेहनत मज़दूरी करब बन्द हाई जई।

मैकी : हम अपने बबुआ के बगला मा रहिबे, अच्छा-अच्छा खाना खइबे, अच्छे-अच्छे कपड़ा पहिनब अउर मोटर में खूब घूमब।"[40]

नाटककार ने मार्मिक संवादों के जरिए दलित वर्ग के प्रति उच्च वर्ग की मानासिकता को दर्शाया है। देखिएः-

"ठाकुर : ...साले तुम लोगों का काम हमारी सेवा करना है। तुम्हारी औरतों और लड़कियों का काम हमें खुश रखना है। ये ससुरी अनुसूईया आज हमारी जमकर सेवा करेगी।"[41]

रूपनारायण सोनकर जी ने नाटक में संवाद योजना पात्रोचित रखा है।

---

40 एक दलित डिप्टी कलेक्टर- रूपनारायण सोनकर, पृ.4-5

41 वहीं, पृ.29

४.३.२.७.३ दृश्य योजना

एक दलित डिप्टी कलेक्टर नाटक को दस दृश्यों में विभाजित किया है। पहले दृश्य में रतनलाल के डिप्टी कलेक्टर होने पर उनके माँ-बाप एवं गाँववाले के खुशियाँ मन रहे है, इसका चित्रण है। दूसरे दृश्य में रतनलाल के पत्नी अनुसूईया व उसकी छः साल की बेटी जानकी रतनलाल को बेसबरी से इंतजार कर रही है, इसका चित्रण है। दृश्य तीन में रतनलाल का गाँव में आना और सब लोगों के मिलने तथा उसके ट्रेनिंग जाने के बारे में कहा गया है। दृश्य चार में एक नदी के किनारे का दृश्य है, जहाँ रतनलाल और उनकी दूसरी पत्नी रश्मि सिंह को दिखाया गया है। इस दृश्य में सिर्फ एक गाना ही है। दृश्य पाँच में रतनलाल को उसके पिता का पत्र मिलता है। जिसमें वह उसके पहले पत्नी व उसकी बच्ची की हालत बताता है। साथ ही उसके भाई चमनलाल के पढ़ाई के लिए सहायता माँगता है। लेकिन निर्दय रतनलाल उनकी सहायता नही करता है। दृश्य छः में अनुसूईया जो अपने सास-ससुर के साथ रह रही थी, उसे रतनलाल घर से निकालने का दृश्य है। दृश्य सात में रामदीन, अनुसूईया एवं सन्तु के संवादों के जरिए रतनलाल के हृदयहीनता का चित्रण किया गया है। आठवाँ दृश्य में जिस न्यायालय में रतनलाल मजिस्ट्रेट है, वहाँ एक काल गर्ल के रूप उसके बेटी को लाया जाता है। बाप के नाम पूछने पर जानकी रतनलाल का नाम बताता है, यह सुनकर सब लोग चौक जाता है। इस दृश्य में फलैश बेक शैली का प्रयोग करके रतनलाल की पहली पत्नी अनुसूईया के मौत का चित्रण भी किया गया है। दृश्य नौ में रतनलाल और उसके दूसरी पत्नी के बीच झगडे का चित्रण है। क्योंकि रतनलाल ने अपने पहले शादी के बात छिपाकार उस से शादी किया था। दृश्य दास में रंतनलाल के खिलाफ मुकदमा का चित्रण है

और उसे गुनहगार करार दिया जाता है। इस दृश्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। कथा के विकास के अनुसार दृश्यों का विभाजन किया गया है।

४.३.२.७.४ उद्देश्य

रूपनारायण सोनकर जी इस नाटक के द्वारा दलित समाज में जाग्रतिलाने का प्रयास किया है। यह नाटक उन दलित अधिकारियों पर करारा प्रहार करता है जो उच्च अधिकारी बनते ही अपने माँ-बाप को बेसहारा छोड़ देते है। इस तरह के दलित अधिकारियों को जाग्रत करना नाटककार का उद्देश्य है। साथ ही सामाजिक विसंगतियों, असमनताओं और विद्रूपताओं पर प्रकाश डालना भी उनका लक्ष्य है।

४.३.२.८ खल-छल-नीति

४.३.२.८.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

करीब दस पात्रोंवाला छोटा नाटक है- 'खल-छल-नीति'। संकटा प्रसाद खटिक इस नाटक केन्द्रीय पात्र है। जो शिक्षित दलित युवक है। वह अपने गाँववालों को ग्राम-प्रधान और उनके साथीओं के अत्याचारों से बचाता है और उनको अपने अधिकारों के बारें में सचेत कराता है। संकटा प्रसाद खटिक ग्राम प्रधान बनकर अपने गाँव में विकास लाता है। इस तरह दलित चेतना संपन्न, जागरूक युवा से समाज के सुधार में आस्था रखने वाले राजनैतिक नेता बनकर संकटा प्रसाद का चरित्र हमारे सामने आता है। सत्य नारायण त्रिपाठी, डॉ. जोरावर सिंह तथा प्रिन्सिपल जितेन्द्र यादव ये तीनों सामंतवादी मानसिकता का प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किया गया है। नाटक के अन्य पात्र है- सुनयना, काला बच्चा, सदानंद कन्नौजिया, भगतू पासी आदि।

४.३.२.८.२ संवाद एवं भाषा शैली

प्रस्तुत नाटक में सरल एवं सहज भाषा का प्रयोग हुआ है। संवादों के जरिए कथ्यों को आगे बढ़ाया गया है। पात्रों के व्यक्तित्व के आधार पर भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है। शिक्षित दलित युवक संकटा प्रसाद खटिक की भाषा देखिए:-

"संकटा प्रसाद खटिक: यह झूठी बात नहीं है। मैं हेल्थ मिनिस्ट्री से आ रहा हूँ उन्होंने दो माह पहले दवाईया इस प्राईमरी हेल्थ सेन्टर को भेजा है। डॉक्टर ने रिसीव किया है।"[42]

अनपढ़ दलित लड़की सुनयना की भाषा देखिए:-

"सुनयना : तुम हमरी जैसी दलित लड़कियों की इज्जत-आबरू से खलेत हौ। तुम हमरे साथ कउने भलाई थोड़ करत हुआ। तुम हमार इज्जत लूटत हौ।"[43]

इस तरह नाटककार ने सरल एवं स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है तथा पात्रों के व्यक्तित्व के अनुसार भाषा एवं शैली का प्रयोग किया है। एकाध अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग बीच-बीच में उपलब्ध है।

४.३.२.८.३ दृश्य योजना

नाटक में घटना क्रमों का विभाजन अंकों में नहीं बल्कि दृश्यों में किया गया है। नौ दृश्यों में विभाजित यह नाटक ग्रामीण जन-जीवन पर आधारित है। पहले दृश्य में गाँव के दबंग लोग दलितों व कमजोर नारियों का कई प्रकार से शोषण

---

42 समाज-द्रोही (नाट्य-संग्रह)- रूप नारायण सोनकर, पृ.31

43 वहीं, पृ.28

करता है, उसका चित्रण है। आगे के दृस्यों में एक पढ़ा-लिखा दलित नौजवान बाहर से शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने गाँव वापस आता है व गाँव में हो रहे अत्याचारों के विरोध करता है। गाँव के दबंग लोग उसको पिटता है। फिर वक्त बदलता है व युवक को गाँव की जनता ग्राम प्रधान चुन लेती है। नौजवान गाँव से भ्रष्टाचार को मिटाते हुए एक आदर्श प्रस्तुत करता है और गाँव को विकास के पद पर ले चलता है। इस कथ्य को नौ दृश्य के अंदर नाटककार ने सम्मिलित किया है।

४.३.२.८.४ उद्देश्य

स्वातंत्र्योत्तर भारत में आज भी कई स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं के बिना बच्चे पढ़ने को मजबूर हैं। अस्पताल की सारी दवायें को भ्रष्टाचारी अधिकारी प्राइवेट मेडिकल स्टोरों में वेच देता है और लोगों को बाहर से दवाइयाँ ज्यादा पैसा देकर खरीदना पड़ता है। इस तरह सरकारी अधिकारीओं के भ्रष्टाचार का चित्र आज भी हमारे समाज में देखने को मिलता है। इन पर प्रकारा डालना नाटककार का उद्देश्य है। तथा योग्य एवं जागरूक नेताओं को चुन लेने से देश का विकास हो सकता है यह दिखाना का भी प्रयास किया है। साथ ही दलितों के मानवाधिकार उल्लंगन और अधिकारों पर चर्चा की है।

४.३.२.९ नंगा सत्य

४.३.२.९.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

'नंगा सत्य' नाटक में भीड़ और चार पुरुष के अलावा करीब उन्नीस पात्र है। नाटक पात्र प्रधान न होने के कारण किसी एक पात्र को प्रमुख या किसी एक पात्र पर केन्द्रित नहीं है। सामाजिक समस्याओं से मुक्ति की स्पष्ट सोद्देश्यपरक नाटक

होने के कारण इस नाटक में दो विचारों का प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र हमारे सामने आता है। एक परम्परावादी और दूसरा परिवर्तनवादी। नाटक लेखक कृपाशंकर और सूत्रधार कमल स्वयं भंगी तथा मोची जैसे उत्पीड़ित समुदाय से आते हैं। इनके अलावा बुद्धिराम, सुखराम खेत मजदूर है। सुनीत जाटव, शेखर चौहान दोनों शिक्षित दलित युवा है। नीलिमा मेश्राम एक सक्रिय सामाजिक दलित कार्यकर्ता है। ठाकुर धनसिंह तथा उसका बेटा ठाकुर सत्यजीत सिंह सामन्तवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं। करिया, मुनीम, बहादुर गोरखा, पंडित, हवलदार शुक्ला सामन्तवादी सत्ता के बिचौलिया हैं। अंधविश्वास, परंपरा के पालनकर्ता भक्तिन तथा अधोरी बाबा हैं। आम आदमी का प्रतीक एक बिमार आदमी है, साथ में अन्य चार देहाती हैं। अम्बेडकरवादी डॉक्टर तथा वकील का चरित्र इस नाटक में है। इस तरह ये पात्र परंपरावादी और परिवर्तनवादी- दो विचारों में बंटा है। अर्थात् जैसे पात्र हम जीवन में देखते हैं, वैसे ही मंच पर आते हैं।

४.३.२.९.२ संवाद एवं भाषा शैली

प्रस्तुत नाटक में खडीबोली हिन्दी का प्रयोग हुआ है। पात्रों के व्यक्तित्व के आधार पर संवाद, भाषा और शैली का प्रयोग किया गया है। नाटक की भाषा एवं संवाद सहज और संप्रेषण की क्षमता रखनेवाला है। संवाद में कहीं-कहीं व्यंग्य का भी प्रयोग हुआ है। जैसे-

"बुद्धिराम : .... उनका नाम अखबारों में छपता रहता है।

सुखराम : (व्यंग्य से) ठाकुर धनसिंह जैसे लोगों का और उनके बेटे का नाम अखबारों में नहीं छपेगा तो क्या तुम्हारा नाम छपेगा ?

सुनीत : (मुस्कराते हुए, व्यंग्य से) हाँ, इसका नाम छप सकता है। (बुद्धिराम को देखते हुए) इसका नाम जरूर छप सकता है।

बुद्धिराम : (जिज्ञासा के साथ) कैसे?

सुनीत : यही कि, सत्य की खोज में निकले महायात्री को यह पता नहीं था कि सत्य वास्तव में क्या है? (हंसता है)।"[44]

वर्ण-जाति व्यवस्था की विभीषिका को दिखाने के लिए नाटककार कई संवादों को गढ़ा है। जैसे-

"कमल : (गंभीरता से) मैं कभी मोची था। अभी रंगमंच का सूत्रधार हूँ फिर भी जाति के नाम पर मोची ही कहलाता हूँ। सदियों से मेरे पूर्वज चप्पल-जूते बनाते रहे... और कृपाशंकर के पूर्वज सिर पर मैला ढोते रहे...जन्म से जाति, जाति से कर्म, कर्म ही धर्म... यही है हमारे सामाजिक जीवन का मर्म..."[45]

आगे के संवादों में महात्मा गांधी ओर डॉ. अम्बेडकर की भूमिकाओं का संघर्ष दिखाया है। गांधी-अम्बेडकर के वैचारिक संघर्ष को लेखिका ने सटीक और प्रभावी ढंग से संवादों के माध्यम से रखा है, साथ ही अम्बेडकरीय विद्रोह को अभिव्यक्त किया है।

"शेखर : ....हमारे गांधी बापूजी तो यह कहते थे कि हमारे देश की समाज-व्यवस्था गांव में ही रहती है, इसलिए गांव में ही रहो।

---

[44] नंगा सत्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.12

[45] वहीं, पृ.16

और आप कह रहे हैं कि शहर जाकर, गांव के अपने लोगों की दुर्दशा समझ कर आये हो?....

कमल : ....हमारे परमपूज्य डॉ. भीमराव अम्बेडकरजी ने हमारे प्रगति, हमारी भलाई शहरों की ओर जाने में बताई थी।

*** *** ***

कमल : उनसे मिलना याने उनके कार्यो और उनकी विचारधारा को समझना है। उन्हीं की प्रेरणा से हमने उपना उद्देश्य बनाया है- समाज को बदल डालो, समाज-व्यवस्था को बदल डालो, रूढ़ियों को तोड दो... बेड़ियों को तोड दो।"[46]

अंतः हम कह सकते हैं कि सुशीला टाकभौरे ने 'नंगा सत्य' नाटक में नाट्य-भाषा एवं संवाद योजन पात्रोचित, कथावस्तु के अनुरूप और रंग मंच के अनुसार रखा है।

४.३.२.९.३ दृश्य योजना

'नंगा सत्य' नाटक को सात परिदृश्यों में विभाजित किया है। कथा विकास के अनुसार दृस्यों का विभाजन हुआ है। इस नाटक के दृश्य योजना में लेखिका ने कुछ नया अभिगम अपनाता हुआ नजर आता है। कहीं-कहीं लोकनाट्य की शैलियों, एब्सर्ड और संनीधीकरण जैसे नाट्य युक्तियों के साथ-साथ पात्रों के अपने भूमिका के बाद स्थिर हो जाना जैसे प्रयोग भी देखा जा सकता है। इस के अलावा इस नाटक का शिल्प 'नाटक में घटता नाटक' है, जिसे गर्भ नाटक (Play within the play) भी

---

[46] नंगा सत्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.16

कहा जाता है। साथ परिदृश्यों के तहत लेखिका ने दलितों पर हो रहे विभिन्न प्रकार के अत्याचारों एवं उसके प्रति दलितों में जग रहे चेतन को चित्रित किया है। इस प्रकार कथा में किसी बाधा के बिना सफल दृश्य योजना करने में नाटककार ने सफलता हासिल की है।

४.३.२.९.४ उद्देश्य

'नंगा सत्य' नाटक के उद्देश्य के बारे में कहते समय नाटक के पात्र नीलिमा का कथन उल्लेखनीय है- "किसी को जलाना-मारना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम तो केवल अपने अधिकार चाहते हैं-समता का अधिकार...सम्मान का अधिकार...मानवता का अधिकार..."[47] अतः इस नाटक का प्रमुख उद्देश्य समाज में समता, सम्मान और भाईचारा स्थापित करना है। इसके लिए शिक्षा, संघर्ष और संगठन को आवश्यक बताया है। दलित पुनरुत्थान के साथ नारी-मुक्ति की कामना भी इस नाटक का स्वप्न है। नारियों को आजादी, समानता और सम्मान मिलना चाहिए। नंगा सत्य नाटक के माध्यम से फुले-अम्बेडकर दर्शन तथा दलित साहित्य की वैचारिकी को आम आदमी तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है। साथ ही भारतीय समाज में व्याप्त जातिव्यवस्था, छुआ-छूत, अंधविश्वास, अशिक्षा, बेगार आदि समस्याओं का चित्रण करते हुए, उनका समाधान देने का प्रयास भी किया गया है। भारतीय समाज व्यवस्था में परिवर्तन के लिए फुले-अम्बेडकर के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

---

[47] नंगा सत्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.63

४.३.२.१० रंग और व्यंग्य

४.३.२.१०.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

'रंग और व्यंग्य' नाटक के पात्रों को शास्त्रानुमानित पद्धति के अनुसार विश्लेषित नहीं किया जा सकता। यह कथ्य प्रधान नाटक है। इसलिए कथ्य को आगे ले जाने वाले है-पात्र।

दलित समाज के जागृत नारी के रूप में छब्बो का चरित्र चित्रण हुआ है। वह पुराने रूढ़िवादी व्यवस्था एवं मान्यताओं को नहीं मानती है। उस का खुलकर विरोध करती है तथा अन्य पात्रों पर अपना प्रभाव डालकर उन में भी परिवर्तन लाने में कमियब होती है। इस नाटक के अन्य पात्र है- शालू, छऊआ, पटेल, पंड़ित सीताराम, पंड़ित रामशरण, पंड़ित रामसनेही, खिमिया, स्कूल के छात्राएँ आदि। लग-भग बीस के ऊपर पात्र इस नाटक में दिखाया गया है। हर एक पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।

४.३.२.१०.२ संवाद एवं भाषा-शैली

'रंग और व्यंग्य' नाटक में सहज एवं सरल हिन्दी का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं संवाद में ग्रामीण बोल-चाल की भाषा का प्रयोग किया गया है। खिमिया और तारा के बीच संवाद देखिएः-

"खिमिया : देख ले तारा, तेरी मोड़ियों ने का कियो है? हमरी रस्सी बाल्टी खराब कर दई, हमरे कुंआ पे चढ़ गई...

तारा : का हो गओ खिमिया बाई? का हुओ है?"[48]

संवाद में कहीं-कहीं व्यंग्य भी देख सकते है। जैसे-

"पटेल : ...हिन्दू महाजनों की जूठन बहुत पवित्र होये है। नसीब वालों को बड़े नसीब से मिले है। ये जानवरों के लिए नहीं है, समझ गई...?

छब्बो : (व्यंग्य के साथ, जूठी पत्तले दिखाते हुए, निडरता से) ये पवित्र है, नसीब से मिले है, तो फिर अपने घर के लोगों को ही खिला दो.. लो, रख लो अपने घर में..."[49]

संवादों के जरिए दलितों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता भी दिखाया है-

"छब्बो : हमको भी बराबर के अधिकार मिल गये हैं। अब तो नियम बन गया है कोई हमसे छुआछूत नहीं कर सके है, कोई हमरो अपमान नहीं कर सके हैं। जो ऐसा करेंगा- कानून उसके पेट में डंडा घुसेड़ देयगा।"[50]

इस नाटक में भाषा और संवाद पात्रानुकूल है। पात्र के व्यक्तित्व एवं चरित्र के अनुसार ही संवाद योजना एवं भाषा की अभिव्यक्ति हुई है।

४.३.२.१०.३ दृश्य योजना

'रंग और व्यंग्य' नाटक के कथ्य तीन अंको में विभक्त है। पहले अंक में तीन दृश्य है। पहले दृश्य में दलित समाज में पुरानी मान्यताओं के प्रति उत्पन्न

---

48 रंग और व्यंग्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.32

49 वहीं, पृ.14

50 वहीं, पृ.35

चेतना का चित्रण है। दृश्य दो में छब्बो के माँ द्वारा मंदिर बनने का और मंदिर में भगवान की मूर्ति की स्थापना का चित्रण है तो दृश्य तीन में मंदिर में हो रही पूजा का चित्रण है। अंक दो में तीन दृश्यों का चित्रण है। अंक दो के प्रथम दृश्य में छब्बो व उसकी बेटी शालू के द्वारा मंदिर बनाने पर प्रश्न चिह्न लगया है कि इतने सारे रूपया खर्च करके मंदिर बनाने से क्या लाभ है। उसके स्थान पर दलित बच्चों के लिए स्कूल या बेरोजगारों के लिए कोई व्यवसाय खेलते तो कितना अच्छा होता। दृश्य दो एवं तीन में छुआ-छूत का भीषण स्थिति का चित्रण है। अंक तीन में एक ही दृश्य दिखाया गया है। इसमें अंबेडकरवादी चिंतन से प्रभावित दलित समाज के व्यक्तियों में उत्पन्न जाग्रति तथा विद्रोह भावना के साथ-साथ शोषक सवर्ण समाज के व्यक्तियों का मुखौटा उतारा गया है।

४.३.२.१०.४ उद्देश्य

'रंग और व्यंग्य' अपने आप में उद्देश्यपूर्ण नाट्यकृति है। समाज में जातिभेद आज भी है। इस नाटक में अलग अलग झलकियों द्वारा जातिभेद पर प्रकाश डाला है। इस नाटक में सुशीला टाकभौरे जी ने शोषण और भेदभाव की परम्परा के विरुद्ध अपनी बात कही है। नाटककार ने आज के जाति भेद पर करारा व्यंग्य करते हुए समाज के धरातल पर खड़े दलित परिवार की दशा तथा उसमें परिवर्तन की उद्देश्य से यह नाटक लिखा गया है। साथ ही यह भी दिखाने का प्रयास किया है कि समाज में परिवर्तन नियम के डर से नहीं हो सकता क्योंकि समाज में परिवर्तन तभी संभव है जब लोगों के हृदय में परिवर्तन आऐगा।

४.३.२.११ **एक बार फिर (२००२)**

४.३.२.११.१ **पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण**

यह नाटक कथ्य प्रधान है। इसलिए पात्र एवं चरित्र उतना प्रमुख नहीं है। इस नाटक में कथ्य को आगे ले जाने वाला है-पात्र। नाटक में केवल सात पात्र ही है। ज़्यादात्तर पात्र सवर्ण मानसिकता के प्रतिनिधि के रूप हमारे सामने आते है। श्री चिरकुटनाथ जी महाराज जो एक छल-कपटी संत के रूप में चित्रित किया है। इनका शिष्य है सुरसुरानंद झा। बाबा के दो चेले मंत्री के रूप है बरगदलाल तिवारी एवं चुरनमल पाण्डेय। पं. मनसुखलाल शास्त्री को दलित जाग्रति से चिंतित अखिल भारतीय सनातन ब्राह्मण महासभा के जेनरल सकरेटरी के रूप में किया है। नाटक का अन्य पात्र है-रामकिकर सिंह 'तोंदवाले' एवं एक दलित युवक। पात्र योजना के अन्तर्गत नाटककार ने प्रस्तुत नाटक के कथ्य के अनुरूप पात्रों की सृष्टि की है।

४.३.२.११.२ **संवाद एवं भाषा शैली**

नाटक का संवाद सरल, सहज और हास्यास्पद है। कहीं-कहीं तीखा व्यंग्य भी है जिसके ज़रिए छल-कपटी बाबाओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। जैसे-

"सावधान... परमपूज्य... साधना-मर्मज्ञ...महान तेजस्वी श्री श्री १०८ श्री चिरकुटनाथ जी महाराज उर्फ चिरकुण्डा बाबा, अपने शिष्य श्री सुरसुरानंद झ के साथ पधार रहे हैं...!!!"[51]

---

[51] एक बार फिर- सुनील कुमार सुमन- आदिवासी स्वर और नई शताब्दी- रमणिका गुप्ता, पृ.271 से उद्धृत।

"सुरसुरानंद : ...आ हा हा हा...धन्य हैं गुरुदेव! एक और गिराइए.. मेरा मतलब एक और सुनाइए गुरूदेव, ज्ञान की गंगा बहाइए, विवेक की ज्योति जलाइए महाराज!"[52]

नाटककार ने संवादों के जरिए दलित चेतना को खूब उभारा है। देखिएः-

"दलित युवक : मनु की औलादो,... तुम लोगों का समय अब खत्म हो चुका है। सैकड़ों साल से दबाए-सताए जा रहे दलितों के दिल में जो आग सुलग रही है, जिस दिन यह आग धधक डठी, तुम सबों के अत्याचार को खत्म कर के रहेगी...और वह दिन जरूर आएगा।"[53]

तीखे एवं वजनदार संवादों के जरिए दलित समाज को सवर्ण समाज के षड़यंत्र से आगाह किया है। जैसे-

"चुरनमल : हां महाराज, बरगद भाई बिल्कुल प्रैक्टिकल बात कह रहे हैं। आज हमें दलित-पिछड़ों को आगे बढ़ने से रोकना है तो सबसे पहले उन्हें अलग-अलग करना होगा। इनके बीच आपसी मतभेद एवं नकरत पैदा करनी होगी।

* * * * * * * *

[52] एक बार फिर- सुनील कुमार सुमन- आदिवासी स्वर और नई शताब्दी- रमणिका गुप्ता, पृ.272 से उद्धृत।

[53] वहीं, पृ.276 से उद्धृत।

चुरनमल : महाराज, हमने अपने सभी सहयोगी संगठनों को सीधा निर्देश दिया है कि दलितों के बीच अलगाववाद, क्षेत्रवाद और कटूता की भावना फैलाओ, अलग-अलग क्षेत्रों और राज्यों के दलितों की अलग-अलग विचारधारा बनाओ, सबको आपस में लड़ाओ, भिड़ाओ, मार कराओ...!"[54]

नाटक में संवाद कथ्य के अनुरूप चलता है। इस तरह नाटककार ने आज की सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों का खुलासा संवादों के ज़रिए व्यक्त किया है।

४.३.२.११.३ **दृश्य योजना**

एक बार फिर नाटक को दो दृश्य में विभाजित किया है। पहले दृश्य में श्री चिरकुटनाथ, उनका शिष्य सुरसुरानंद झा व मनसुखलाल शास्त्री के द्वारा दलितों में आये जाग्रति पर आकुलता व्यक्त किया है। सवर्ण मानसिकता वाले चिरकुरनाथ और उनके साथीओं का उत्कण्ठा है कि कहीं दलित समाज के लोग उनके बराबर न हो जाएंगे। दूसरे दृश्य में चिरकुटनाथ के दो चेले मंत्री द्वारा दलितों के विकास को रोखने केलिए किये जा रहे कार्यओं का विवरण है। दो दृश्य के अंदर नाटककार ने कथ्य को सम्मिलित किया है।

४.३.२.११.४ **उद्देश्य**

सुनील कुमार 'सुमन' का नाटक 'एक बार फिर' में वर्तमान राजनीतिक परिवेश की पड़ताल करता हुआ दलितों पर मँडराते संकटों को चित्रित कर के भविष्य

---

[54] एक बार फिर- सुनील कुमार सुमन- आदिवासी स्वर और नई शताब्दी- रमणिका गुप्ता, पृ.282 से उद्धृत।

में होने वाले खतरों से आगाह करने के उद्देश्य लिखा गया है। दलित समाज को प्रत्येक-प्रत्येक कौमों में बाँटकर प्रत्येक को अपने दायरे में सीमित कर परंपरावाद की ओर धकेलने का साजिश किया जा रहा है। इसके ओर नाटककार ने संकेत किया है। साथ ही दलितों को एक बार फिर हाशिए पर धकेल देने की साजिश को विद्रोही तेवर में व्यक्त किया है।

४.३.२.१२ रास्ते, चोर रास्ते

४.३.२.१२.१ पात्र एवं चरित्र चित्रण

रास्ते, चोर रास्ते नाटक में मौजूदा दलित समस्या और संघर्ष का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसलिए कथ्य के अनुरूप पात्र परिकल्पना एवं सृष्टि किया गया है। इस नाटक खरीब तेरह पात्र है। इस नाटक के पात्र है- काका, सतीश गोडघाटे, अर्जुन, सोनल, हेमा दासराव, शेवंता आदि।

अर्जुन इस नाटक का प्रमुख पात्र है। जो बी. ए. के छात्र है। वह एक स्वाभिमानी एवं साहसी दलित युवक है। वह हमेशा अपनी जाति और गरीबों की उन्नति के लिए कार्यरत है। दलित जाति को किसी के द्वारा नीचा करके देखना वह सह नहीं पाता। दासराव द्वारा उसकी जाति के बारे में कहने पर उसे बहुत गुस्सा आता है और अपने गुरू के रूप में उसे मानने को तैयार नहीं होता। अन्याय व अत्याचार का वह हमेशा ठढ़कर विरोध करता है। जब बाढ़ पीड़ितों के लिए बनाया गया मकान उनको दिये बिना कॉन्ट्रॉक्टर पवार द्वारा अपने रिश्तेदारों को देना की कोशिश करता है तो वह मकानों का ताला तोडकर उन मकानों में बाढ़ पीड़ित दलितों को बसाता है। शेवंता की मृत्यु में दूसरे लोगों द्वारा उसे मुजरिम कहने पर भी वह धैर्य नहीं खोते है। जब कोर्ट ने उसे निर्दोषी घोषित कर छोड देते है तब

फिर से वह आंदोलन से जुड़ जाता है। सोनल से वह बहुत प्यार करता था, लेकिन उसकी शादी दूसरे से तय कर दिया जाता है। लेकिन अर्जुन इससे दुःखी नहीं होता। क्योंकि उसका मनना ता कि यदि सोनल से विवाह करते तो उसके प्रेम में वह अपने आंदोलन को, भूल जाएगा। वह आंदोलन से मुँह मोड़ना नहीं चाहता है। वह मानता है कि प्रोग्रेसीव होने से कोई काम नहीं चलता, अगर आंदोलन में उतरना है तो बहुत कीमत चुकानी पड़ती है। इस प्रकार एक नवयुवक का जोश, धैर्य, नैतिकता, नेता होने का साहस सब अर्जुन के चरित्र में देखने को मिलता है।

नाटक के प्रमुख पात्रों में एक है-सतीश गोडघोट। वह कॉलेज में प्राध्यापक है। वह एक ब्राह्मण युवती हेमा से प्रेम-विवाह करता है। वह हमेशा सत्य और न्याय के पक्ष में है। इसलिए ही काका जी उसे 'सत्तेवान' नाम से पुकारते हैं। अपनी नीति में अडे रहने के कारण काकाजी के कहने पर भी वे शेवंता को झूठा सर्टिफिकेट देने को तैयार नहीं होता है। शेवंता की मृत्यु में कॉलेज के सभी प्राध्यापक और प्रिंसिपल अर्जुल को मुल्जिम ठहरने पर भी सतीश उसको एकमात्र सहारा देता है। यह केवल अर्जुन के पास न्याय होने के कारण ही है। वे अपनी जाति के गरीब लोगों के लिए हाउसिंग सोसाइटी की स्थापना करते हैं। अपने शिष्यों को गलत रास्ते पर चलते देखकर उसे बड़ा दुःख होता है। वह अपनी पत्नी से अटूट प्रेम संबंध रखते हैं। अपने काका जी का भी बड़ा आदर करता है। अंत तक आते-आते सतीश समझ जाता है कि सच्चे उद्देश्य से चलनेवाले आंदोलनों को हमें किनारे पर खडे रहकर नहीं देखना चाहिए, उसके साथ-साथ हाथ मिलकार उसे मज़बूत बनना चाहिए। इस तरह नाटककार ने एक उदात्त चरित्र के रूप में सतीश का चरित्र-चित्रण किया है।

नाटककार ने काका जी के चरित्र को अम्बेडकर के विचारों का संवाहक के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। यह पात्र प्राध्यापक सतीश गोडघोट के काका है। काका जी बौद्ध धर्म और बाबा साहेब अम्बेडकर के आदर्शों पर बहुत भरोसा रख्रते है। वे हमेशा अपनी जाति की उन्नति के लिए काम करते हैं और दलितों-गरीबों के रक्षक बनते हैं। अवसर मिलने पर सामंतवाद का कटु आलोचना करते है। इस प्रकार काका जी के चरित्र को नाटककार ने एक सशक्त पात्र के रूप में चित्रित किया है।

नाटक के नारी पात्रों में सशक्त पात्र है- हेमा। हेमा सतीश की पत्नी है। वह अपने प्रेम की सफलता के लिए घर-परिवार को छोडकर दलित जाति के सतीश से विवाह कर लेती है। उसे हमेशा खुलकर बातें करना पसंद है। हेमा काका को एक पुत्री के रूप में, सतीश को एक पत्नी के रूप में अर्जुन और सोनल को एक बड़ी बहन के रूप में आंतरिक शक्ति देती है। इस तरह नाटककार ने अपनी पति की अच्छाईयों को समझ्कर उसको सहारा देनेवाली नारी के रूप में हेमा का चरित्र-चित्रण सफल रूप से किया है।

नाटककार ने दासराव के चरित्र को उन व्यक्तियों के अनुरूप किया है जो अपने को प्रगतिशील तो कहते लेकिन उन के मन में आज भी जाति-पाँति की जड़ें कयाम है। दासराव सतीश के कॉलेज के ही प्राध्यापक है। वह अपने आपको प्रोग्रसीव समझ्ते है, लेकिन उसकी कथनी और करनी में अंतर है। वह मिलिंदनगर में बाढ़ पीडितों के लिए बनाया गया मकानों पर कोंट्राक्टर पवार के साथ मिलकर ख्बज्जा करना चहता है। वह जितने भी प्रोग्रसीव बातें करने पर भी उस के मन में जाति का विष अब भी मौजूद है। इसलिए ही वह अपनी पुत्री का विवाह दलित

जाति के अर्जुन से करने के लिए तैयार नहीं होता है। लेकिन सोनल से यह बात खुलकर नहीं बता पाता है, क्योंकि उसका प्रोग्रेसीव चिंतन का नकाब टूट जाएगा। हेमा के साथ अच्छा व्यवहार करने पर भी वह दूसरे के सामने उसको गालियाँ देता है। इस प्रकार दासराव नाटक में ऐसा एक पात्र है जो अपनी स्वार्थपुर्ति के लिए समय-समय पर अलग-अलग नीति बनाता है।

शेवांता नाटक का गैण पात्र है, जो एक गरीब दलित लडकी है, जिसका कोई सहारा नहीं है। फिर भी शेवंता के चरित्र का नाटक में अपना एक स्थान है। इस प्रकार प्रत्येक पात्रों को संदर्भ के अनुसार रूपायित करने में नाटककार सफल हुए हैं।

४.३.२.१२.२ संवाद एवं भाषा शैली

नाटक में संवादों का गठन सही ढंग से हुआ है। पात्रों के बीच का संवाद प्रत्येक पात्र की मानसिकता और चरित्र को व्यक्त करनेवाला है। नाटक में संवाद के लिए सरल बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। नाटककार ने संवादों के जरिए मौजूदा दलित समस्यों को प्रस्तुत किया है। देखिए:-

> "अर्जुन : ... जिस जाति में अपनी इच्छा से पैदा नहीं हुआ हूँ उस जाति ने। पढ़ना भी नहीं है मुझे। बेरोजगार क्या कम पड़े है इस देश में? क्या मिलेगा मुझे पढ़ लिखकर? कौन मिटायेगा मेरे नाम लगायी गई जाति की मोहर?"[55]

---

[55] रास्ते चोर रास्ते- प्रो. दत्त भगत, पृ.537

नाटक के संवाद छोटे-छोटे हैं साथ ही विषय की गंभीरता के अनुसार कहीं-कहीं संवाद लंबा भी हो जाता है। नाटककार ने संवादों की भाषा पात्रों की मनोभावों को ध्यान में रखकर किया है।

४.३.२.१२.३ दृश्य योजना

प्रस्तुत नाटक दो अंकों में विभाजित है। प्रथम अंक दो दृश्यों में बाँटा है और दूसरा अंक तीन दृश्यों में बाँटा गया है।

प्रथम अंक का पहला दृश्य सतीश गोडघाटे का घर है। इस दृश्य में हेमा और काका के बीच संवाद, दासराव का आना, काका और दासराव जी की बातचीत, सतीश का आना और दासराव जी से संवाद, आगे अर्जुन का प्रवेश जैसे संदर्भों को जोड़ा गया है। इस दृश्य से हमें नाटक के प्रत्येक पात्र का एक स्पष्ट चित्र मिलता है। दूसरे दृश्य भी वहीं घटित होता है। इस दृश्य में प्रस्तुत पात्रों के अलावा सोनल की भी प्रस्तृति है।

दूसरे अंक के प्रथम दृश्य में दलितों के मोर्चा निकलने के बारे में हेमा, सतीश, अर्जुन और दासराव जी की बातचीत है। मिलिंदनगर में गोली चलाने से शेवंता की मृत्यु भी इसी दृश्य में होता है। दूसरे दृश्य में काका का आंदोलन से मुडना, अर्जुन को काका शेवंता की मृत्यु में दोषी कहना जैसी घटनाएँ होती है और इस दृश्य में काका की मृत्यु भी दिखाई गयी है। अंतिम दृश्य में काका की मृत्यु के छः महीने बाद की घटनाएँ प्रस्तुत की गयी हैं। इसमें सोनल का विवाह तय करना, अर्जुन द्वारा उसे दंगे से बचाना, हेमा और सतीश को अर्जुन की अच्छाईयों का समझना जैसी घटनाएँ है। इस प्रकार सत्य का एक नये अंकुर की प्रतीक्षा के साथ नाटक समाप्त होता है।

४.३.२.१२.४ उद्देश्य

प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने मौजूदा दलित जीवन और समस्याओं का आकलन किया है। वर्तमान समाज में पढ़े-लिखे दलितों को जिस प्रकार की समस्याओं और अपमानों को सहना पडता है उसका चित्रण करना नाटककार का उद्देश्य है। साथ ही आधुनिक समाज में अपने को प्रगतिशील कहनेवाले के मन में छुपे जातीय मानसिकता के कीटाणुओं की जाँच-पड़ताल करना भी नाटककार का मक़सद है।

४.३.२.१३ कोर्ट मार्शल

४.३.२.१३.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

'कोर्ट मार्शल' नाटक वर्तमान जीवन की कहानी लेकर सामने आते है। इसलिए प्रस्तुत नाट्यकृति में वर्तमान समाज और उसमें रहनेवाले लोगों के आचार-विचार, संस्कृति, मानसिक व्यापार तथा सामाजिक प्रतिबद्धता को दर्शाया है। पत्रि परिकल्पना एवं सृष्टि देशकाल, वेश-भूषा, भाषा आदि का ध्यान रखते हुए किया है। इस नाटक के हर एक पात्र हमारे जीवन के इर्द गिर्द धुमने वाला पात्र है।

नाटक का केंद्रीय पात्र सवार रामचंदर है। जो बख्तरबंद रेजमेंट का सैनिक है। सेना की अनुशासन, श्रम व खेलकूद में अव्वल है। वे रेजमेंट के सबसे चुस्त जवानों में एक है। फौंज में रामचंदर पर कभी कोई शिकायत नहीं हुई। वे ड्यूटी का पक्का और ईमानदार है। उत्तरी कमान के खेलों के मुकाबले में पाँच हज़ार मीटर की दौंड में रामचंदर ने जीत हासिल किया तथा उसे एशियाई प्रतियोगिता के लिए सेना के प्रतिनिधि के रूप में चुना गया। रामचंदर निम्न जाति से था इसलिए

ऊँच जाति के दो ऑफिसर उसे लगातार अपमानित करते है। लेकिन वे अपने स्वाभिमान को उसके सामने गिरवी नहीं रकते है और जीवन में निरंतर जाति व्यवस्था और बर्जुआ मानसिकता के ख़िलाफ संघर्ष करता रहता है। इस तरह रामचंदर को समाज में हो रहे दलित उत्पीड़न तथा अत्याचार के ख़िलाफ संघर्षरत दलित मानसिकता का प्रतीक के रूप में चित्रित किया है।

नाटक में कैप्टन बी.डी.कपूर के चरित्र उच्च वर्ग के सामंतवादी मानसिकता प्रतिनिधित्य करता है। ऐसे व्यक्तियों के मन में निम्न जातियों को लेकर घृणा इतनी व्यापक रूप में व्याप्त होता है कि जब ऐसी जातियों का कोई व्यक्ति (जैसे नाटक में रामचंदर) उनकी बराबरी करने लगते हैं तो ये लोग सहन नहीं कर पाते हैं। इसलिए निम्न वर्ग के लोगों को समाज में ऊपर उडने नहीं देता। जिस तरह जाति में निम्न रामचंदर ने पाँच हज़ार मीटर के दौड़ में उनसे आगे निकल जाने के डरसे उसे प्रैक्टिस करने से रोकता है। आज भी हमारे समाज में इस तरह के लोग देख्ने को मिलता है जो अपने से निम्न जाति के लोग के रास्ते में अड़चने पैदा करता है। उन्हें समाज में आगे बढ़ने नहीं देते हैं और ख़ुद आगे बढ़ने के लिए कोशिश भी नहीं करता है। इन जैसे लोगों के प्रतिनिधि के रूप में बी. डी.कपूर के चरित्र का निर्माण किया गया है। कैप्टन कपूर हर समय शराब पीकर अपनी पत्नी को पीड देता है और सैना से मुफ़्त में मिलने वाला राशन भी बाहर दूकान में भज देता है। इस तरह सामंतवादी तथा अपने ख़ानदान पर घमंड करने वाला एक शराबी, भ्रष्टाचारी अफसर के रूप बी.डी.कपूर का चरित्र-चित्रण किया गया है। नाटक के कथ्य को आगे बढ़ाने में बी.डी. कपूर का चरित्र महत्वपूर्ण स्थान निभाया है।

नाटक का सबल चरित्र सरकारी वकील कैप्टन बिकाश राय का है। समाज में शोषक और शोषितों का निरंतर संघर्ष चलता रहता है। इसलिए साहित्यकारों का हमेशा के लिए शोषितों का पक्ष लेना चाहिए। इसी विचार-धारा का समर्थन कैप्टन बिकाश राय करते हैं। तथ्य और तकनीकी दांव-पेंच को दर-किनार कर जटिल मानवीय सत्य की तलाश करते हुए, एक-एक कर सभी आश्वस्त, अहंकारी और चुस्त गवाहों की उनकी आत्मा के कटघरे में खड़ा कर मुजरिम बना देनेवाले शांत, संवेदनशील, स्माइलिंग टाइगर और प्रखर बचाव के वकील बिकाश राय का चरित्र तो अत्यन्त प्रभावशाली ही है। उनका चरित्र इतना ताकतवार है कि वह कर्नल सूरत सिंह को भी अपने चंगुल में फंसाता है। बिकाश राय को रामचंदर के प्रति सहानुभूति है। वह चाहता है कि वर्ण भेद के भीषण स्थिति सामने आये। बिकाश राय की मंशा रामचंदर को फांस से बचा लेने से ज्यादा उस अन्याय और उत्पीड़न को बनेकाब करने की है, जिसे उँची जात, और ऊँची कमाई वालों ने अपना हक मान लिया है। बिकाश राय उस सत्य को खोलना चाहता है, जिसे रामचंदर ने दबा रखा है। वह उस वास्तविकता के प्रति कोर्ट, अफसर और समाज का ध्यान आकृष्ट करना चाहता है, जिस सत्य को जानते हुए भी सभी आँखें चुराते हैं। वह उन सभी व्यक्तियों के भीतर सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय के प्रति लड़ाई छेड़ देता है जिनके भीतर मनुष्यता की कौंध बाकी है। वह रामचंदर को बचा तो नहीं सका मगर उसकेलिए आत्माओं में बेचैनियाँ पैदा करता हैं। नाटककार ने बिकाश राय को 'द स्माइलिंग टाइगर' नाम दिया है। क्योंकि बाघ ने कभी अपने शिकार को बचने नहीं दिया है। उनके सामने आये सभी पात्र शिकार हैं यहाँ तक कोर्ट मार्शल का प्रीज़ाईडिंग अफसर भी। किसी को भी उसके पंजे से बचाना मुश्किल है। क्योंकि कि बिकाश राय सत्य के पूजारी है। इस तरह बिकाश राय का चरित्र बहुत ही

प्रभावशाली ढंग से नाटककार ने चित्रित किया है। एक तरह से नाटककार को जो कहना है उसे बिकाश राय द्वारा प्रस्तुत किया है।

नाटक के प्रमुख पात्रों में एक कर्नल सूरत सिंह जो इस कोर्ट मार्शल के प्रीज़ाईडिंग अफसर है। नाटक में सबसे पहले कर्नल सूरत सिंह अपना परिचय देता है। उसकी बातों से पता चलता है कि वह दया और क्षमा से शून्य है तथा अहंकारी और क्रूर है। जब कर्नल सुरत सिंह कोर्ट मार्शल का प्रीज़ाईडिंग अफसर बनता है तब किसी के बचने की संभावना नहीं रहती है। सैनिकों की बातचीत से यह स्पष्ट हो जाता है कि वह कितना कठोर एवं निर्मम दिलवाला है। सूरत सिंह सत्य के रास्ते पर चलनेवाला और फौज के अनुशासनों का पालन करनेवाला एक सख्त कर्नल है। लेकिन नाटक के अंत में इनके चरित्र में बदलाव दिखाई देता है। वे रामचंदर जैसे निम्न जाति के व्यक्ति के साथ बहुत ही सहानुभूति से व्यवहार करता है। नाटककार ने इनका चरित्र-चित्रण समाज के बदलते मानासिकता के रूप में किया है।

नाटक के अन्य पात्र-मेजर अजय पुरी, सुबेदार बालवान सिंह, डॉक्टर कैप्टन गुप्ता, लैफ्टनिंट कर्नल ब्रजेंद्र रावत, जज, सलाहकार जज, गार्ड आदि नाटक के गौण पात्र है। अतः ये सब पात्र कत्य को आगे बढ़ाने में भागीदार है।

४.३.२.१३.२ संवाद एवं भाषा शैली

नाटककार स्वेदश दीपक ने संवाद योजना एवं नाट्य-भाषा नाटक की कथावस्तु और रंग मंच के अनुरूप रखा है। इस नाटक का संवाद गंभीर तथा विचारोत्तेजक है। निम्नलिखित संवाद इसका प्रमाण हैं-

"बिकाश राय : .....जीवन और मृत्यु के निर्णय तकनीकी आधार पर नहीं, जो सच है उस पर होते हैं। और सच। सच तो हमेशा अपने आप बोलता है। झूठ की धुमावदार गलियों में कभी रास्ता नहीं भटकता बिल्कुल नहीं भटकता।"[56]

"बिकाश राय : सुबेदार साहब। सच केवल उतना ही नहीं होता जितना दिखाई दे। सच का केवल एक हिस्सा हम अपनी आँखों से देखते हैं और पूरा का पूरा सच मानने का गलती कर बैठते हैं। और फिर यह कहाँ जरूरी है कि जो कुछ आप, हम देखें, वह सच ही हो।"[57]

नाटककार ने संवादों के जरिए चरित्र निरूपण तथा कथावस्तु को आगे बढ़ाया है। नाटक के संवादों में बोधगम्यता, प्रभावोत्पादकता एवं संप्रषणीयता है।

"कैप्टन कपूर : मैं, और दुश्मन हो गया रामचंदर का। दुश्मनी बराबरवालों से की जाती है, छोटे लोगों से नहीं। यू आर टाकिंग बुलशिट।

विकाश राय : यह छोटे लोग क्या होता है?

कैप्टन कपूर : (हैरान होकर) छोटे लोग होते हैं छोटे लोग।

बिकाश राय : जैसे कि रामचंदर। क्यों। ठीक है न। अच्छा। क्या आप रामचंदर को चूहड़ा और भंगी कहकर पुकारते थे कैप्टन वी.डी. कपूर।

---

56 कोर्ट मार्शल- स्वदेश दीपक, पृ.26

57 वहीं, पृ.32

कैप्टन कपूर : नहीं। वह झूठ बोलता है। और फिर भंगी को भंगी बुलाया जाए तो क्या क्राईम हो गया?

बिकाश राय : (प्रत्येक शब्द पर बल देते हुए) कोई क्राईम नहीं कैप्टन भिखारीदास कपूर।

कैप्टन कपूर : (चीखता है) ठीक से पुकारो मेरा नाम। बी.डी. कपूर।"[58]

भाषा शौली के दृष्टि से भी कोर्ट मार्शल नाटक महत्वपूर्ण है। इसमें अंग्रेजी भाषा, मुहावरा और कहीं-कहीं व्यंग्य का भी प्रयोग किया गया है।

अफसरों के बीच संवाद के लिए अंग्रेजी भाषा को प्रमुख रूप से इस्तमाल किया गया है।

"रावत : ...वॉट डू यू मीन कैप्टन। क्या तुम मुझे ब्लेम करने की कोशिश कर रहे हो।

बिकाश राय : नो। ऑफकोर्स नॉट। आपको क्योंकर ब्लेम किया जा सकता है। आप तो जानते ही नहीं कुछ। (अपने आपसे) समथिंग इज़ रॉटन इन द स्टेट ऑफ डेनमार्क।"[59]

बीच-बीच में मुहावरों का प्रयोग भी नाटक में देखा जा सकता है।

"बिकाश राय : ...बाघ जब झपट्टा मारता है तो कम से कम सात घाव करता है।"[60]

---

58 कोर्ट मार्शल- स्वदेश दीपक, पृ.85

59 वहीं, पृ.58

60 वहीं, पृ.56

नाटककार ने कभी-कभी अपनी भाषा को तेज़ करने के लिए व्यंग्य का भी प्रयोग किया है।

"बलवान सिंह : ....मुझे सी. ओ. साहब को सब कुछ बता देना चाहिए था। फिर शायद यह खून न होता।

बिकाश राय : (व्यंग्य से) होता। खून फिर भी होता। आपसे कोई गलती नहीं हुई सुबेदार साहब। इस व्यवस्था का यही नियम है। छोटे आदमी की शिकायत को वहीं दबा दो और बड़े आदमी की गलती देखकर आँखें बंद कर लो। नहीं। कोई गलती नहीं हुई आपसे।"[61]

इस तरह नाटककार ने सरल, स्वाभाविक भाषा का प्रयोग किया है तथा कथानक, पात्रों और वातावरण के अनुकूल भाषा शौली का भी प्रयोग किया है।

४.३.२.१३.३ दृश्य योजना

'कोर्ट मार्शल' नाटक को दो अंकों में विभाजित किया है। पहले अंक में घटना और समस्या का विवरण है। दूसरे अंक में संघर्ष का चरमोत्कर्ष और अंत है। नाट्यारंभ, उद्‌घाटन, चरमसीमा और नाटकान्त इन सब को स्वदेश दीपक ने दो अंकों में ही सम्मिलित किया है।

नाटक के दृश्यांकन में चार खिडकियों का महत्वपूर्ण स्थान है। नाटक में पात्रों की तरह यह चार खिडकियाँ भी सजीव रहती हैं। ये खिडकियाँ एक तरह से मनुष्य के विकृत रूप को उद्‌घाटित करने में सफल भूमिका निभाता है। सत्य के खिलाफ

---

61 कोर्ट मार्शल- स्वदेश दीपक, पृ.79

जो षड्यंत्र रचा जा रहा था, उसका पोल ये खिडकियाँ खोलती है। ये चार खिडकियाँ का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से किया गया है। ये खिडकियाँ सारे सत्य को खोलती हैं। वह सत्य जो हम देख कर भी अनदेखा कर देता है। हमारे चारों और जितने भी चेहरे हैं, उन सब की असलियत सामने लाती है।

नाटक का अंतिम दृश्य बहुत ही हृदयस्पर्शी है। इस दृश्य में सभी समान विचारों के लोग एकत्र होते हैं और एक दूसरे के जीवन के सुःख एवं दुःख में समरस होने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार नाटककार ने कथावस्तु को निरंतर रखने के लिए दो अंकों में दृश्यों का सफलतापूर्ण संयोजन किया है। इस अवसर पर गिरिश रस्तोगी का वाक्य उल्लेखनीय है- "वही स्थान, वही सेट, वही लोग, वही बहस, वही तर्क, कानूनी हथकण्डे लेकिन नाटक में कहीं भी एकरसता नहीं आती, बल्कि यह मनुष्यत्व की विजय के लिए मरने का संवेदनापूर्ण नाटक बन गया है।"[62]

४.३.२.१३.४ उद्देश्य

दलित अस्मिता की अभिव्यक्ति 'कोर्ट मार्शल' नाटक का मुख्या उद्देश्य है। भारतीय समाज में असमता का मूल कारण जातिगत भेदभाव और वर्ण विभाजन है। जाति के नाम पर सवर्ण जाति के लोगों द्वारा अवर्णों पर किए जानेवाले अन्याय एवं अमानवीय दबाव के मनोवैज्ञानिक पक्ष को नाटककार ने इस नाट्य कृति में उभारा है। नाटक के उद्देश्य के बारे में डॉ.माधव सोनटक्के कहते है कि- "जवान रामचंदर के कोर्ट मार्शल की सनसनीखेज तथा मेलोड्रमेटिक कहानी प्रस्तुत करना नाटककार का उद्देश्य नहीं है बल्कि रामचन्दर जैसे होनकार, अनुशासन प्रिय, ड्यूटी का पक्का,

---

[62] हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष- गिरिश रस्तोगी, पृ.277

ईमानदार को इतना संगीन जुर्म करने केलिए विवश करनेवाले वे कौन से तत्व हैं, उन्हें स्पष्ट कर समकालीन व्यवस्था में छिपी उन प्रवृत्तियों का पर्दाफाश करना है।"[63] इस तरह यह नाटक हमारी समकालीन व्यवस्था में छिपे उन चेहरों का अनावृत्त करता है जो लोग जाति व्यवस्था की आड़ में निम्न वर्ग का बेरहमी से शोषण करते हैं। दलितों पर हो रहे अत्याचारों को प्रस्तुत करके समाज में जागरण के उद्देश्य से स्वदेश दीपक ने इस नाटक की रचना की है और वे अपने उद्देश्य में सफल भी हुए हैं।

४.३.२.१४ दलित

४.३.२.१४.१ पात्र योजना एवं चरित्र चित्रण

नाटककार ने दो कथाओं को नाटक में चित्रित किया है। अर्थात् दोनों कथाओं में प्रत्येक-प्रत्येक पात्रों को चित्रित किया गया है। भरोसी, कटोरी, मातादीन, पल्टू, गैदासींग, रामस्वरूप, दीनानाथ पंडित आदि भीतर के नाटक का पात्र है। भरोमी का चित्रण एक दलित मज़दूर के रूप हुआ। कटोरी का चित्रण सामंतवादी व्यवस्था द्वारा कुचले जानेवाले स्त्री के रूप में हुआ है। बंधुआ मज़दूरी के लिए मज़बूर दलित मज़दूरों की लाचारी तथा बंधुआ मज़दूरों के प्रति ज़मीन्दारों के अमानवीय अत्यतार का चित्रण नाटककार ने पल्टू के चरित्र द्वारा दिखाया है, जो एक बंधुआ मज़दूर के रूप में हमारे सामने आता है।

गैदासींग का चित्रण आज भी देखने को मिल रहे सामन्ती व्यवस्था के प्रतीक रूप में किया है। भारत को आज़ादी तो मिल गए लेकिन आज भी यहाँ सामन्ती व्यवस्था जारी है। ऐसी व्यवस्था में उसका ही चलता है जो ताकतवर है। वही

---

63 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में शोषण के विभिन्न रूप- डॉ. सुरेश नामदेव तायडे, पृ. 311

ताकतवाला कमज़ोरों का शोषण करता है यह शोषण कई स्तरों पर चलता है, जैसे- श्रम शोषण, यौन शोषण आदि। सदियों से जारी इस शोषण का चित्रण नाटककार गैदासींग के चरित्र द्वारा दिखाया है।

रामास्वरूप को भीतर के नाटक में दारोगा के रूप में चित्रित किया है। इस पात्र के द्वारा नाटककार ने पुलिस द्वारा दलितों पर किये जानेवाले अमानवीय अत्यचार और शोषण की ओर संकेत किया है। पुलिस अपराधी को पकड़ता ही नहीं, बल्कि उसको प्रोत्साहन देती है और बेकसूर भरोमी जैसे दलितों को पटिती है तथा उससे रिश्वत भी माँगता है।

दीनानाथ पंडित के चरित्र द्वारा नाटककार ने बाह्मण वर्ग की लंपटता का चित्रण किया है। दीनानाथ पंडित ब्राह्मण और स्कूल का शिक्षक है। बूढ़ा होने पर भी उसकी लंपटता समाप्त नहीं हुई। थाने में कटोरी को देखकर उसका जी ललचता है। दैनिक जीवन में पशु से भी गया बीता जीवन बितानेवाले दलित उनकेलिए अस्पृश्य है। लेकिन इस तरह के मामले में उन्हे न कोई अस्पृश्यता है और न छुआछूत। वह दारोंगा की अनुमति से पुलिस थाने में ही कटोरी का दैहिक शोषण करता है।

मूल नाटक के नायक नवीन है। जो नाटक में भीतर नाटक के निर्देशक के रूप में हमारे सामने आते है। नवीन ऊँची जाति के होने पर भी वह वामपंथी रूझान के कारण दलितों से मिला हुआ है। वह दलितों के मुक्तिकामी संघर्ष का समर्थक है। उसे राजनीति से उतना सरोकर नहीं जितना नाटक से है। नवीन के चरित्र को दलितों के हमदर्द सवर्ण युवक के रूप में प्रस्तुत किया है। नायिका मीना निम्न वर्ग के प्रतिनिधि है। जो भीतरी नाटक में कटोरी की रौल करती है।

रामचन्दर को अवसरवादी युवक रूप में चित्रित किया है। यादव व टंडन मिश्रा उस राजनैतिक नेताओं का प्रतिनिधि है जो दलितों का हिमायती बनकर उनका वोट कमाना चहता है। मूल नाटक के अन्य पात्र है- भजना, कल्ला, तुलाराम, डरूआ, गुल्टू आदि।

इस तरह नाटककार कथावस्तु के अनुसार पात्र योजना की है।

४.३.२.१४.२ संवाद एवं भाषा शैली

नाग बोडस ने नाटक में भाषा और संवाद पात्रानुकूल ही रख्रा है। नाटक का संवाद सहज एवं सरल है।

गायक और नवीन के बीच संवाद देखिएः-

"गायक : एक बार की पिरकटिस की जरूरत है। बस, फिर तैयार है।

नवीन : अब कब होगी प्रेक्टिस?

गायक : कल पक्का तैयार हो जाएगा।

नवीन : होना ही चाहिए। कम-से-कम दो दिन तो दोगे रनथ्रू के लिए?"[64]

बीच-बीच में गीत के जरिए कथ्य को आगे-बढ़ाया है। जैसे-

"ये भरोसी और वो मातादीन
इनके किस्से में न मेख्र न मीन
ज़मींदारने इसकी औरत भगई

[64] दलितः नाग बोडस, पृ.119

दरेगा ने वो याने पे लाई, छोड़ने वास्ते घूस मँगाई
भरोसी को रकम के बदले
उसी ज़मींदार ने जमीन गिरवी रखाई
एक की घूस ने दूसरे को जमीन दिलाई
मिलीभगत दीखती नहीं, मगर पुलिस ज़मींदार
एक डोरी से बँधे है भाई।
ढूँढ़ो, संबंध ढूँढ़ो मेरे भाई।
दरोगा जमींदार एक कैसे हो गए?"[65]

नाटककार ने नाटक के संवाद में 'स्वगत' जैसे नाट्य प्रयोग भी किया है। 'स्वगत' कथन का अर्थ है, किसी पात्र का इस प्रकार बोल कर अपने भाव-विचार स्पष्ट करना की दूसरा कोई न सुने या अकेलेपन में ही बात करना। जैसे:-

"दरोगा : (स्वगत) आया नहीं बो खूसट चमट्टा अब तलक! कहीं छोड़ तो नही देगा इसे? जो न आया तो मुस्किल पड़ जाइगी।"[66]

इस तरह नाटककार ने संवादों के स्तर पर कई तरह के जोरदार प्रयोग किये है। नाटक में भद्रपुरुष के लिए अंग्रेज़ी का प्रयोग किया गया है। जैसेः-

---

65 दलितः नाग बोडस, पृ.118
66 वहीं, पृ.104

"भद्रपुरुष : (भद्रपुरुष-२ से)... आय विश शी कटीन्यूज इट अनटिल द टाइम द कॉर्प्स लूजेज इट्स रेझिस्टेंस टु डिके। ईव्हन इफ इट बी फॉर ए मंथ और मोर।"[67]

इस तरह नाटककार ने संवाद योजना पात्रोचित, कथावस्तु के अनुरूप किया है।

४.३.२.१४.३ दृश्य योजना

'दलित' नाटक को दो अंकों में विभाजित किया है। प्रथम अंक में एक ही दृश्य है। इस अंक में युवा दलित मोर्चो के लोग अपने प्रचारात्मक नाटक 'अब कहने की बारी है' की ड्रेस रिहर्सल कर रहा है। नाटककार ने एक नाटक के अन्तर्गत दूसरे नाटक को प्रस्तुत किया है। भीतर के नाटक के द्वारा नाटककार ने दलितों पर होनेवाले शोषण का दर्दनाक चित्र पेश किया है। दूसरे अंक को आठ दृश्यों में विभाजित किया है। इस अंक में कथा एक अलग मोड लेती है। दलित मोर्चो के रामचन्दर अवसरवादी बन जाता है। वह नया गठ जोड़ करके विधायक बन जाता है। वह विधायक बन जाने के बाद दलितों पर अत्याचार करता है। उसके आदमियों की पिटाई के कारण कल्लूराम नामक मोची मर जाता है। इस पर उसकी बेटी मीना पिता की लाश का संस्कार न करके अनशन में बैठती है। उससे लाभ उठाने का प्रयास यादव करता है। वह दलितों के रक्षक का नया रूप धारण करता है और मगरमच्छ जैसा आँसू बहाता है। अंत में विवश होकर मीना को आंदोलन वापस लेना पड़ता है। यहाँ पर नाटक समाप्त हो जाता है। नाटककार ने

---

[67] दलितः नाग बोडस, पृ.144

कथावस्तु के स्थिति में निरंतरता रखने के लिए विभिन्न अंकों में विभिन्न दृश्यों का संयोजन सफलतापूर्ण रूप से किया है।

४.३.२.१४.४ उद्देश्य

इस नाटक में नाटककार का उद्देश्य दलितों पर हो रहे अत्याचार, शोषण, अमानवीय व्यवहार, बेगारी व बंधुआ मजदूरी, जाति पर केन्द्रित भारतीय राजनीति का चित्रण करके दलित चेतना जगाने व अन्याय या अत्याचार के विरुद्ध मिलकर आवाज उठाने का आह्वान है। साथ ही वोट बैंकवाले राजनीति से बचाने का भी आह्वान है। इस तरह सदियों से जारी शोषण के खिलाफ आवाज़ बुलन्द करने का सफल प्रयास इस नाटक के जरिए नाटककार ने किया है।

उपर्युक्त शिल्पपरक विश्लेषण में शिल्प तत्व का विशद रूप से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। शिल्प पक्ष में प्रमुख तत्व है अभिनेयता। अभिनेयता तत्व का विश्लेषण मोटे तौर पर चौदह नाटकों को लेकर प्रस्तुत करना उचित लगता है।

४.३.३ अभिनेयता

नाट्य या अभिनय नाटक और रंगमंच की आत्मा है। नाटक को अन्य साहित्यिक विधाओं से अलग रखनेवाला तत्व भी अभिनय है। अभिनय से तात्पर्य पात्रों की उन समस्त क्रियाओं एवं चेष्टाओं से है, जिनसे नाटक का अभिप्रेत अर्थ अत्यन्त प्रभावकारी ढंग से दर्शकों के समक्ष प्रकट किया जाता है। 'वाक्यार्थाभिनयम् नाट्यम्' का अर्थ विस्तृत है। आचार्य भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अभिनय के चार भेद बताये हैं- आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक, जिसे चतुर्विधाभिनय कहते हैं। किसी भी नाटक जब मंच पर प्रस्तुत करते हैं तो इन्हीं चार अभिनय तत्वों को

दृश्यत्व मिल जाता है। उल्लेखनीय बात यह है कि इन चार अभिनय प्रकारों का मूल रूप नाट्य पाठ में निहित रहता है।

अब हम दलित नाटकों के अभिनेयता पर विचार करेंगे।

४.३.३.१ आंगिकाभिनय

आंगिक अभिनय में हाथों उँगलियों, नेत्रों, पैरों और अन्य शरीरंगों की चेष्टाओं द्वारा शारीरिक अभिव्यक्ति करती है। अभिनेता शरीर के अंग प्रत्यंगों की भिन्न-भिन्न मुद्राओं में निपुण होता है। व्यक्ति और प्रकृति के सभी तत्वों और गतिविधियों को कलाकार अपने अंगों से इस तरह प्रस्तुत करता है कि अमुख्र पदार्थ दर्शकों के सामने जीवन्त हो जाता है। अभिनेता, पात्र के अन्तर्मुख्री भावों को आंगिकाभिनय के जरिए अभिव्यक्त करता है।

भरत मुनि ने अंगों तथा प्रत्यंगों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है- "तस्य शिरोहस्तोरः पार्श्वकटीपादतः षडंगानि।"[68] अर्थात् सिर, हस्त, उर, पार्श्व, कटि और पैर इन छह अंगों से अभिनय किया जाता है। इसी प्रकार- आँख, भौंह, नाक, अघर, कपोल और ठोढ़ी इन छह उपाअंगों से भी अभिनय होता है- "नत्रभ्र नासाघर कपोलचिबुकन्युपांगानि।"[69] अंगों और उपाअंगों के अतिरिक्त, आंगिक अभिनय में प्रत्यंगों का भी योग होता है। प्रत्यंग भी छह प्रकार के माने गये हैं- कंद्या, बाहु, पीठ, उदर, ऊरू एवं जंघा। आंगिकाभिनय के कुछ उदाहरण देखिएः-

---

68 नाट्यशास्त्र, अध्याय-८, श्लोक १४, भरतमुनि

69 वहीं

'नंगा सत्य' नाटक के पहले परिदृश्य में -(कृपाशंकर और कमल सरकते हुए, मंच पर पीछे, स्थिर हो जाते हैं। बुद्धिराम, सुखराम, सुनीत और शेखर तेजी से आते हैं) और (वे मंच पर और दर्शकों की ओर इधर-उधर देखते हैं।)[70] आदि प्रसंगों में पात्रों के आगिकाभिनय की अभिव्यक्ति हुई है। सुशील टाकभौरे जी अपने नाटक नंगा सत्य में जगह-जगह पर आंगिकाभिनय का संकेत दिया है। जैसे- (बुद्धिराम अपना सिर खुजाने लगता है)[71] (माफी मांगने की मुद्रा में हाथ जोड़ता है)।[72] (वह गर्दन ऊँची करके और आँखों पर हाथों की छज्जी बनाकर इधर-उधर देखता है। स्थिर कमल सामने आता है)।"[73] वास्तव में आंगिक अभिनय का महत्व अन्य अभिनय तत्वों के साथ जुडी हुई है। क्यों कि बुद्धिराम का सिर खुजाना केवल आंगिक ही नहीं है वह सात्विक का एक प्रकटीकृत रूप है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के नाटक 'दो चेहरे' में भी आंगिकाभिनय के संकेत देखने को मिलता है। जैसे-"शिवराज संतों पर झपटने की कोशिश करता है। संतों उसे धक्का देकर गिरा देती है। शिवराज जब तक उठने की कोशिश करता है, संतों बाहर की ओर भागती है। बजरंगी एक किनारे चुपचाप सिर झुकाये बैठा है। शिवराज गुस्से में उसकी ओर देखता है और उसकी पीठ पर जोर से एक लात मार कर उसे गिरा देता है।"[74] मोहनदास नैमिशराय के नाटक हेलो कामरेड में - (नेता जी ऊपर, नीचे, इधर-उधर देखते हैं। नेताजी परेशान हैं, बैठ जाते हैं। पलटू अखबार के कुछ पृष्ठों से उन्हें हवा करता है। कभी-कभी स्वयं अपने को ही करने

---

70 नंगा सत्य- सुशीला टाकभौरे, पृ.10

71 वहीं, पृ.11

72 वहीं, पृ.14

73 वहीं, पृ.12

74 दो चेहरे- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.29-30

लगता है। तभी नेताजी की क्रोध भरी नजर उस पर पड़ती है। वह तुरान्त उनकी तरफ अख़बार को हिलाता है)।[75] रूप नारायण सोनकर के नाटक एक दलित डिप्टी कलेक्टर के एक उदाहरण देखिएः- (रतनलाल जोर से धक्का मार कर अनुसूईया को ज़मीन पर गिर देता है, बेटी को भी धक्का देता है और तेजी से दरवाज़े के बाहर निकल जाता है)"[76] इस तरह दलित नाटककारों के नाटकों के नाट्य पाठ में आंगिकाभिनय का संकेत मिलता है।

४.३.३.२ वाचिकाभिनय

जब भाव के अनुसार वाणी का अनुकरण होता है, तब उसे वाचिक अभिनय कहते हैं- 'वाचिको अभिनयो वाचां यथाभावमनुक्रिया' (नाट्यशास्त्र)। वाचिका अभिनया में कथोपकथन, गीत, धुनों, स्वरों, शब्द-उच्चारण तथा ध्वनि के आरोह-अवरोह द्वारा भिन्न-भिन्न भावों का स्पष्टीकरण किया जाता है। संवाद या कथोपकथन नाटक के प्रमुख तत्व है लेकिन वाचिकाभिनय में वाचिक के साथ जुडी हुई अनेक तत्व है जो प्रस्तुतीकरण के आधार पर भिन्न हो सकते है। उदाहरण देखिएः-

मोहनदास नैमिशराय जी नाटक हेलो कामरेड के पहले दृश्य के एक संवाद-

> "हा-हा...नेता जी आएंगे और गरीबों के आँसू पोंछेंगे। सुनो भाइयों, तुम भी आना अपनी आँखों में आँसू लेकर।"[77]

---

75 हेलो कामरेड- मोहनदास नैमिशराय, पृ.21

76 एक दलित डिप्टी कलेक्टर- रूप नारायण सोनकर, पृ.18

77 हेलो कामरेड- मोहनदास नैमिशराय, पृ.15

इस संवाद से जो वाक्य अर्थ निकलता है, उसका ठीक विपरीत अर्थ ही रंगमंच पर वाचिकाभिनय द्वारा प्रस्तुत किये जाते है। इस तरह कथ्य के अनुसार नाट्य पाठ में दिये गये संवाद को वाचिकाभिनय द्वारा दर्शकों के सामने प्रस्तुत किये जाते है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के नाटक दो चेहरे के एक संवाद देखिएः-

"धर्मपाल : तुम्हे कैसे पता? वह भला ऐसा क्यूं करेगा? उसे तो इस हड़ताल से सहानुभूति होना चाहिए क्योंकि वह खूद मजदूरों के संगठन का नेता है।

किशन : (व्यंग्य से) हा...सहानुभू... क्या कहा तैन्ने...? ये पढ़े-लिखे लोगों में बस यही खराब्बी है, ऐसे, ऐसे सबद बोल्लों जो म्हारे जैसे अंगूठा छाप आदमी की तो समझ बी ना आवे। खोपड़ी घूम जा। वो सिवराज भी हमें सिखा रा था, मजदूर-हित, सरबहारा...."[78]

नाट्य पाठ में ऐसे भी संवाद देखने को मिलता है, जो अपने में बहुत सारे अर्थ चुपा रखता है। उदाहरणार्थ स्वदेश दीपक के नाटक कोर्ट मार्शल का एक संवाद देखिएः-

"बिकाश राय : सुबेदार साहब! सच केवल उतना ही नहीं होता जितना दिखाई दे। सच का केवल एक हिस्सा हम अपनी आँखों से देखते हैं और उसे पूरा का पूरा सच मानने की

[78] दो चेहरे - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.35

गलती कर बैठते हैं। और फिर यह कहाँ जरूरी हैं कि जो कुछ आप, हम देखें, वह सच ही हो।"[79]

इस तरह पात्र के अनुकूल वाचिकाभिनय द्वारा दलित नाटककारों ने अपने कथ्य को सरल तरीके से पेश किया है।

४.३.३.३ आहार्य अभिनय

अभिनेता की रूप सज्जा ही आहार्य है, जो पात्र के अनुकूल हो। आहार्य अभिनय से तात्पर्य विशेषकर वेश-भूषा से है। नाटक में वेश-भूषा और आभूषणों, अलंकारों का बहुत सूक्ष्मता से प्रयोग किया जाता है। नाटक की दुनिया कल्पनाजन्य विश्वसनीयता की दुनिया है, लेकिन दर्शकों की कल्पना को उत्प्रेरित करने केलिए एक दिशा या एक संकेत देना ही पड़ता है। "यदि अभिनेता चरित्र के अनुकूल अपना चेहरा नहीं बदलता तो डर है कि दर्शक सभी नाटकों में अलग-अलग परिधानों और पोशाकों में एक ही चरित्र को देखेंगे और उनसे जल्दी ही ऊब जायेंगे। इसे तोड़ने के लिए 'मेकप' जरूरी है।"[80] पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के अनुसार उनकी आकृति भी बनाने के लिए रूप सज्जा का विशेष महत्व है। रूप सज्जा के अंतर्गत वेश-भूषा, मुख-सज्जा, वस्त्र-परिधान आदि की भी चर्चा आता है जो प्राचीन परंपरा में आहार्याभिनय पद्धति का एक अभिन्न अंग है।

हिन्दी नाट्य जगत में सामान्यतः कुछ नाटककार नाटक के शुरू में ही पात्र परिचय देता है। कुछ नाटककार नाटक के अंतर पात्र परिचय देता है तो कुछ नाटककार पात्रों के संवादों के जरिए पात्रों का परिचय देता है। इस सब से हम

---

79 कोर्ट मार्शल- स्वदेश दीपक, पृ.32

80 नाट्य प्रस्तुति : एक परिचय- डॉ. रमेश राजहँस, पृ.113

पात्रों के वेश-भूषा, मुख-सज्जा तथा वस्त्र-परिधान आदि को पहचान लेते है। कुछ नाटकों में नाटककार पात्रों के आहार्य का परिचय नहीं देता है। अतः दलित नाटककारों ने भी इन नीतिओं को अपनाया है। जैसे- माताप्रसाद ने अपने नाटक धर्मपरिवर्तन में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर और महात्मा गांधी का उल्लेख ही किया है।

"डॉ.बी. आर. अम्बेडकर : दलितों के मसीहा, संविधान निर्माता, दलित जाति में पैदा हुए महान् विद्वान्।

महात्मा गांधी : भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के नेता।"[81]

नाटककार इनके आहार्य का विवरण नहीं दिया है क्योंकि इन का विवरण हम इतिहास से प्राप्त कर सकते है। इन के वेश-भूषा, वस्त्र-परिधान, मुख सज्जा आदि की ज्ञान इतिहास से प्राप्त कर सकते है।

मोहनदास नैमिशराय और ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने आहार्य संबंधी विवरण नाटक के अंतर दिया है। देखिएः-

मोहनदास नैमिशराय जी नाटक 'हेलो कामरेड' में-

"कुछ दर बाद उसके साथ में पचीस वर्षीय एक युवक, जिसकी दाढ़ी बढ़ी हुई है। शरीर पर कुर्ता पायजामा पहने तथा कन्धे पर कपड़े का थेला लटकाये हुए आता है।"[82]

'दो चेहरे' नामक ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के नाटक में देखिएः-

---

81 धर्मपरिवर्तन- माताप्रसाद, पृ.7

82 हेलो कामरेड- मोहनदास नैमिशराय, पृ.22

"(शिवराज का प्रवेश। सफेद लकदक कुर्ता-पाजाम और काले रंग की जवाहर कट जैकेट।)"[83]

सुशीला टाकभौरे जी अपने नाटक 'नंगा सत्य' और 'रंग और व्यंग्य' में नाट्य पाठ के शुरू में ही आहार्य का विशद विवरण दिया है। देखिए:-

'नंगा सत्य' में –

"कृपाशंकर : नाटक का लेखक। आयु-लगभग ३० वर्ष। पोशाक-कृर्ता- पायजामा। पैरों में चप्पल। बड़ी हुई दाड़ी। चश्मा। कंधे पर झोला।

कमल : नाटक का सूत्रधार। आयु २५ वर्ष। पोशाक-फुलपेन्ट शर्ट।

बुद्धिराम : आदिवासी गोंड। खेत मजदूर। घुटने तक धोती, कुरता। आयु ३० वर्ष।"[84]

'रंग और व्यंग्य' में-

"छब्बो : तेज तर्रार स्वाभिमानी अछूत महिला। पोशाक-साड़ी और ब्लाउज। उम्र-४० वर्ष।

पटेल : गाँव का पटेल। सम्पन्न सामन्ती वेश-भूषा। उम्र ५० वर्ष।

---

83 दो चेहरे - ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.12

84 नंगा सत्य- सुशीला टाकभौरे (पात्र-परिचय), पृ.7

लंगड़ा : लंगडा लटैत। घुटने तक धोती- बंडी। उम्र-३० वर्ष।"[85]

इस तरह लेखिका ने नाटक के हर एक पात्र के आहार्य का परिचय दिया है।

इस तरह दलित नाटककारों ने देश-काल और वातावरण के अनुसार आहार्य की परिकल्पना की है। दलित नाटकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नाटककारों पात्रोचित आहार्य प्रदान करके नाटकीय वस्तु के साथ न्याय किया है।

४.३.३.४ सात्विकाभिनय

नाटक में सात्विक अभिनय को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। स्वतः प्रकट होने वाला शारीरिक अंग-विकार सात्विक भाव है और जब अभिनेता इसी भाव का अनुकरण करता है तब उस अभिनय को सात्विक अभिनय कहते हैं, जो मानसिक तत्व पर निर्भर रहता है। सात्विक में अभिनेता की समस्त मानसिक और आत्मिक शक्तियों को प्रयोग में लाया जाता है। आचार्यों के अनुसार सात्विकाभिनय आठ प्रकार के हैं- स्तम्भ, ,स्वेद, रोमांच, स्वरभेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलय। इसके बिना अभिनेता 'रस उत्पन्न' नहीं कर सकता। रंग मंच पर अभिनेता अपने मन के अंदर एक दूसरे पात्र का सृजन करता है, उसके बाद उस पात्र की चरित्रगत् विशेषताओं को समाहित कर सात्विक अभिनय प्रस्तुत करता है।

दलित नाटककारों ने अपने नाटकों के नाट्य-पाठ में सात्विकाभिनय का संकेत दिया है। जैसे-

---

[85] रंग और व्यंग्य- सुशीला टाकभौरे (पात्र-परिचय), पृ.10

माताप्रसाद के नाटक 'धर्मपरिवर्तन' में-

(कई लोग रोते हुए आते हैं।)[86]

(बॉ की आँखों से आँसू निकल रहे हैं।)[87]

मोहनदास नैमिशराय के नाटक 'हेलो कामरेड' में-

शंकर शर्मा : (खुश होते हुए) .....[88]

पलटू : (चौंककर देखता है।)[89]

फूलवती : (नाराजगी में) .....[90]

ओमप्रकाश वाल्मीकि के नाटक 'दो चेहरे' में-

शिवराज सिंह : (मुस्कुराते हुए) .....[91]

धर्मपाल : (उत्सुकता से) .....[92]

डॉ एन. सिंह के नाटक 'कठौती में गंगा' में-

(पंडित जी का विस्मित होना प्रफुल्ल होना)[93]

(छू कर देखना, तसल्ली करना)[94]

नीमा : ..... (दोनों खिल-खिला कर हंसती हैं)[95]

---

86 धर्मपरिवर्तन- माताप्रसाद, पृ.30

87 वहीं, पृ.40

88 हेलो कामरेड- मोहनदास नैमिशराय, पृ.22

89 वहीं, पृ.23

90 वहीं, पृ.44

91 दो चेहरे- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.15

92 वहीं, पृ.35

93 कठौती में गंगा- डॉ. पन. सिंह, पृ.17

94 वहीं, पृ.18

विप्र : ..... (भयभीत होना)[96]

सुशीला टाकभौरे के नाटक 'रंग और व्यंग्य' में-

छब्बो : (सहज भाव से).....[97]

पटेल : (गुस्से से).....[98]

रामसनेही : (आश्चर्य से) .....[99]

दत्त भगत के नाटक 'रास्ते चोर रास्ते' में –

हेमा : ..... (काका परेशान)[100]

(सतीश हँसता है, गुरुजी गंभीर मुद्र में)"[101]

सतीश : .....(शांत)"[102]

स्वदेश दीपक के नाटक 'कोर्ट मार्शल' में-

बलवान सिंह : (हैरान होकर) ....."[103]

कैप्टन कपूर : (क्रोध से) ....."[104]

रामचंदर : (गद्‌गद भाव से) ....."[105]

---

95 कठौती में गंगा- डॉ. पन. सिंह, पृ.23

96 वहीं, पृ.50

97 रंग और व्यंग्य- सुशील टाकभौरे, पृ.13

98 वहीं, पृ.14

99 वहीं, पृ.17

100 रास्ते चोर रास्ते- दत्ता भगत, पृ.523 वसुधा, जुलाई-सितम्बर (२००३) से उद्धृत।

101 वहीं, पृ.531

102 वहीं, पृ.567

103 कोर्ट मार्शल- स्वदेश दीपक, पृ.34

104 कोर्ट मार्शल- स्वदेश दीपक, पृ.82

105 वहीं, पृ.96

इस तरह नाट्य-पाठ में दिए गये संकेत अभिनेता के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा अभिनय का आधार बनता है।

दलित नाटककारों ने अपने नाटकों में चतुर्विधाभिनय का भरपूर उपयोग करके नाट्य-पाठ को अभिनेयता प्रदान किया है। नाटकाभिनय में आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक आदि तत्वों का अलग विश्लेषण अध्ययन की दृष्टि से ठीक है। लेकिन अभिनय में आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक अभिनय को समग्रता की दृष्टि से ही देखना चाहिए तभी अभिनय सार्थक एवं सृजनात्मक बन जाता है। क्योंकि इस में शरीर और मन का ताल-लयात्मक संबंध मिलता है।

४.४ निष्कर्ष

नाटक हमेशा जनता के संपर्क में रहता है। अतः समाज में जो घटित होता है उसी का चित्र नाटक और रंगमंच पर होता है। पहले भी नाटकों में दलित समस्या को उजागर करने की कोशिश तो किया गया लेकिन दलितों की समस्या को ठीक तरह से प्रस्तुत करने में असफल रहे। जिस तरह दलित साहित्य का उद्‌भव हुआ, उसी तरह ही दलित नाटक का उद्‌भव और विकास हो रहा है। दलित नाटक की प्रमुख उद्देश्य अपने समाज को पराधीनता की उन परंपराओं से मुक्ति दिलाने की है जिसने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्यधारा से अस्पृश्य और कमज़ोर बनाया रखा है।

अध्ययन में आये ज़्यादात्तर दलित नाटक कथ्यप्रधान है। देश की सामाजिक स्थितियों कुछ ऐसी हुई उनके प्रति असंतोष-आक्रोश को मुखरित करना रचनाकार का मुख्य उद्देश्य हो गया। दलित नाटक में जहाँ एक और दलित समाज पर गंभीर

चिंतन है तो दूसरी और सवर्ण व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है। कहीं कहीं सामाजिक विषमता के साथ शोषण का भी चित्र उभरते है जो हिंदू समाज में फैली अमानवीयता को दर्शाते हैं। दलित नाटकों के ज़रिए नाटककारों ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि देश को आजादी मिले इतने साल बीत गए लेकिन भारत में आज भी दलितों को उन अत्याचारों को सहना पड़ रहा है जो पहले थी। आज भी उनके साथ जानवरों जैसी बरताव किया जाता है, ज़िंदा जलाया जाता है, दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है। दलित नाटककारों ने ऐसे दर्दनाक चित्रों को अपने नाटकों जरिए दिखाया है।

शिल्पपरक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ज़्यादात्तर दलित नाटक कथ्यप्रधान होने के कारण चरित्र गैण रह जाता है। फिर भी कुछ नाटक चरित्र प्रधान है- जैसे- 'धर्मपरिवर्तन' एवं 'कठौती में गंगा'। कथ्य प्रधान नाटकों में चरित्र गैण रहते हुए भी कथ्य को आगे बढ़ाने गऐ पात्रों का स्थान रहा है। दलित नाटकों की भाषा सरल है और नाटककारों ने गद्य और पद्य दोनों शैलियों को अपनाया है जो आम आदमी और ग्रामीण जनता, खासकर दलित वर्ग के अनुकूल हैं। नाटककारों ने सीधी और सरल भाषा के ज़रिए दलितों के भीतर की कसक को बाहर लाने का प्रयास किया है। साथ ही अपने संवादों के द्वारा ब्राह्मण मानसिकता पर चोट किया है। दलित नाटकों की भाषा ग्रामीण गलियों और मोहल्लों से बटोरी गई है, इसलिए उसमें सहजता एवं संप्रेषणीयता है। दलित नाटककारों ने अपने कथ्य को सफलतापूर्ण प्रस्तुत करने के लिए कहीं अंकों का सहारा लिया है तो कहीं दृश्यों का।

अभिनय नाट्य विश्लेषण का प्रमुख तत्व है। नाटक में प्रमुख तत्व नाट्यम ही है। आचार्यों ने अभिनय के चार प्रकार बताये गये हैं- जैसे- आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक। नाट्य पाठ में आंगिक के सूचना मिलते है तो वही पाठ मंच पर आंगिकाभिनय हो जाता है। नाट्य पाठ में जो संवाद है वही मंच पर वाचिकाभिनय बन जाता है। नाट्य पाठ में जो पात्र परिचय दिया है, उसी के आधार पर पात्रों का चरित्र संबन्धि आहार्य प्रस्तुत करते हैं। अभिनय में सबसे प्रमुख चीज़ सात्विक है, जो पात्रों के कार्य-व्यापार के साथ-साथ मानसिक व्यवहार से जुड़ी हुई है। इन्हीं तत्वों का विश्लेषण यथा संभव उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है।

दलित नाटक या रंगमंच सामाजिक प्रतिबद्धता को स्वीकार करके चलता है। दलित, शोषित, आदिवासी समाज को नयी दृष्टि देना उसके उद्देश्य में से प्रमुख उद्देश्य है। मनुष्य पर मनुष्य द्वारा किये गये अत्याचारों का कलात्मक चित्रण कर सवर्णों के हृदय परिवर्तन की उसकी इच्छा है। विशुद्ध मानव मूल्यों की स्थापना उसका अंतिम लक्ष्य है। सवर्ण तथा दलित के बीच रूढ़ि तथा वर्ण-व्यवस्था द्वारा निर्मित दूरियों को मिटाने की उसकी महत्वाकांक्षा है। अर्थ, वर्ण, जाति-बिरादरी से उत्पन्न विषमता को दूर कर समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना उसका स्वप्न है।

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

उपसंहार

उपसंहार

व्यक्ति समाज की आधार भूत इकाई है जो परस्पर सामाजिक संबन्धों में बँधे रहते हैं। मनुष्य संगठित समाज में जन्म लेता है और अपना जीवन-यापन करता है। जिस सांस्कृतिक, भौगोलिक, धार्मिक परिवेश में वह रहता है, वही उसके अनुभवों को, जिनसे उसकी ज़िन्दगी बनती है, गति और दिशा प्रदान करता है। मनुष्य अपनी रुचि और क्षमता के अनुसार समाज में अपना जीवन-यापन करना चाहता है लेकिन उसके चुनाव की यह इच्छा भी सांस्कृतिक परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं से संचालित होती है। ये धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ अलग-अलग समुदायों अथवा समूहों की अलग-अलग होती हैं। प्रत्येक समाज विभिन्न समुदायों, वर्गों और समूहों में विभक्त रहता है। भारतीय सामाजिक संरचना बहुत प्राचीन है। समाज के कार्य सुचारू रूप से चलने के लिए प्राचीन काल में ही आर्यों ने कुछ निश्चित नियम और कानून निर्धारित कर रखे थे। कहा जाता है समाज में उचित व्यवस्था बनी रहने के लिए आर्यों ने चतुर्वर्ण व्यवस्था का सूत्रपात किया था जिसके अनुसार भारतीय समाज को चार वर्णों में बाँट दिया गया था। लेकिन तमिल संघकालीन कृतियों में भौगोलिक परिवेश के आधार पर वर्ण या जाति का नाम देने की प्रथा का भी प्रमाण मिलता है।

प्रत्येक वर्ण का निश्चित व्यवसाय था। तत्काल यह व्यवस्था कर्म पर आधारित थी परंतु कालांतर में मनुष्य की स्वार्थ-लोलुपता के कारण उसमें विकृति आकर यह जन्म पर आधारित होकर जाति-व्यवस्था में परिणत हो गई जो बाद में शोषण का माध्यम बनी। वर्ण-व्यवस्था में अभिजात कुलीन ब्राह्मण और क्षत्रिय

विशिष्ट माने जाते थे और उन्होंने समाज की समस्त सुविधाएँ स्वायत्त कर ली थीं। इनके बाद व्यावसायिक वाणिज्य में संलग्न वैश्यों का स्थान था। इस व्यवस्था में सबसे निम्न स्तर शूद्रों का था। मध्य युग के कुछ पूर्व ही ब्राह्मण वर्ग की स्वार्थ-लोलुपता से, वर्गों का विभाजन जन्म के आधार पर होने से जाति-प्रथा के बंधन और नियम अत्यंत कठोर हो गए थे। मध्यकाल में आकर शूद्र या दलितों का कठोर शोषण हुआ था। उन्हें सभी मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया जिससे शूद्र या दलित वर्ग नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य हो गये। उल्लेखनीय है कि वर्ण व्यवस्था के बाहर भी लोग रहते थे जिन्हें चण्डाल, अंत्यज, आदि नामों से पुकारे जाते थे। गांधीजी उनको हरिजन कहकर उनका सामाजिक सुधार चाहते थे।

आधुनिक काल में अनेक सुधारवादी संगठनों और समाज सुधारकों के अथक प्रयत्न से दलित वर्ग की स्थिति में परिवर्तन आया है। इस प्रक्रिया में अन्य विभूतियों के साथ विशेष रूप से डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर और गाँधीजी आदि का योगदान है। आज भारतीय समाज में दलित वर्ग की स्थिति को सुधारने केलिए राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक अधिकार प्रदान किए गए हैं लेकिन व्यावहारिक स्तर पर अभी भी दलित वर्ग की शोषण-प्रक्रिया ज़ारी है। अतः यह हर बुद्धि जीवी और हर मनुष्य के लिए विचारणीय विषय है।

सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप साहित्य जगत में नई धाराओं, प्रवृत्तियों, आंदोलनों का उदय होता रहा है। दलित साहित्य उस समाज-संरचना की देन है जिसमें जाति और वर्ण के आधार पर मनुष्य मात्र में अंतर किया जाता है। वर्तमान समाज में दलित साहित्य को लेकर कई वाद-विवाद चल रहा है। पर यह निश्चित है कि साहित्य और विचार की परंपरा में दलित साहित्य का वजूद

अब स्थायी रूप ले चुका है। दलित साहित्य समाज और संस्कृति के सभी पहलुओं को स्पर्श करते हैं। अपितु वह सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्गठन का समग्र विचार प्रस्तुत करता है। दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता और बंधुत्वता स्थापित करना चाहते हैं। अब दलित साहित्यकारों के सामने अपना लक्ष्य स्पष्ट है और वे साहित्य को हथियार बनाकर भारतीय सामाजिक व्यवस्था से लडने और उसमें परिवर्तन लाने की कोशिश में हैं।

वर्तमान साहित्य जगत में दलित साहित्य के वैचारिक आधार को लेकर अब अधिक तर्क वितर्क की संभावनायें नहीं हैं। क्योंकि अब दलित साहित्य नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। दलित साहित्य आज जिस मुकाम पर है, वहाँ तक पहुँचने में विभिन्न वैचारिक धाराओं का योगदान रहा है। दलित साहित्य का मूल वैचारिक आधार या प्रेरणास्रोत देश के दीन दलितों के मसीहा डॉ. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर हैं। इनके पहले भारत में अनेक दार्शनिक, संत, महात्मा हुए जैसे- बुद्ध, कबीर, रैदास, ज्योतिबा फुले, अछूतानंद आदि। इनके विचारों ने भी दलित साहित्य को वैचारिक आधार प्रदान किया। अर्थात् इस तथ्य निर्विवाद रूप से स्थापित हो गया है कि आज के दलित साहित्य का प्रतिनिधित्व वे वैचारिक धाराएँ ही कर रही हैं, जिनका नेतृत्व बुद्ध, ज्योतिबा फुले, अछूतानंद और डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने किया था।

साहित्य की सभी विधाओं में दलित जीवन चित्रण अब अभिव्यक्ति का केन्द्रीय विषय बन गया है। हिन्दी नाटक भी इसका अपवाद नहीं है। दलित साहित्य की तरह दलित नाटक भी दलित आंदोलन का ही उपज है। दलित साहित्य प्रेरणा और शक्ति का साहित्य है, यह प्रेरणा और शक्ति विभिन्न दलित आंदोलनों द्वारा मिली है।

इन्हीं आंदोलनों की वजह से दलित साहित्य बहुसंख्या में लिखे गए। इस प्रकार दलित साहित्य में भारत के विभिन्न प्रदेशों के दलित आंदोलनों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। दलित आंदोलन ही दलित साहित्य की ऊर्जा है। इसलिए दलित नाटक की वास्तविक चिंता अपने समाज को पराधीनता से मुक्ति दिलाने की है, जिसने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्यधारा से अस्पृश्य और कमज़ोर बनाये रखा है। भारतीय सामाजिक संरचना को बदलकर समता दर्शन की पुनः प्रतिष्ठा करना इसका लक्ष्य है। दलित नाटक का आधार वेदना, विद्रोह और नकार है, यह विद्रोह और नकार उस सामाजिक संरचना से है, जो अस्पृश्यता को जन्म दिया है। दलित नाटकों की परंपरा बहुत प्राचीन है, प्रदेश विशेष के मौखिक गीत साहित्य में तथा लोकनाट्य रूपों में इसका स्वरूप मिलता है। भरत मुनी के नाट्यशास्त्र में ब्रह्मा के विरोध में विरूपाक्ष की प्रतिक्रिया में भी दलित चेतना का स्वर ढूँढा जा सकता है। दलित नाटक की आधार भूमि संवादात्मक नैसर्गिक व्यवहार है। गीत, नृत्त, नृत्य इसका मूल स्वरूप है।

नाटक सशक्त माध्यम है। भारतीय और पाश्चात्य नाट्य अवधारणा में काफी अंतर है। भारतीय अवधारणा में भरत ने अनुकरण, धनंजय ने अनुकृति और विश्वनाथ ने आरोप शब्द का प्रयोग समान तथ्य के प्रतिपादन में किया है। हिन्दी के विद्वानों ने भी 'नट' लोगों की क्रिया को 'नाटक' कहा है। इस प्रकार रंगमंच के बारे में भी देश-विदेश के विद्वानों ने अपना-अपना मत प्रकट किया है। रंगमंच अपने सीमित अर्थ में वह स्थल समझा जाता है, जहाँ नाट्याभिनय होता है (स्टेज) और व्यापक अर्थ में नाट्य-पाठ, प्रस्तुति, अभिनय, पात्र, ध्वनि-संकेत, रंगदीपन, रंग

भवन, प्रेक्षक, नाट्यालोचन और इसका शास्त्र भी समाहित हो जाते हैं, जो 'थियेटर' कहलाता है।

दलित नाटक के साथ एक सशक्त सामाजिक एवं दार्शनिक संदर्भ जुड़ा हुआ है। यह संदर्भ दोनों मौखिक और लिखित परंपराओं में देख सकते हैं। आधुनिक काल में दलित आंदोलन के साथ-साथ दलित नाटक और रंगमंच भी सक्रिय रहा है। विशेषकर महाराष्ट्र में जलसे के साथ जो प्रयोग किया वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। महात्मा ज्योतिबा फुले और डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारधारा से प्रेरित होकर बहुत से दलित नाटककार और रंगकर्मी सामने आये हैं। इसके फलस्वरूप हिन्दी दलित नाटक एवं रंगमंच पर मराठी दलित रंगमंच का प्रभाव पड़ा है। दलित नाटक अपने आप में एक प्रयोग है, समता लाने का प्रयोग। अतः मुख्यधारा नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में भी दलित नाटकों की जोरदार चर्चा जारी है।

नाटक हमेशा जनता के संपर्क में रहता है। अतः समाज में जो घटित होता है उसी का चित्र नाटक और रंगमंच पर होता है। पहले भी नाटकों में दलित समस्या को उजागर करने की कोशिश तो की गयी लेकिन दलितों की समस्या को ठीक तरह से प्रस्तुत करने में असफल रहे। लेकिन आज दलित समाज से उपजे कलाकार, नाटककार अपना तीखा अनुभव मंच पर प्रस्तुत कर रहे हैं। जिस तरह दलित साहित्य का उद्‌भव हुआ, उसी तरह ही दलित नाटक का उद्‌भव और विकास हो रहा है।

अध्ययन में आये ज़्यादात्तर दलित नाटक कथ्य प्रधान है। क्योंकि देश की सामाजिक स्थितियाँ कुछ ऐसी हुई उनके प्रति असंतोष-आक्रोश को मुखरित करना रचनाकार का मुख्य उद्देश्य बन गया। दलित नाटक में जहाँ एक ओर दलित समाज

पर गंभीर चिंतन है तो दूसरी ओर सवर्ण व्यवस्था पर करारा व्यंग्य है। कहीं कहीं सामाजिक विषमता के साथ शोषण का भी चित्र उभरते हैं जो हिंदू समाज में फैली अमानवीयता को दर्शाते हैं। दलित नाटकों के ज़रिए नाटककारों ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि देश को आज़ादी मिले इतने साल बीत गए लेकिन भारत में आज भी दलितों को उन अत्याचारों को सहना पड़ रहा है जो पहले थी। आज भी उनके साथ जानवरों जैसी व्यवहार किया जाता है, जिंदा जलाया जाता है, दलित स्त्रियों के साथ बलात्कार किया जाता है। दलित नाटककारों ने ऐसे दर्दनाक चित्रों को अपने नाटकों के ज़रिए दिखाया है। अतः कथ्यपरक अध्ययन और विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि दलित नाटकों की कथ्य-चेतना में दलित जीवन यथार्थ एवं दलित जीवन संघर्ष व संवेदना को बेहद सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है। साथ ही जीवन से निरन्तर संघर्ष करता हुआ आज का बेचारा दलित आदमी नाट्य-रचना का विषय बना है।

शिल्प के विभिन्न तत्वों के आधार पर विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ज़्यादात्तर दलित नाटक कथ्यप्रधान होने के कारण चरित्र गैण रह जाता है। फिर भी कुछ नाटक चरित्र प्रधान है- जैसे- 'धर्मपरिवर्तन' एवं 'कठौती में गंगा'। कथ्यप्रधान नाटकों में चरित्र गैण रहते हुए भी कथ्य को आगे बढ़ाने में पात्रों का स्थान रहा है। दलित नाटकों की भाषा सरल है और नाटककारों ने गद्य और पद्य दोनों शैलियों को अपनाया है जो आम आदमी और ग्रामीण जनता, ख़ासकर दलित वर्ग के अनुकूल हैं। नाटककारों ने सीधी और सरल भाषा के ज़रिए दलितों के भीतर की कसक को बाहर लाने का प्रयास किया है। साथ ही अपने संवादों के द्वारा ब्राह्मण मानसिकता पर चोट किया है। दलित नाटकों की भाषा ग्रामीण गलियों और मोहल्लों से बटोरी गई है। साहित्यकार जिस वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है, उसकी भाषा, संस्कार आदि वैसा ही होता है। इसके फलस्वरूप जब दलित वर्ग

के लोगों ने साहित्य में कदम रखा तो ग्रामीण परिवेश और बोल-चाल की भाषा भी उनके साथ आई। इसलिए उनकी भाषा में सहजता एवं संप्रेषणीयता है। दलित नाटककारों ने अपने कथ्य को सफलतापूर्ण प्रस्तुत करने के लिए कहीं अंकों की सहायता ली है तो कहीं दृश्यों का।

अभिनय नाट्य विश्लेषण का प्रमुख तत्व है। नाटक में प्रमुख तत्व नाट्यम ही है। आचार्यों ने अभिनय के चार प्रकार बताये गये हैं- जैसे- आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक। नाट्य पाठ में आंगिक के सूचना मिलते है तो वही पाठ मंच पर आंगिकाभिनय हो जाता है। नाट्य पाठ में जो संवाद है वही मंच पर वाचिकाभिनय बन जाता है। नाट्य पाठ में जो पात्र परिचय दिया है, उसी के आधार पर पात्रों का चरित्र संबन्धि आहार्य प्रस्तुत करते हैं। अभिनय में सबसे प्रमुख चीज़ सात्विक है, जो पात्रों के कार्य-व्यापार के साथ-साथ मानसिक व्यवहार से जुड़ी हुई है। इन्हीं तत्वों का विश्लेषण यथा संभव उदाहरण सहित प्रस्तुत किया है।

दलित नाटक या रंगमंच सामाजिक प्रतिबद्धता को स्वीकार करके चलता है। दलित, शोषित, आदिवासी समाज को नयी दृष्टि देना उसका एक प्रमुख उद्देश्य है। मनुष्य पर मनुष्य के द्वारा किये गये अत्याचारों का कलात्मक चित्रण कर सवर्णों के हृदय परिवर्तन की उसकी इच्छा है। विशुद्ध मानव मूल्यों की स्थापना उसका अंतिम लक्ष्य है। सवर्ण तथा दलित के बीच रूढ़ि तथा वर्ण-व्यवस्था द्वारा निर्मित दूरियों को मिटाने की उसकी महत्वाकांक्षा है। अर्थ, वर्ण, जाति-बिरादरी से उत्पन्न विषमता को दूर कर समता, बंधुता तथा मैत्री की स्थापना उसका स्वप्न है। प्रस्तुत इच्छा से, लक्ष्य से, महत्वाकांक्षा से ओर स्वप्नों की सफलता से ही भारतीय समाज सही अर्थों में समता संपन्न हो जाएगा, सामाजिक संरचना में संतुलन की स्थिति उपस्थित हो जाएगी।

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

संदर्भ ग्रन्द सूची

संदर्भ ग्रन्द सूची

आधार ग्रन्थ

1. धर्म परिवर्तन : माताप्रसाद
   आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
   गाजियाबाद, २००१
2. तड़प मुक्ति की : माताप्रसाद
   सागर प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, २००८
3. दो चेहरे : ओमप्रकाश वाल्मीकि
   गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, २०१२
4. हेलो कामरेड : मोहनदास नैमिशराय
   सबस्व फाउंडेशन, नई दिल्ली, २००१
5. राम राज्य न्याय : स्वामी अछूतानन्द हरिहार
   राजलक्ष्मी प्रकाशन, दिल्ली
6. कठौती में गंगा : डॉ. एन. सिंह
   लोकवाणी संस्थान, अशोक नगर
   दिल्ली, १९९८
7. नंगा सत्य : डॉ. सुशीला टाकभौरे
   शरद प्रकाशन, नागपुर, २००७
8. रंग और व्यंग्य : डॉ. सुशीला टाकभौरे
   शरद प्रकाशन, नागपुर, २००६
9. एक बार फिर : सुनील कुमार सुमन
   वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, २००२
10. दलित : नाग बोडस
    विद्या विहार,
    नई दिल्ली, २००२

11 एक दलित डिप्टी कलेक्टर : रूप नारायण सोनकर
भारतीय दलित साहित्य अकादमी
नई दिल्ली, २००२

12. खल-छल-नीति : रूप नारायण सोनकर
दलित साहित्य एवं सांस्कृतिक अकादमी
उत्तराखण्ड, २००७

13. कोर्ट मार्शल : स्वदेश दीपक
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००८

14. रास्ते चोर रास्ते : दत्त भगत
वसुधा-५८
जुलाई-सितम्बर, २००३

सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

1. अछूत कौन और कैसे? : डॉ. भीमराव अम्बेडकर
आनन्द साहित्य सदन, छावनी, अलीगढ़,
सं. २००८

2. अन्तिम दो दशकों की हिन्दी साहित्य : सं. मीरा गौतम, वाणी प्रकाशन
दरियागंज, नई दिल्ली, सं.२००८

3. अंधेरे में रोशनी : के. एस. तूफान,
लता साहित्य सदन, गाजियाबाद, सं.२००९

4. आज का दलित साहित्य : डॉ. तेज सिंह
अतिरा प्रकाशन, हरिनगर, दिल्ली, सं.२०००

5. आधुनिक भारत का दलित आंदोलन : आर. चन्द्र, कन्हैया लाला चंचरीक
युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, दरियागंज
नई दिल्ली, स.२००३

6. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श : देवेंद्र चौबे
ओरियंट पब्लिकेशन, हिमायत नगर

हैदराबाद, सं. २००९

7. आधुनिक हिन्दी नाटक : डॉ. नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,
सं.१९९८

8. आलोचना का समाजशास्त्र : मुद्राराक्षस
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
सं.२००४

9. चिन्तन की परंपरा और दलित साहित्य : डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ.देवेन्द्र चौबे
नव लेखन प्रकाश, हज़ारीबाग
दिल्ली, सं.२०००

10. डॉ.भीमाराव अम्बेडकर: व्यक्तित्व के कुछ पहलू : मोहन सिंह
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद, सं. २००१

11. डॉ. अम्बेडकर : समाज व्यवस्था और दलित साहित्य : कृष्णदत्त पालीवाल
किताब घर, दरियागंज,
नई दिल्ली, सं.२००५

12 डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर लेख्र एवं भाषण : भगवान दास
गौतम बुक सेन्दर, शाहदरा,
दिल्ली, सं.२००७

13. डॉ. अम्बेडकर का विचार दर्शन : राम गोपाल सिंह
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल (म.प्र), सं.२००२

14. तीन नाटक : नाग बोडस
विद्या विहार, दरियागंज, नई दिल्ली,
सं.१९९७

15. दलितों के रूपान्तरण की प्रक्रिया : नरेन्द्र सिंह
राधाकृष्ण प्रकाशन

दरियागंज, नई दिल्ली, सं.१९९३

16. दलित चेतना- साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकर : रमणिका गुप्ता
समीक्षा पब्लिकेशन्स
गांधीनगर, दिल्ली, सं.२००४

17. दलित आंदोलन के विविध पक्ष : डॉ. शत्रुघ्न कुमार
आकाश पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
गाजियाबाद, सं.२००४

18. दलित लेखन का अन्तर्विरोध : सं. डॉ. रामकली सर्राफ
शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली, सं.२००९

19. दलित चेतना की पहचान : सं सूर्यनारायण रणसुभे
वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, सं.२०१२

20. दलित साहित्य की अवधारणा : कंवल भारती
बोधिसत्व प्रकाशन
रामपुर (उ.प्र), सं.२००६

21. दलित साहित्य: प्रकृति और संदर्भ : डॉ. संजय नवले, डॉ. गिरिश काशिद
अमन प्रकाशन, कानपुर (उ.प्र), सं.२०१०

22. दलित साहित्य सृजन के संदर्भ : डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
कामना प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९९९

23. दलित साहित्य का समाजशास्त्र : डॉ. हरिनारायण ठाकुर
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सं.२००९

24. दलित साहित्य के प्रतिमान : डॉ. एन. सिंह
वाणी प्रकाशन
दरियागंज, नई दिल्ली, सं.२०१२

25. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : ओमप्रकाश वाल्मीकि
राधाकृष्ण प्रकाशन,

दरियागंज, नई दिल्ली, सं.२००९

26. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : डॉ. शरणकुमार लिंबाले
वाणी प्रकाशन
दरियागंज, नई दिल्ली, सं.२०००

27. दलित साहित्य की भूमिका : हरपाल सिंह अरूष
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, सं.२००५

28. दलित विमर्श की भूमिका : कंवल भारती
इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद
सं.२००७

29. दलित हस्तक्षेप : सं.रमणिका गुप्ता
शिल्पायन, शाहदरा, नई दिल्ली, सं.२००४

30. नाटकालोचन के सिद्धांत : सं. सिद्धनाथ कुमार
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००४

31. नाटक और रंगमंच : सं. डॉ. सीताराम झा 'श्याम',
बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्ध, पटना, २०००

32. नाट्यानुवाद एवं भारतीय रंगमंच : सं. प्रो. ए. अच्युतन
शब्द सेतु, दिल्ली, २००६

33. नाट्यशास्त्र की भारतीय परंपरा और दशरूपक (धनिक की वृत्ति सहित) : सं. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृथ्वीनाथ द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं.१९८१

34. नाट्य-समीक्षा : डॉ. दशरथ ओझा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, सं.१९५९

35. बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर-संपूर्ण वाङ्मय : कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार

36. भारतीय साहित्य एंव दलित चेतना : सं.धनंजय चौहाण, डॉ. धीरज भाई वणकर
ज्ञान प्रकाशन, कानपूर, सं.२०१०

37. भरतमुनि- नाट्यशास्त्र : मधुसूदन शास्त्री
बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय,सं.१९७१

38. भारतीय दलित साहित्य: परिप्रेक्ष्य : सं. पुन्नीसिंह, कमला प्रसाद, राजेंद्र शर्मा
वाणी प्रकाशन, दरियागंज
नई दिल्ली, सं.२००३

39. भारतीय सामाजिक व्यवस्था : एस.एस. दोषी, पी. सी. जैन
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
जयपुर, सं.२००७

40. भारत का इतिहास : रोमिल थापर
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००८

41. मलयालम में दलित साहित्य: दृष्टि और सृष्टि : सं. प्रो. ए. अच्युतन
प्रकाशन विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय
सं.२००७

42. रंग और नाटक की भूमिका : डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, १९६५

43. लोकनाट्य एवं संस्कृति : प्रो. ए. अच्युतन
शब्द संसार प्रकाशन, दिल्ली, सं.२००४

44. विकल्प की तलाश-बुद्ध से अम्बेडकर तक : रामगोपाल सिंह
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, सं.२००८

45. शूद्रों का प्राचीन इतिहास : रामशरण शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सं.२००३

46. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर
उदयाचल प्रकाशन,
पटना, सं.१९७७

47. समकालीन रंग नाटक : डॉ. आर शशिधरन, हिन्दी विभाग
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

कोचिन, केरल, सं.२००८

48. समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच : सं. डॉ.नरेन्द्र मोहन
वाणी प्रकाशन, दरियागंज,
नई दिल्ली, सं.२००९

49. साहित्य और दलित चेतना : महीप सिंह, चन्द्रकांत बांदिबडकर
अभिव्यंजना, दिल्ली, सं.२०००

50. हरिजन से दलित : सं. राज किशोर
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. २००४

51. हिन्दी दलित साहित्य : मोहनदास नैमिशराय
साहित्य अकादमी,
नई दिल्ली, सं.२०११

52. हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता : डॉ.कालीचरण 'स्नेही'
आराधना ब्रदर्स, कानपूर, सं.२००४

53. हिन्दी नाटक : बच्चन सिंह
लोकभारती प्रकाशन,
इलाहाबाद, सं.१९६७

54. हिन्दी नाटक: उद्‌भव और विकास : डॉ. दशरथ ओझ़
राजपाल एण्ड सन्ज़,
दिल्ली, सं.२००६

55. हिन्दी नाट्यशास्त्र का स्वरूप : डॉ. नर्वदेश्वर राय
कला प्रकाशन, वाराणसी, सं.२०१०

सहायक ग्रन्थ (अंग्रेज़ी)

1. History of Dharmasastra : P.V. Kana
Bhandarkar Oriental Research Institute
Pune, 1941

2.	Introduction to the Science of Sociology	:	Robert E. Park and Ernest W. Burgess The University of Chicago Press Chicago, 1921
3.	Outline of Practical Sociology	:	Carroll D Wright, Longmans Green and Co., London, 1902
4.	Sociology	:	Morris Ginsberg Oxford University Press, 1950
5.	The Principles of Sociology	:	H. Spenser D. Applecton and Company, Newyork, 1900
6.	The Principles of Sociology	:	Franklin Henry Giddings University Press of Pacific, 2001

पत्र-पत्रिकाएँ

1. दलित साहित्य २००३ (वार्षिकी) सं. जयप्रकाश कर्दम, अकादमिक प्रतिभा, दिल्ली
2. दलित साहित्य २००४ (वार्षिकी)
3. दलित साहित्य २००५ (वार्षिकी)
4. दलित साहित्य २००९-१० (वार्षिकी)
5. वसुधा-५८ जुलाई-सितम्बर २००३
6. अनुशीलन (दलित साहित्य विशेषांक) फरवरी २०११, हिन्दी विभाग, कोच्ची विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कोच्ची
7. अपेक्षा-५-अक्तूबर-दिसंबर २००३
8. अपेक्षा-८-जूलाई-सितम्बर २००४
9. अपेक्षा-१९-अप्रैल-जूल २००७
10. अपेक्षा-४०-४१-जूलाई-दिसंबर २०१२
11. नागफनी-२-नवम्बर-जनवरी २०११
12. डॉ. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका-१०-२००२
13. बयान-२७-अक्तूबर २००८
14. बयान-४६-मई-२०१०
15. बयान-८२-मई-२०१३

16. आश्वस्त-४५-२००७

17. आश्वस्त-११४-२०१३

18. रंग अभियान-२१

19. जन-विकल्प-३-जनवरी-२०१३

20. रंग प्रसंग-राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली, अंक-४०, २०१२

परिशिष्ट

शोध आलेखों की सूची :

1. जनसंचार माध्यम और लोकनाट्य : शेरशाद खान. एम
राष्ट्रसेतु, वर्ष-४, अंक १६,
अप्रैल-जून, २०१४
ISSN-2320-3455

2. दलित समाज की मानसिकता और संघर्ष : शेरशाद खान. एम
संग्रथन, वर्ष-२७, अंक ६,
दिसंबर २०१३
ISSN-2278-6880

Sharshad Khan M. “Dalit Drama and Theatre in Hindi : An Analytical Study (With special reference to Social Structure)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2015.

परिशिष्ट

परिशिष्ट

शोध आलेखों की सूची :

1. जनसंचार माध्यम और लोकनाट्य : शेरशाद खान. एम
राष्ट्रसेतु, वर्ष-४, अंक १६,
अप्रैल-जून, २०१४
ISSN-2320-3455

2. दलित समाज की मानसिकता और संघर्ष : शेरशाद खान. एम
संग्रथन, वर्ष-२७, अंक ६,
दिसंबर २०१३
ISSN-2278-6880